पुराणों में गंगा

संकलनकर्त्ता तथा अनुवादक

श्री रामप्रताप त्रिपाठी 'शास्त्री'

सम्पादक

श्री दयाशंकर दुबे

एम० ए०, एल-एल० बी०

संवत् : २०५३ : शक १९१

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

पुराणों में गंगा

संकलनकर्त्ता तथा अनुवादक

श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

सम्पादक

श्री दयाशंकर दुबे

एम० ए०, एल० एल० बी०

संवत् २०५२

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

सम्पादकीय वक्तव्य

संवत् १९८९ में श्री गंगा जी के पवित्र तट पर मुझे गंगा जी के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखने की प्रेरणा हुई और मैंने सामग्री एकत्रित करना आरम्भ किया। गंगाप्रेमी सज्जनों के सहयोग से यह कार्य संवत् १९९८ में समाप्त हुआ और 'गंगारहस्य' के नाम से यह पुस्तक धर्मग्रन्थावली द्वारा प्रकाशित हो गयी। पुराणों से श्री गंगा जी के सम्बन्ध में सामग्री एकत्रित करने का कार्य मैंने श्री रामप्रताप जी त्रिपाठी, शास्त्री को सौंपा था। शास्त्री जी ने यह कार्य बड़े लगन और परिश्रम के साथ कर दिया। परन्तु उनकी सब सामग्री का उपयोग 'गंगारहस्य' में न किया जा सका। दस वर्ष तक यह सामग्री मेरे पास पड़ी रही।

गत वर्ष जब मैं सम्मेलन का साहित्यमन्त्री मनोनीति किया गया, तब मैंने सम्मेलन द्वारा इस संकलन को प्रकाशित किये जाने का अनुरोध किया और सम्मेलन के अधिकारियों ने इसे प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया। उचित संशोधन के साथ अब यह सामग्री प्रकाशित की जा रही है।

हमारे पुराण ज्ञान के भाण्डार हैं। शायद ही ऐसा कोई विषय हो, जिसके सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान पुराणों में न प्राप्त हो सके। इस ज्ञान का उचित उपयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि पुराणों से प्रत्येक विषय के सम्बन्ध में सामग्री एकत्रित कर ली जाय। इसी उद्देश्य से श्री गङ्गा जी के सम्बन्ध में सामग्री एकत्रित करके प्रकाशित की जा रही है। यदि हिन्दी प्रेमी सज्जनों ने इस संग्रह को पसन्द किया, तो अन्य विषयों के सम्बन्ध में भी सामग्री एकत्रित करके प्रकाशित कर दी जावेगी।

श्री दुबे निवास
दारागंज, प्रयाग
अक्षय तृतीया २००९

दयाशंकर दुबे

विषय-सूची

भूमिका

भारतीय संस्कृति और सभ्यता के उत्कर्ष की चर्चा करते हुए श्री गंगा जी के महत्त्व को गौण कारण नही कहा जा सकता। वह न केवल हमारे ही देश की सबसे महान् और पवित्र नदी है अपितु विश्व की सर्वश्रेष्ठ नदियों में अपने अनेक विशिष्ट गुणों के कारण वह सर्वप्रथम स्थान रखती है। जिस प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति की चर्चा करते हुए आज भी हम अपने अतीत का गौरवपूर्वक स्मरण करते हैं, उस सभ्यता और संस्कृति को सर्वलोकोपकारिणी बनाने में श्री गंगा जी की लहरों ने ही सर्वप्रथम मानव-हृदय को मंगलमयी प्रेरणा दी थी। हमारे इस विशाल देश के पावन जीवन में गंगा की निर्मल धारा कल्पनातीत प्राचीनकाल से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। हिन्दुओं के लिए तो वह धरती पर बहकर भी आकाशवासी देवताओं की नदी है और इस लोक की सुख-समृद्धियों की विधात्री होकर भी परलोक का सम्पूर्ण लेखा-जोखा सँवारने वाली है।

शरीर को यदि अन्नमय कहा जाय और कृषि कर्म को अन्न का मूल स्रोत माना जाय तो शायद गंगा ही एक ऐसी नदी है जो हमारे देश भर में सबसे अधिक अन्न देने वाली अन्नपूर्णा है। कृषि-कर्म सदा से मानव-जाति की संस्कृति का मूलाधार रहा है और कृषि-कर्म का आधार रही हैं नदियाँ और इन नदियों में हमारे देश में गंगा ही एक ऐसी रही है जिसकी घाटी में सर्वप्रथम कृषिकर्म का श्रीगणेश किया गया था। यही कारण है कि कृषि प्रधान भारत-भूमि में गंगा एक देवी के रूप में मानी जाती है। समस्त संसार की सभ्य जातियों के आदिम इतिहास में कृषिप्रधान नदियों में देवत्व की कल्पना की गयी है। प्राचीन मिस्र निवासी अपने देश की घाटी नदी 'नील' को 'हापी' नामक देवता के रूप में पूजते थे और ईराक-निवासी 'सुमेरीयन' और 'बेबोलीनियन' अपनी प्यारी नदियों —'दजला' और 'फरात' की देवरूप में उपासना करते थे। इसी प्रकार पुराणों तथा अन्य आचार ग्रन्थों में गंगा की भाँति ही अन्य अनेक नदियों के सम्बन्ध में देवीरूप की अनेक कथाएँ तथा चर्चाएँ की गई हैं। हमारे इस कथन की पुष्टि इस बात से भी होती है कि हमारे पूर्वजों में भी केवल उन्हीं नदियों के देवरूप होने की चर्चा विद्यमान थी, जो कृषिकर्म में विशेष सहायक रहीं। परिमाण, जलराशि तथा अन्य विशेषताओं के कारण कुछ ऐसी भी नदियाँ हैं, जिनकी गणना दिव्य-श्रेणी में की जा सकती थी किन्तु उनके संबंध में सभी पुराण तथा धर्मशास्त्र मौन हैं। मेरा तात्पर्य ब्रह्मपुत्र, महानदी आदि नदियों से है, जो गंगा-यमुना अथवा गोमती से किसी प्रकार मानव-हित-साधन की दृष्टि से न्यून नहीं हैं।

सैकड़ों बड़ी नदियों से भरे हुए हमारे देश में जिन सात नदियों को महत्ता दी गई है, वे हैं, गंगा, यमुना, सिन्धु, गोदावरी, सरस्वती' नर्मदा तथा कावेरी। स्पष्ट ही गंगा इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं। यद्यपि इन सातों नदियों में अब सरस्वती नदी सूख गई है और उसकी धारा तथा बहनेवाले प्रदेश के सम्बन्ध में भी सन्देह होने लगा है किन्तु कोई ऐसा समय था, जब सरस्वती की अगाध महिमा थी। सहस्रों वर्ष हुए, जब उसकी धारा धरती पर से अन्तर्हित हो गई किन्तु उसके माहात्म्य की चर्चा हम आज भी बड़े पवित्र मन से करते हैं। इसका कारण यह है

कि उसी सरस्वती के पावन तट पर हमारे मन्त्र-द्रष्टा ऋषियों की वह पावन वाणी प्रस्फुटित हुई थी जो आज सहस्रों वर्षों के बाद भी उसी भाँति समूचे देश में व्याप्त-सी दृष्टिगोचर हो रही है। जब तक वेदों की एक भी ऋचा धरती पर रहेगी तब तक सरस्वती की उस विलुप्त धारा का कृतज्ञतापूर्वक स्मरण अवश्य किया जायगा।

भारत की नदियों में पवित्रता एवं माहात्म्य की दृष्टि से गंगा का स्थान सर्वोच्च कोटि का है। इतना ही नहीं अपने अनेक गुणों के प्रभाव से वह विश्व की श्रेष्ठतम नदी है। गंगोत्री से लेकर गंगा-सागर तक उसके सैकड़ों तीर्थों तथा अजस्रवाहिनी पावनधारा से जितने नर-नारी पशु-पक्षी तथा कीट-पतंग अपना ऐहिक और पारलौकिक कार्य चलाते हैं उतनी संख्या संभवतः विश्व की किसी महानदी को नहीं प्राप्त है। जो लोग नित्य गंगा में स्नान करने का पुण्यावसर नहीं निकाल पाते वे केवल दर्शन करने अथवा स्पर्श एवं आचमन करने के लिए थोड़ा-सा गंगा का जल ले जाकर अपने घरों में रखते हैं। और ऐसे लोगों की संख्या करोड़ों में है। यहाँ तक तो बात कुछ समझ में आती है किन्तु उन लाखों-करोड़ों धार्मिक व्यक्तियों की अगाध श्रद्धा पर विचार करते समय विस्मय विमुग्ध होना पड़ता है जो स्नान-पूजनादि के समय गंगाजल के अभाव में केवल गंगा का नामस्मरण करते हैं। इस प्रकार प्रति दिन इस विशाल देश में करोड़ों व्यक्तियों द्वारा संस्मृत, ध्यानावस्थित, पूजित, मज्जित और पीत गंगा की महिमा की समानता भला विश्व में कौन नदी कर सकती है? यही कारण है कि कल्पनातीत प्राचीन काल से लेकर आज तक गंगा की महिमा से हमारे साहित्य का जितना अंचल भरा गया है, उतना किसी अन्य नदी की महिमा से नहीं। सहस्रों वर्षों की उसकी अपार महिमा देश के कण-कण में व्याप्त हो गई है और ऐसा मालूम पड़ता है कि आधुनिक युग के नवीनतम विश्व-आश्चर्यकर आविष्कार 'ऐटम बम' की इस चकाचौंध में भी उसकी लहरों की चमक छिपनेवाली नहीं हैं और विज्ञान की समस्त चुनौतियों को स्वीकार कर भारत की धरती पर अनन्त काल तक इसी भाँति वह अपनी अध्यात्म चेतना की अविरल धार बहाती ही जाएगी। वैज्ञानिक भले ही सीसी बोतलों में भरकर नई-नई खोज करके यह सिद्ध करें कि उसमें हिमालय की औषधियों का विचित्र प्रभाव है जो उनके जल में कीटाणु नहीं पड़ते किन्तु धार्मिक लोगों की वह पुण्यसलिला भगवान् विष्णु के पद से निकलने के कारण समस्त ऐहिक और पारलौकिक व्याधियों को हरनेवाली बनी ही रहेगी। गंगा के तट वासियों को नये वैज्ञानिकों की इस खोज से कुछ विशेष प्रेरणा नहीं मिलेगी, वे तो अनादि काल से यह मन्त्र याद करते आये हैं कि :—

गंगा तारयति वै पुंसां दृष्टा, पीताऽवगाहिता।

अर्थात् गंगा का दर्शन करने, पान करने, तथा अवगाहन करने से मनुष्य तर जाता है। उसके जल में पापों एवं रोगों को नाश करने की अमोघ शक्ति है। उसकी पावन धारा की कलकलमयी स्वर लहरी को सुन कर पापी का हृदय भी थोड़ी देर के लिए किसी दूसरे भाव में मग्न हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने ऐक ही चौपाई में गंगा के सम्बन्ध में वह सब कुछ कह दिया है, जो परम प्राचीनकाल से हमारे पूर्वज कहते आए हैं और जो भविष्य में नवीनतम विज्ञान के प्रकाश में उत्पन्न होने वाली हमारी भावी पीढ़ियाँ सैकड़ों-सहस्रों वर्षों के बाद गंगा के सम्बन्ध में कहेंगी।

गंग सकल मुद-मंगल मूला।
सब सुख करनि हरनि सब सूला॥

सचमुच हमारे देश में समस्त आनन्द-मंगल की विधायिनी, सुख समृद्धि की प्रदायिनी और समस्त ऐहिक-पारलौकिक विपदाओं की विनाशिनी गंगा के सामन कोई अन्य नदी नहीं है। गंगा को हिन्दू लोग माता कहते हैं। माता

के समस्त पालक गुण गंगा में विद्यमान हैं। यही कारण है कि हिन्दू मात्र की सब से बड़ी कामना इमी बात की होती है कि वे अन्त समम में अपनी प्यारी माता की गोंद में ही अपना चिर शयन करे और उसके शरीर के कण उसकी माता के ही जल-कण में विलीन हो जायें।

गंगा की यह अगाध महिमा चिरकाल से वाङ्मयी भारतीय प्रतिभा को प्रेरणा देती रही है। आदि कवि वाल्मीकि से ही नहीं, ऋग्वेद के ऋषियों से ले कर आज तक के कवियों तक की कल्पना शक्ति को गंगा की पावन-तरंगों ने ही सजीवता प्रदान की हैं। गंगा की इस अलौकिक आनन्ददायिनी महिमा में अवगाहन करने का मोह विधर्मी कवियों की वाणी भी नहीं संवरण कर सकी है। हमें आज कविवर रसखान का यह सवैया देख कर आश्चर्य होगा कि अगणित नरमुण्डों की बलि दे कर पाकिस्तान बनाने वाले जिन्ना की विरादरी में भी गंगा की कितनी अगाध भक्ति थी। रसखान कहते हैं—

बैद की औषधि खाऊँ कछु न करौं व्रत संजम री ! सुनु मोसे।
तेरो इ पानी पियौं 'रसखानि' संजीवन लाभ लहौं सुख तोसे॥
एरी ! सुधामयी भागीरथी ! कोउ पथ्य-कुपथ्य करै तउ पोसे।
आक धतूरे चबात फिरैं विष खात फिरैं सिव तोरे भरोसे॥

शिव की मृत्युञ्जयता में भागीरथी के भरोसे को देखने वाले अकेले मुसलमान रसखान ही नहीं थे, रहीम, ताज, मीर आदि की सूक्तियाँ भी हृत्तन्त्री को झनकारने में बड़ीं सशक्त हैं। सनातन हिन्दू धर्म में तो ईश्वर की सत्ता ने अनन्तर धरती पर गंगा से बढ़ कर कोई आराध्य नहीं हैं, किन्तु बौद्ध, जैन आदि सम्प्रदायों में भी गंगा की पवित्रता एवं आध्यात्मिक शक्ति की विचित्रता को स्वीकार किया गया है। वह केवल शारीरिक एवं भौतिक संतापों को शान्त करने वाली नहीं मानी गयी है प्रत्युत आन्तरिक एवं आध्यात्मिक शान्ति का अविनाशी बीज भी उसकी चंचल तरंगों में बहता चला आ रहा है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने गंगा जी के सबन्ध में हिन्दुओं की बद्धमूल सांस्कृतिक धारणा का निम्नलिखित सवैये में अच्छा निरूपण किया है :—

ब्रह्मको व्यापक वेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन ज्ञान गुनी को।
जो करता भरता हरता सुर-साहिब, साहिब दीन-दुनी को॥
सोइ भयो द्रव-रूप सही जु है नाथ विरंचि महेस मुनी को।
मानि प्रतीति सदा 'तुलसी' जल काहे न सेवत देव-धुनी को॥

अखिल ब्रह्माण्ड व्यापक, अग-जग के विधाता, पोषक एवं संहारक, ब्रह्मा एवं शंकर के नाथ एवं दीन-दुनिया के स्वामी ब्रह्म के द्रव रूप भागीरथी की महिमा हिन्दुओं के मानस-पटल पर एक विचित्र प्रभाव डालती है। कोई भी हिन्दू उसे नदी के रूप में न तो देखता है न दूसरों के मुख से सुनना ही चाहता है। उसकी अन्तिम कामना यही रहती है कि मृत्यु के समय उसके मुख में एक बूंद भी गंगा जल कहीं से पड़ जाय। कठोर नास्तिक हिन्दू का हृदय भी गंगा तट पर पहुँच कर एक बार अपूर्व भावनाओं से भर जाता है। भले ही उसे वह अपनी कमजोरी अथवा अपने हृदय पर पड़े प्राचीन पारिवारिक वातावरण के संस्कारों की छाप माने, किन्तु गंगा की लहरों में ऐसा प्रभाव है अवश्य। और यह प्रभाव कोई वैष्णव युग का नहीं है, वेदकाल से ही इसका प्रमाण मिलता है। पुराणों में तीनो आदि देवों (ब्रह्मा,

विष्णु और महेश्वर) से गंगाजी से निकट सम्बन्ध बताया गया है। भगवान् विष्णु के पद-नख से प्रसूत हो कर वह ब्रह्मा के कमण्डलु और शिव की जटा में विराजमान बतायी गयी हैं। इसका कारण यही है कि गंगा जी के साथ होने से हिन्दुओं के किसी भी देवी-देवता की महत्ता में चार चांद लग जाते हैं। हरद्वार और प्रयाग का गंगाजल ले जा कर रामेश्वरम् के शिव लिंग पर चढ़ाने की पुरानी प्रथा आज भी बन्द नहीं हुई है। प्रति वर्ष सैकड़ों-सहस्रों धार्मिक पुरुषों एवं पण्डे-पुरोहितों का यही कर्त्तव्य परम्परा का रूप धारण करता चला आ रहा है।

वेदों और पुराणों में गंगा का माहात्म्य

पुराण तो गंगा के माहात्म्य एवं कथाओं से पटे पड़े हैं, किन्तु वेदों में गंगा का वह स्थान नहीं है। उनमें सिन्धु और सरस्वती को वही स्थान दिया गया है, जो पुराणों में गंगा को प्राप्त है। जैसा कि ऊपर भी बताया जा चुका है, ऋग्वेद में गंगा का उल्लेख केवल दो बार आता है (ऋग्वेद, १०, ७५, ५ और ६, ४५, ३१)। किन्तु वैदिक साहित्य के दूसरे अंगों में गंगा की पर्याप्त चर्चा है। शतपथ ब्राह्मण के १३, ५, ४, ११, जैमिनीय ब्राह्मण के ३, १८३ और तैत्तिरीय आरण्यक के २, १० में गंगा का उल्लेख किया गया है। वेदों में गंगा की यथेष्ट चर्चा न होने एवं सिन्धु तथा सरस्वती की महिमा बारम्बार गाने का कारण यह था कि वैदिक काल में आर्यों का मुख्य निवास स्थान पंजाब और सिन्धु प्रान्त में था, जहाँ सिन्धु और सरस्वती प्रवहमान थीं। गंगा की घाटी में उनका आगमन बाद में हुआ, उस समय वे गंगा को जानते अवश्य थे किन्तु उसकी अनेक विशेषताओं एवं माहात्म्यों से कम परिचित थे। किन्तु कुछ काल बाद जब वे पूर्व और दक्षिण की ओर बढ़े और गंगा की उर्वरा घाटी में पदार्पण किया तो वे गंगा की अपार महिमा से चमत्कृत हो गए। यह पुराणों का काल था। यही कारण है कि पुराणों में गंगा के समान किसी अन्य नदी का वर्णन नहीं किया गया है और सिन्धु तथा सरस्वती को तो पुराणों में प्रायः भुला ही दिया गया है।

कुछ पुराणों में गंगा की पावन कथा एवं माहात्म्य का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। ब्रह्मपुराण एवं वृहन्नारदीय पुराण में तो अनेक अध्यायों में गंगा की ही चर्चा की गयी है। किन्तु ब्रह्मपुराण की कथा में वह एकरसता, अन्विति तथा प्रबन्धात्मकता नहीं है जो वृहन्नारदीय पुराण की कथा में है। यही कारण है कि संकलनकर्त्ता ने इस संग्रह में वृहन्नारदीय पुराण की उक्त कथा को ही प्रधानता दी है और अन्य पुराणों की स्फुट-कथाओं को छोड़ दिया है। जिन पुराणों तथा उपपुराणों में गंगा की चर्चा की गयी है; उनके नाम ये हैं—ब्रह्म पुराण (८, ७१, ७३; ७४, ७५, ७६, ७८, ९०, १०५, १०७, ११६, १७२, १७३, १७४ और १७५ अध्याय) पद्मपुराण (स्व० खं० १६, उ०खं० २३) विष्णुपुराण (८,४) शिव पुराण (ज्ञान संहिता ५३, ५४ अध्याय), मत्स्यपुराण (१०५ अध्याय), श्रीमद्भागवत (१६, १७), देवी भागवत (३, ४, ६, ७, १, ५, ६, ७, ११, १२, १३, १४,), वृहन्नारदीय पुराण (६–११, १६, ३८–४३), मार्कण्डेय पुराण (५६), अग्नि पुराण (७०, ७१, ७२), ब्रह्मवैवर्त पुराण (प्रकृति खण्ड ६, १०, ११, १२, गणेश खण्ड ३, श्रीकृष्ण जन्म खण्ड ३४, ३५), लिंग पुराण (पूर्व भाग ५२), वराह पुराण (१७१), भविष्य पुराण प्रथम भाग (२१-२२), द्वितीय भाग (१७), स्कन्द पुराण (देव काण्ड, दक्ष खण्ड, २१-२५), षष्ठ सौर संहिता ६–३०, अम्बिका खण्ड; १२६–१२८, काशी खण्ड, २७, २८, २९, रेवा खण्ड, १२, ३४, अवन्ती खण्ड ४६, ७३, नागर खण्ड तीसरा परिच्छेद २२, २३, ५५, ५६, प्रभास खण्ड १६६, १८६ ब्रह्माण्ड पुराण (४९) तथा वामन पुराण (३४), वृहद् धर्म पुराण इन सभी स्थलों पर गंगा जी के सम्बन्ध में जो भी कथाएँ आई हैं, उन सब की एक-रसता वृहन्नारदीय पुराण की कथा में है। केवल देवी भागवत की

कथा कुछ अपनी विशेषता रखती है, जिसमें केवल कथा का चमत्कार मात्र उपादेय है। जहाँ तक माहात्म्य का सम्बन्ध है, वह तो सभी पुराणों में प्रायः समान हैं।

आदि कवि वाल्मीकि के रामायण में गंगा जी की विपुल महिमा है। उसमें केवल पौराणिक रूढ़ियों को ही स्थान नहीं दिया गया है, प्रत्युत उसकी कथा का काव्य-सौन्दर्य और भाव पक्ष भी अधिक पुष्टि एवं मनोरम है। गंगा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी आदि कवि ने अपने सरस कवि-हृदय का सुन्दर परिचय दिया है। वे गंगा को हिमवान् की पुत्री मानते हैं और उनकी माता का नाम मेनका हैं जो पर्वतराज सुमेरु की कन्या थी। इस प्रकार भगवान् शंकर की अर्द्धांगिनी उमा गंगा की सहोदरा कनिष्ठ भगिनी थीं। हिमवान् से गंगा जी को देवताओं ने माँग लिया था। हिमवान् से गंगा को प्राप्त कर देवता लोग धन्य हो गए थे और उसे उन्होंने तीनों लोकों में प्रतिष्ठित किया था। बंगला भाषा के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ कृत्तिवास रामायण में आदि कवि की इस कल्पना को और मधुर रूप दिया गया है। उनके मत से देवताओं ने शिव से व्याह करने के लिए हिमवान् से गंगा की याचना की थी। जब गंगा मेनका के घर से बिना पूछे ही देवताओं के साथ चली गयीं तो मेनका ने उन्हें अपने घर में देख जड़ अर्थात् जलमयी हो जाने का शाप दे दिया। तभी से गंगा जल रूप ब्रह्मा के कमण्डलु में रहने लगीं। राजा सगर के पुत्रों के कपिल मुनि के शाप से भस्म हो जाने पर उनके उद्धार के लिए गंगाजी ब्रह्मा के कमण्डलु से बाहर निकल कर धरती तल पर अवतीर्ण हुई। सगर के वंशज राजा भगीरथ द्वारा गंगा (भागीरथी) के धरती पर अवतरण होने की यह कथा तो अति प्रसिद्ध है।

भागीरथी का दूसरा नाम विष्णुपदी है : पौराणिक कथाओं के अनुसार भगवान् विष्णु के अंगूठे से निकलने के कारण उनका यह नाम पड़ा। कदाचित् इस कथा में कुछ ऊँची कल्पना का आधार लिया गया है। नदियाँ जलमयी होती हैं और जल का उद्गम स्थल है मेघमण्डल। पौराणिक कथाओं के अनुसार मेघों का केन्द्रीभूत संचरण स्थल उस ज्योतिष्क मण्डल में है, जो आकाश स्थित ध्रुव के चरण प्रान्तों में व्यवस्थित है। उक्त ध्रुव मण्डल में भगवान् विष्णु के चरणन्यास मण्डल की पौराणिक कथा सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। इस प्रकार विष्णुपदी गंगा के नामकरण का रहस्य साधारणतया अनुपमेय हो जाता है। किन्तु अन्यान्य पुराणों में भगवान् विष्णु के पद-नख से गंगा के द्रवित होने के कारण यह नामकरण बताया गया है।

गंगा का जाह्नवी नाम भी सुविख्यात है। महाभारत, रामायण, विष्णुपुराण आदि धार्मिक ग्रंथों में इस नामकरण की चर्चा अनेक बार की गयी है। उक्त कथा का अति संक्षेप रूप इस प्रकार है : स्वर्ग से धरती पर, अवतरित गंगा के आगे-आगे रथारूढ़ राजा भगीरथ चल रहे थे और उनके पीछे-पीछे ग्राम नगर, वन, उपवन को बहाते हुए भागीरथी का प्रबल प्रवाह बह रहा था। संयोगात् भगीरथ के मध्य मार्ग में ही महामुनि जह्नु की यज्ञ स्थली एवं आश्रम पड़ गया, जह्नु उस समय अपने अनुष्ठानों में इस प्रकार लीन थे कि भगीरथ के मार्ग को छोड़कर दूर हटने की उन्हें तनिक भी सुविधा नहीं थी। फलतः भागीरथी के प्रबल प्रवाह में जह्नु का यज्ञ मण्डप एवं आश्रम तथा सब सामग्री विलीन हो गयी। इस अकल्पित विघ्न से जह्नु का प्रचण्ड कोप उद्बुद्ध हो गया और वे भागीरथी के उस भीषण प्रवाह को राजा भगीरथ की निराश आँखों के सामने ही क्षण भर में पान कर गये। बेचारे भगीरथ का साहस टूट गया, ब्रह्मा के कमण्डलु तथा शिव की जटा से उतार लाने के बाद उन्होंने इस नयी विपदा की कल्पना भी नही की थी। अन्ततः देवताओं, मुनियों और गन्धर्वो ने मिलकर जब भगीरथ के साथ ही विशेष प्रार्थना की तब जह्नु का कोप कुछ

शान्त हुआ और उन्होंने अपने कान के छिद्र से गंगा को फिर धरती पर गिरा दिया। इस प्रकार जह्नु के कान से उत्पन्न गंगा का नाम जाह्नवी पड़ गया और वे जह्नु की कन्या के रूप में भी विख्यात हुईं।

देवी भागवत की कथा के अनुसार गंगा भगवान् नारायण (विष्णु) की पत्नी तथा लक्ष्मी और सरस्वती की सपत्नी हैं। संयोगात् एक दिन गंगा और सरस्वती में कलह उत्पन्न हो गया- जिसमें लक्ष्मी ने बीच-बचाव करने का यत्न किया। किन्तु क्रोध के दुर्विवेक में तीनों सपत्नियों ने परस्पर यथेच्छ कटु शब्दों का प्रयोग कर शाप-अभिशाप दिया। परिणामतः तीनों को स्वर्ग से च्युत होकर धरती पर अवतीर्ण होना पड़ा। गंगा और सरस्वती का नदी रूप तो विख्यात ही है—लक्ष्मी का नदी रूप पद्मावती के नाम से विख्यात है।

ब्रह्मपुराण के गौतमी खण्ड में गंगोत्पत्ति का प्रसंग कुछ अधिक मनोरंजक है। उसके अनुसार जब स्वर्ग से च्युत हो कर गंगा शिव की जटा में समा गई तो उसके अनन्तर उनके दो रूप हुए। प्रथम रूप गौतमऋषि द्वारा पृथ्वी पर अवतारित होने के कारण गौतमी नाम से तथा दूसरा क्षत्रिय राजा भगीरथ द्वारा अवतारित होने के कारण भागीरथी नाम से विख्यात हुआ। गौतमी का वर्तमान नाम गोदावरी है। संभवतः गंगा से गोदावरी के ज्येष्ठ होने एवं गंगा के अवतारक क्षत्रिय भगीरथ की अपेक्षा गोदावरी के अवतारक गौतम के ब्राह्मण होने के कारण कुछ क्षेत्रों में गौतमी को 'आदिगंगा' के नाम से पुकारा जाता है। उत्तर प्रदेश के कई मण्डलों में 'गोमती' को ही आदि गंगा के रूप में पुकारते हैं। किन्तु गोमती के स्थान पर 'गौमती' को 'आदि गंगा' कहने की बात अधिक युक्ति युक्त है। संभव है, राजा भगीरथ द्वारा गंगा के पृथ्वी तल पर अवतारित होने की कथा ही 'गोमती' को 'आदि गंगा' कहने की प्रेरणा देती है। क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टि में उक्त गंगावतरण की कथा से यह सिद्ध होता है कि अन्य प्राचीन नदी-प्रवाहों की अपेक्षा गंगा की धारा नवीन है।

गंगा की उत्पत्ति की यह कथा कुछ थोड़े परिवर्तनों के साथ प्रायः सभी पुराणों में एक-सी हैं किन्तु उसका सांगोपांग वर्णन नारदीय पुराण में ही उपलब्ध है। उसका कारण कदाचित् यह है कि नारदीयपुराण वैष्णवों का प्रिय पुराण है और विष्णु से सम्बन्धित होने के कारण गंगा का उसमें सविस्तार वर्णन करना स्वाभाविक ही है। ब्रह्म-वैवर्त पुराण में पृथ्वीतल पर गंगा की अवस्थिति केवल पाँच सहस्र वर्षों की ही बतायी गयी है। सरस्वती के शाप से संत्रस्त हो कर गंगा ने जब भगवान् विष्णु से शाप-मोचन की प्रार्थना की तो भगवान् विष्णु ने कहा :—

अद्य प्रभृति देवेशि ! कलेः पञ्चसहस्रकम् ।
वर्ष स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि ।।

वाराहपुराण में बताया गया है कि :—

पृथ्वी गंगया हीना भविष्यत्यन्तिमे कलौ ।

अर्थात्—कलियुग के अन्तिम चरण में पृथ्वी गंगा की धारा से विहीन हो जायगी। स्कन्दपुराण की सनत्कुमार संहिता में यही प्रसंग इस प्रकार वर्णित है :—

कलेर्दश सहस्रान्ते विष्णुस्त्यक्ष्यति मेदिनीम् ।
तदर्धं जाह्नवी तोयं तदर्धं ग्रामदेवताः ।।

किन्तु कलियुग का पाँच सहस्र वर्ष तो बीत चुका है और गंगा की धारा आज भी पूर्ववत् अपने प्यारे प्रदेशों को सींच रही है। अतः इस प्रसंग में वाराहपुराण का कथन अधिक युक्तियुक्त मालूम पड़ता है।

धरती पर गंगावतरण की तिथि के सम्बन्ध में पुराणों में एक वाक्यता नहीं है। कुछ पुराणों के मत से वैशाख

शुक्ल तृतीया अर्थात् अक्षय तृतीया को गंगा धरती पर अवतीर्ण हुई और कुछ उसे 'कार्त्तिकी पूर्णिमाजाता' अर्थात् कार्त्तिक की पूर्णिमा को अवतीर्ण मानते हैं। किन्तु लोक प्रसिद्ध एवं अनेक पुराणों के मत से ज्येष्ठ शुक्ल दशमी अर्थात् गंगा दशहरा ही गंगा के अवतीर्ण होने की पुण्य तिथि है। निम्नलिखित श्लोक इस सम्बन्ध में अति प्रसिद्ध है :

दशमी शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठे मासि कुजेऽहनि।
अवतीर्णा यतः स्वर्गात् हस्तर्क्षे च सरिद्वरा॥

अर्थात्—ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को मंगलवार एवं हस्त नक्षत्र में गंगा स्वर्ग से धरती पर अवतीर्ण हुई।

कुरुवंशी राजा शन्तनु के साथ गंगा के विवाह की चर्चा भी पुराणों में प्रसिद्ध है। गंगा के पुत्र भीष्म का महान् त्याग एवं अविप्लुत ब्रह्मचर्य गंगा की धारा की भाँति ही भारतीय संस्कृति में कभी नष्ट न होने वाली निधि है। पिता के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने वाले सत्यसंध भीष्म की पुण्य कथा कैकेयी सुत भरत की पावन कथा के समान ही सर्वदा गर्व से गायी जायगी। गंगा के साथ परिवार-व्यवस्था की इस विचित्र कथा में पुराणकर्त्ताओं के तात्पर्य का वैज्ञानिक पहलू ढूंढ़ना व्यर्थ है। पुराणों में तो ऐसी कथाओं का भण्डार ही भरा है। किन्तु गंगा के प्रति अगाध निष्ठा रखने वाले भावुक भक्तों को ही नहीं, गंगापुत्र भीष्म का उज्ज्वल जीवन तो सर्वसाधारण पाठकों को भी थोड़ी देर के लिए विस्मय विमुग्ध कर देता है। ऐसे नररत्न की उत्पत्ति गंगा जैसी परम पावनी एवं सर्वदा सब को शान्ति देने वाली ममतामयी माता से ही संभव था।

गंगा के धार्मिक एवं आध्यात्मिक पहलुओं पर प्रकाश डालते समय किसी भी लेखक के सामने भारतीय वाङ्मय में इतना अधिक साहित्य मिलता है कि वह मेरी ही भाँति किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो सकता है कि किसे लिया जाय और किसे छोड़ा जाय। पुराणों के अतिरिक्त आचार ग्रन्थों में भी गंगा की महिमा का विशाल वर्णन है। कदाचित् गंगा के समान किसी अन्य नदी के सम्बन्ध में इतना अधिक वर्णन किया ही नहीं गया है। इसका कारण यह है कि गंगा जी के समान कोई ऐसी अन्य नदी नहीं है, जिसका इतना विशाल ऐतिहासिक, आर्थिक एवं वैज्ञानिक इतिहास हो। परम प्राचीन काल से यह भारत की राजधानियों को बसाने वाली नदी थी। कितने ही राज्यों के आविर्भाव, उत्थान और पतन में इसकी चंचल लहरों का हाथ रहा है। बड़े-बड़े साम्राज्यों का वैभव-विलास इसके पावन तटों पर ही संभव हुआ है, और इसी के कूल-कगारों पर आर्य-सभ्यता ने अपनी उन्नति के सुनहरे दिन देखे थे। हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज, प्रतिष्ठानपुर, काशी पाटलिपुत्र, चम्पा आदि प्राचीन ऐतिहासिक राजधानियों ने अपने गौरवपूर्ण दिन इसी के तट पर देखे हैं। इसी प्रकार इसी के तट पर वे सुप्रसिद्ध लड़ाइयाँ भी हुई हैं, जो नवनिर्माण का कारण बनी हैं। गंगा-तट की उर्वरता अति प्रसिद्ध है, साथ ही अनेक महानदियों का संगम स्थल होने केकारण नौका व्यवसाय में यह देश की सब से बड़ी उपकारक नदी रही है। रेलवे की स्थापना के पूर्व गंगा का महत्त्व व्यावसायिक दृष्टि से भी सर्वोपरि था। और इसके तीन लाख इक्यानबे हजार एक सौ वर्ग मील के उपजाऊ कछार की समानता तो संसार की किसी भी अन्य नदी का कछार नहीं कर सकता। यह बात ध्यान देने योग्य है कि समूचे भारतवर्ष की जनसंख्या का तिहाई भाग गंगा के तटवर्ती प्रान्तों में निवास करता है। (भारतवर्ष की जनसंख्या चालीस करोड़ है और लगभग चौदह करोड़ व्यक्ति गंगा के कछारों में बसते हैं)। इसका परिणाम यह हुआ है कि नवीन वैज्ञानिक साधनों का जितना जाल गंगा तट पर बिछा हुआ है, उतना देश की किसी

अन्य नदी पर नहीं। देश के अनेक प्रख्यात नगर कलकत्ता, पटना, प्रयाग, काशी, कानपुर आदि इसी के तट पर अवस्थित हैं, जिनका आज के वैज्ञानिक युग में विशेष महत्त्व है।

और तीर्थ। गंगा की तो एक एक लहरें तीर्थ हैं। गंगोत्री से लेकर गंगासागर तक सैकड़ों तीर्थों में प्रति वर्ष करोड़ों मनुष्य गंगा के पावन जल से अपने दैहिक, दैविक एवं भौतिक सन्तापों को शान्त कर आध्यात्मिक चेतना प्राप्त करते है, भले ही उन पर गंगा जल का स्थायी लाभ न हो किन्तु क्षण भर के लिए ही सही, उतनी ही देर तक वे इस अपने जीवन से दूर सुख शान्ति के लोक में पहुँच जाते हैं। अनादि काल से लेकर लोकोत्तर पवित्रता एवं शुभभावना के उदय का जो चमत्कार गंगाजल में है वह किसी अन्य नदी के जल में नहीं है। उसमें स्नान करते समय एक अपूर्व चेतना एवं स्फुरणा प्राप्त होती है। आध्यात्मिक अथवा धार्मिक भावना-प्रवण हृदयों में तो वह आनन्द की लहरें फैला देती है।

यह विज्ञान का युग है। विज्ञान के प्रचण्ड ताप में धार्मिक अथवा आध्यात्मिक चेतना का स्रोत कुछ सूख-सा रहा हैं। अतः संभव है, भविष्य में गंगा के धार्मिक एवं आध्यात्मिक माहात्म्य का कुछ ह्रास हो जाय किन्तु गंगा के वैज्ञानिक महत्त्व की पताका उस युग में भी फहराती रहेगी। गंगाजल का वैज्ञानिक महत्त्व भी चमत्कारों से भरा पड़ा है। कई वर्षों तक बंद कर के रखे रहने पर भी अन्य नदियों के जलों की भाँति गंगा जल में कीड़े नहीं पड़ते। कुछ असाध्य रोगों को समूल नष्ट करने की क्षमता गंगाजल की अति प्रसिद्ध है। कुष्ठ के सहस्रों रोगी प्रतिवर्ष गंगा का सेवन कर आरोग्य लाभ करते हैं। इसी प्रकार राजयक्ष्मा, पुरानी संग्रहणी, अजीर्ण के अन्य असाध्य उपद्रव जीर्ण ज्वर एवं दमा को दूर करने की भी विचित्र शक्ति गंगा जल में है। वैद्यक राज निघण्टु के मत से गंगा का जल शीतल, स्वादिष्ट, स्वच्छ अत्यन्त रुचिकर, पथ्य, पवित्र, पाप नाशक, तृष्णा और मोह निवारक, दीपन एवं प्रज्ञा-वृद्धि-कारी है।

गंगा के अद्भुत जल का माहात्म्य चर्म चक्षुओं से भी द्रष्टव्य है। उसमें ऐसी विचित्र गूढ़ शक्ति है कि किसी भी जल को अपने में मिला कर तद्रूप कर लेता है। गंगोत्री से नीचे मैदानों पर आ जाने से ले कर गंगा सागर तक सैकड़ों बड़ी बड़ी नदियाँ आ कर उसमें मिलती हैं किन्तु सब का जल गंगा जल में विलीन हो जाता है। प्रयाग में संगम स्थल के पूर्व अनेक बड़ी नहरों के निकाले जाने के कारण गंगा की धारा अत्यन्त क्षीण हो जाती है और उधर संगम से पहले अनेक बड़ी-बड़ी चम्बल एवं बेतवा आदि नदियों से मिलने के कारण यमुना की धारा अगम और प्रभूत जलराशि युक्त दिखलायी पड़ती है। सामान्यतः वैशाख-ज्येष्ठ मास में तो गंगा की धारा से यमुना की धारा कई गुना बड़ी, गहरी और जलयुक्त दिखाई पड़ती है किन्तु संगम स्थल पर आकर यमुना से कई गुनी अधिक जलराशि की नीलिमा कहाँ विलुप्त हो जाती है, इसका कुछ पता नहीं चलता। रूप का ही नहीं अन्य नदियों के जलों का गुण भी गंगा के गुणों में विलुप्त हो जाता है। गंगा सागर तक सैकड़ों नदियों की प्रभूत जलराशि गंगा की धारा में आ कर मिलती है किन्तु वह सब भी गंगा जल की भाँति शोधक एवं अविकृत होने के गुणों से युक्त हो जाती है। गंगोत्री के जल के समान उसमें भी सभी गुण आ जाते हैं।

गंगा-जल की इस विचित्रता से आकृष्ट हो कर अनेक पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने उसका शोध भी किया है और उन सब का भी यही मत है कि गंगा के जल में सामान्य नदियों के जल से कई गुना अधिक गुण हैं। इस प्रसंग में आगरा के सरकारी वैज्ञानिक विभाग के कर्मचारी मि० हैनकेन का अन्वेषण कुछ विशेष मनोरंजक है। उक्त महोदय ने गंगाजल की परीक्षा के लिए उस स्थान का जल लिया जहाँ स्नान घाट के पास ही बने हुए पनाले से बनारस शहर का गन्दा पानी आ कर गिरता था। उन्होंने आरंभिक परीक्षण से यह देखा कि उस स्थल के गंगा जल में हैजे के लाखों कीड़े बिलबिला

रहे हैं । किन्तु छः घंटा के बाद ही उन्होंने देखा कि वे सब कीड़े मर कर नीचे बैठ गए और ऊपर गंगा का पवित्र जल लहराने लगा । अपने इस प्रयोग में उन्होंने कई क्रम रखे । एक हैजे के रोग से मरे हुए शव को उन्होंने गंगा जल में डाल कर देखा कि उसमें रहने वाले असंख्य हैजे के कीड़े भी छः घंटे में साफ हो गए । वे इतने ही से विरत नहीं हुए, गंगा के जल में उन्होंने लाखों संक्रामक रोगों के कीड़े छोड़े और बाद में देखा कि वे सब भी छः घंटे में बिल्कुल मरे हुए पाए गये । जब कि अन्यनदियों तथा कूपों के स्वच्छ जलों में वे संक्रामक कीटाणु छः ही घंटे के भीतर असंख्य हो गए।

अन्यान्य पाश्चात्य वैज्ञानिकों के भी शोध के परिणाम इसी प्रकार के हैं । सब ने एक स्वर से गंगा जल की अद्भुत शक्ति को स्वीकार किया है और बताया है कि गंगा-जल के समान स्वास्थ्य एवं शक्तिप्रद कोई अन्य जल नहीं है । भारतीय प्राचीन वैज्ञानिकों का तो कुछ कहना ही नहीं है, उन्होंने गंगा के जल की जो महिमा गाई है, उसे सुनकर आज के लोग आश्चर्य करेंगे । मृत्यु के समय रोगी के मुख में गंगाजल डालने की प्रथा आज भी पाई जाती है। साधारणतया लोग समझते हैं कि यह स्वर्गप्राप्ति के लिए हैं किन्तु गंगाजल में चेतना और शक्ति उत्पन्न करने के जो अमोघगुण हैं, उसके कारण भी यह प्रथा प्रचलित हुई होगी । कई पाश्चात्य डाक्टरों ने प्रयोगो से तथा अनुभव से सिद्ध करके यह बताया है कि शरीर के शक्ति पुंज जब जबाब देने लगते हैं, वाक्शक्ति विलुप्त हो जाती है, उस समय गंगाजल का सेवन कराने से रोगी को पुनः शक्ति की प्राप्ति होती है तथा वह आनन्द में निमग्न हो उठता है ।

गंगाजल की इस अमोघ शक्ति का ही यह परिणाम है कि भारतवर्ष के सभी सुप्रसिद्ध महापुरुषों ने अपने जीवन में गंगा से पर्याप्त लाभ उठाया है । सभी सम्प्रदायों एवं धर्मों के अनुयायियों ने गंगा का समान आदर किया है। शैव लोग उसे भगवान् शंकर की जटा में विराजमान मानकर अपने सम्प्रदाय की इष्टदेवी मानते हैं । शिवपुराण में गंगा की अपार महिमा का वर्णन किया गया है । इसी प्रकार वैष्णवों की तो गंगा परम आराध्य देवी हैं । भगवान् विष्णु के पद-नख से सम्भूत होने के कारण वैष्णव की दृष्टि में धरती पर गंगा से बढ़कर कोई तीर्थ ही नहीं है । यही कारण है कि समस्त वैष्णव ग्रंथों में गंगा एवं गंगाजल की अगाध महिमा का वर्णन किया गया है । इसी प्रकार शाक्त सम्प्रदायों में भी गंगा को अनादि शक्ति का एक रूप मानकर परम आराध्य स्वीकार किया गया है । स्वामी शंकराचार्य, रामानुज, बल्लभाचार्य; रामानन्द, कबीर, तुलसी, चैतन्य महाप्रभु, आदि आचार्यों तथा संतों ने तो गंगा जी को अपनी साधना का अविभाज्य अंग स्वीकार किया था । स्वामी शंकराचार्य ने अपने गंगाष्टक में कहा है :

विधिर्विष्णुः शम्भुस्त्वमसि पुरुषत्वेन सकला;
रमोमागीर्मुख्या त्वमसि ललना जह्नुतनये ।
निराकारागाधा भगवति ! सदा त्वं विहरसि;
क्षितौ नीराकारा हरसि जनतापान्स्वकृपया ॥

अर्थात् हे जह्नुतनये ! तुम पुरुष रूप में ब्रह्मा, विष्णु और महेश हो और स्त्रीरूप में तुम्हीं उमा, रमा तथा सरस्वती का रूप धारण करने वाली हो, हे परम ऐश्वर्यशालिनी ! तुम ही निराकार ब्रह्ममयी और नितान्त अपार महिमा वाली हो । इस धरती तल पर तुम जल का रूप धारण कर जनता के सन्तापों को अपनी कृपा से दूर करती फिरती हो ।'

स्मरण रहे कि स्वामी शंकराचार्य भक्तिवादी नहीं ब्रह्मवादी अर्थात् वेदान्त सिद्धान्तों के आद्य उपस्थापक तथा समस्त जगत् को मिथ्या मानने वाले महापुरुष थे, किन्तु गंगा के सम्बन्ध में भोली भावुकता से भरे उनके इस उद्गार को सुनकर गंगा की सनातन महिमा के सामने शिर अपने आप झुक जाता है ।

गंगा का नामकरण सार्थक है। इस शब्द का अर्थ है निरन्तर गतिशील जलप्रवाह। गमनार्थक गम् धातु से औणादिक गन् प्रत्यय करने पर गंगा शब्द की निष्पत्ति होती है, किन्तु पौराणिकों ने इसके अनेक अर्थ बताए हैं। कुछ विद्वान् 'गम्यते ब्रह्मपदमनया' इस प्रकार कर विग्रहब्रह्म पद प्राप्त कराने के कारण इनका गंगा नाम बतलाते हैं। किन्तु गतिशीलता का अर्थ अधिक युक्तियुक्त है। सदा तीव्र गति से प्रवाहित होने वाली उस जलधारा का नाम गंगा उचित ही है जिसके प्रवाह के सामने ब्रह्मा को अपना कमण्डलु तथा शंकर को अपनी जटा फैलानी पड़ी। त्रैलोक्य भर में किसी में इनके प्रवाह को अवरुद्ध करने की शक्ति थी ही नहीं। किन्तु इस 'गंगा' शब्द से संगीतात्मक श्रुति मधुर ध्वनि की एक ऐसी गूंज उठती हैं कि कानों में परमानन्द के साथ साथ हृदय में भी भक्ति रस का संचार होने लगता है। यही कारण है कि श्रेष्ठ कवियों ने दिल खोलकर गंगा की पुण्य स्तुति की है। और उनकी स्तुतियों को देखकर पुराणों के माहात्म्य भी पीछे पड़ जाते हैं। पण्डित राज जगन्नाथ ने, जो संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे और जिन्होंने अपना विवाह एक परमसुन्दरी रमणी से कर लिया था, अपनी 'गंगा लहरी' में गंगा की जो स्तुति की है उसे पढ़कर सहृदयों को रोमांच हुए बिना न रहेगा। एक छन्द में उन्होंने कहा है : (उनके छन्द का यह अनुवाद हम स्व० आचार्य द्विवेदी के निम्नलिखित सवैया के रूप में उद्धृत कर रहे हैं—)

कै लघु पाप तुरन्त जे त्यागत जागत मानस में पछिताई।
तारन को तिन आजु त्रिलोक में आहि हजारन तीरथराई॥
हे जननी! पै करें नित जे उठि पातक घोर कठोर अघाई।
ताप निवारन को तिनको जग तेरी समान तुही सुनि पाई॥

कविवर पद्माकर की श्रद्धांजलि तो इससे भी आगे बढ़ गयी है। वे अपने पापों को ललकारते हुए कहते हैं:

जैसे तैं न मोको कैहूँ नेकहू डरात हुतो ऐसे अब तोसों हौंहुँ नेकहूँ न डरिहौं।
कहै पद्माकर प्रचंड जो परैगो तो उमंडकरि तोसों भुजदंड ठोंकि लरिहौं॥
चलो चलु चलो चलु बिचलु न बीचही ते, कीच बीच नीच! तो कुटुम्ब को कचरिहौं।
एरे दगादार! मेरे पातक अपार तोंहि गंगा की कछार में पछारि छार करिहौं॥

आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र एवं उनके पिता गोपालचन्द्र की गंगा-महिमा-वर्णन सुविख्यात है। उन्हीं की भांति कविवर बांकीदास, मतिराम, केशव, विद्यापति, कविरत्न सत्यनारायण, पूर्णसिंह, हरिऔध जी आदि की गंगा सम्बन्धी कविताएँ भक्ति रस से ओतप्रोत हैं। इस प्रगतिशील युग में भी गंगा के सम्बन्ध में जो रचनाएँ हुई हैं, उनमें भी भक्ति रस का ही पूर्ण संचार है। इसका कारण यह है कि अनादि काल से भक्ति पावनधारा बहाने वाली गंगा का स्मरण करते ही नीरस हृदय में भी भक्ति का उद्रेक हो जाता है। मशीनों के इस युग में पहुँच कर भी मनुष्य मनुष्य रहेगा वहाँ लोहे का यन्त्र नही होगा, उसकी कृतज्ञता; सरसता एवं सहृदयता का सर्वथा लोप तब तक न होगा जब तक यह रहेंगी। और जब तक यह धरती रहेगी तब तक धरती पर गंगा की अपार महिमा भी गाई जायगी।

गंगा के संबन्ध में अनेक पुराणों में फैले हुए इन पुण्य-प्रसंगों को एक सूत्र में पिरोने की प्रेरणा प्रयाग विश्व-विद्यालय के अर्थ शास्त्र के अध्यापक पंडित दयाशंकर दुबे जी की थी। वे गंगा के अनन्य भक्त हैं। लगभग आठ वर्ष पूर्व

श्रीगणेशायनमः

पुराणों में गंगा

[प्रथम भाग]

श्रीगंगामाहात्म्यम्

प्रथमोऽध्यायः

नमस्तस्मै मुनीशाय तपोनिष्ठाय धीमते । वीतरागाय कवये व्यासायामिततेजसे ॥१
मुनीन् सूर्यप्रभान् धर्मं पाठयन्तं सुवर्च्चसम् । नानापुराणकर्त्तारं वेदव्यासं महाप्रभम् ॥२
ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यं यस्यांशा लोकसाधकाः । तमादिदेवं चिद्रूपं विशुद्धं परमं भजे ॥३
शौनकाद्या महात्मान ऋषयो ब्रह्मवादिनः । नैमिषाख्ये महारण्ये तपस्तेपुर्मुमुक्षवः ॥४
एकदा ते महात्मानः समाजं चक्रुरुत्तमाः । धर्मार्थकाममोक्षाणामुपायान् ज्ञातुमिच्छवः ॥५
मुनयो भावितात्मानो मिलितास्ते महौजसः । लोकानुग्रहकर्त्तारो वीतरागा विमत्सराः ॥६
कानि क्षेत्राणि पुण्यानि कानि तीर्थानि भूतले । कथं वा प्राप्यते मुक्तिर्नृणां तापार्तचेतसाम् ॥७
इत्येवं प्रष्टुमात्मानमुद्यतान् प्रेक्ष्य शौनकः । प्राञ्जलिर्वाक्यमाहेदं विनयावनतः सुधीः ॥८

उस अमित तेजस्वी, वीतराग, परम बुद्धिमान, तपोनिष्ठ, कवि, मुनिवर व्यास को हम नमस्कार कर रहे हैं, जो महान् ऐश्वर्य से सम्पन्न है, अनेक पुराणों के कर्त्ता है एयं सूर्य के समान तेजस्वी मुनियों को परमधर्ममय पुराणों को पढ़ाने वाले हैं। जिस ब्रह्मा का सृष्टिकर्त्ता होने के कारण ब्रह्मा, पालनकर्त्ता होने के कारण विष्णु एवं संहारकर्त्ता होने के कारण शिव नाम पड़ा है और इन्द्र वरुणादि लोकपाल गण संसार का साधन करने के लिये जिनके अंश से प्रतिष्ठित हैं, उस आदिदेव परम विशुद्ध चिद्रुप भगवान् का मैं भजन करता हूं। ब्रह्मवादी शौनकादि महात्मा ऋषिगण मोक्षप्राप्ति की अभिलाषा से तपस्या कर रहे थे। एक समय उन महात्माओं ने एक उत्तम सम्मेलन किया। उसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के उपायों के जानने वाले, संसारी प्राणियों पर अनुग्रह बुद्धि रखने वाले, महान् तेजस्वी, मत्सरविहीन, पवित्र अन्तःकरण वाले अनेक मुनि सम्मिलित हुए। उन सम्मिलित मुनियों को "इस भूतल पर कौन-कौन से तीर्थ और क्षेत्र पवित्र माने गये हैं? आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक--इन त्रिविध सन्तापों से सन्तप्त चित्तवाले मनुष्यों को किस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति होती है?" इस प्रकार के प्रश्नों को अपने से करने के लिए उद्यत देखकर विनयी, परम बुद्धिमान् शौनक जी हाथ जोड़ कर बोले---

शौनक उवाच—आस्ते सिद्धाश्रमे पुण्ये सूतः पौराणिकोत्तमः। स एतदखिलं वेत्ति व्यासशिष्यो महामुनिः ॥९
युगे युगेऽल्पकान् धर्मान् निरीक्ष्य मधुसूदनः। वेदव्यासस्वरूपेण वेदभागं करोति हि ॥१०
वेदव्यासमुनिः साक्षान्नारायण इति द्विजाः। शुश्रुमः सर्वशास्त्रेषु सूतस्तु व्यासशासितः ॥११
ज्ञानार्णवो वै सूतस्तत्सर्वतत्त्वार्थकोविदः। तस्मात्तमेव पृच्छाम इत्यूचे शौनको मुनीन् ॥१२
ततस्ते मुनयः सर्वे शौनकं वाग्विदांवरम्। समाश्लिष्य सुसम्प्रीताः साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥१३
अथ ते मुनयो जग्मुः पुण्यं सिद्धाश्रमं वने। मृगव्रजसमाकीर्णं मुनिभिः परिशोभितम् ॥१४
मनोज्ञभूरुहलताफलपुष्पविभूषितम्। युक्तं सरोभिरच्छोदैरतिथ्यातिथ्यसंकुलम् ॥१५
ते तु नारायणं देवमनन्तमपराजितम्। यजन्तमग्निष्टोमेन ददृशू रोमहर्षणम् ॥१६

ऋषय ऊचुः—वयं त्वतिथयः प्राप्ताः आतिथेयास्तु सुव्रत। ज्ञानदानोपचारेण पूजयास्मान् यथाविधि ॥१७
सूत उवाच—श्रृणुध्वमृषयः सर्वे यदिष्टं वो वदामि तत्। गीतं सनकमुख्यैस्तु नारदाय महात्मने ॥१८
ऋषय ऊचुः—कथं सनत्कुमारस्तु नारदाय महात्मने। प्रोक्तवान् सकलवान् धर्मान् कथं तौ मिलितावुभौ ॥१९
सूत उवाच—सनकाद्या महात्मानो ब्रह्मणो मानसाः सुताः। निर्ममा निरहंकाराः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ॥२०
तेषां नामानि वक्ष्यामि सनकश्च सनन्दनः। सनत्कुमारश्च विभुः सनातन इति स्मृतः ॥२१
एकदा मेरुश्रृङ्गे ते प्रस्थिता ब्रह्मणः सभाम्। इष्टं मार्गेऽथ ददृशुः गंगा विष्णुपदीं द्विजाः ॥२२

शौनक जी ने कहा—ऋषिगण! सिद्धाश्रम में पुराण वक्ताओं में परमप्रवीण श्रेष्ठ सूत जी निवास करते हैं। पुराणों के वेत्ता व्यासशिष्य महामुनि वे सूत जी इन सब विषयों को भलीभाँति जानते हैं। प्रत्येक युगों में धर्म का ह्रास होते देख भगवान् विष्णु वेदव्यास के रूप में वेद की संहिताओं के विभाग किया करते हैं। हे ऋषिगण! हमने सभी शास्त्रों में ऐसा सुना है कि वे व्यास जी साक्षात् नारायण के अवतार हैं, और सूत जी उन्हीं व्यास भगवान् के शिष्य हैं। ज्ञान के समुद्र वे सूत उन सब तत्त्वों के अर्थ को समझने में परम चतुर हैं, अत एव उन्हीं से ये बातें पूछनी उचित हैं। ऐसी बातें सुन वे सभी मुनिगण वक्ताओं में प्रवीण शौनक जी का आलिंगन करते हुए 'बहुत अच्छा' बहुत अच्छा' कहने लगे ॥९–१३॥

और वहाँ से वे वन में सुप्रसिद्ध उस पुण्यप्रद सिद्धाश्रम की ओर प्रस्थित हुए, जो मृगों के समूहों से आकीर्ण था, जिसमें मुनियों के समूह शोभायमान हो रहे थे, अति रमणीय वृक्ष और लताएँ फूलों-फलों से लदी हुई थीं। उसमें निर्मल जलवाल सरोवर थे, और वहाँ की कुटियों में अतिथियों का सत्कार हो रहा था। वहाँ पर जाकर मुनियों ने देखा कि सूत जी अनन्त अपराजित भगवान् विष्णु की अग्निष्टोम यज्ञ द्वारा पूजा कर रहे हैं ॥१४–१६॥

ऋषियों ने कहाः—हे सुव्रत! हम अतिथि-सत्कार पाने योग्य अतिथि आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं, आप शास्त्र-सम्मत ज्ञान को दान करके हम लोगों का यथाविधि सम्मान कीजिये ॥१७॥

सूत ने कहाः—समुपस्थित मुनिगण! सुनिये। आप लोगों के मन की जो बातें है, उन्हें मैं कह रहा हूँ। इन्हीं बातों को सनकादि ऋषियों ने महात्मा नारद जी से कही थीं। ॥१८॥

ऋषियों ने पूछा—सूत जी! सनत्कुमार ने महात्मा नारद जी को इन सकल धर्म सम्बन्धी बातों को किस प्रसंग में बतलाया था और उन महानुभावों की किस प्रकार आपस में भेंट हुई थी ॥१९॥

सूत ने कहाः—ऋषिगण! सनकादि महात्मा ऋषिगण भगवान् ब्रह्मा के मानस पुत्र कहे गये हैं, उनमें ममत्व एवं

तां निरीक्ष्य समुद्युक्ताः स्नातुं सीताजलेऽभवन् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवर्षिर्नारदो मुनिः ।।२३
आजगाम द्विजश्रेष्ठो दृष्ट्वाभ्रातॄन् स्वकाग्रजान् । तान्दृष्ट्वा स्नातुमुद्युक्तान् नमस्कृत कृताञ्जलिः
।। उपासीनश्च तैः सार्धं सस्नौ प्रीतिसमन्वितः ।।२४
तेचापि तु सीताया जले लोकमलापहे । स्नात्वा सन्तर्प्यदेवर्षि-पितॄन्विगतकल्मषाः ।।२५
उत्तीर्यसन्ध्योपास्त्यादि कृत्वाचारंस्वकंद्विजा । कथाः प्रचक्रुर्विविधाः नारायणगुणाश्रिताः ।।२६
कृत क्रियेषु मुनिषु गंगातीरे मनोरमे । चकार नारदः प्रश्नं नानाख्यान कथान्तरे ।।२७
नारद उवाच--सर्वज्ञाः स्थ मुनिश्रेष्ठाः भगवद्भक्तितत्पराः । यूयं सर्वे जगन्नाथा भगवन्तः सनातनाः ।।२८
क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं तीर्थानां च तथोत्तमम् । परया दयया तथ्यं ब्रूहि शास्त्रार्थपारग ! ।।२९
सनकउवाच--शृणु ब्रह्मन् परं गुह्यं सर्वसम्पत्करं परम् । दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं धर्म्यंपापहरं शुभम् ।।३०
सर्वरोगप्रशमनमायुर्वृद्धिकरं शुभम् । क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं तीर्थानां च तथोत्तमम् ।।३१
क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं तीर्थानां च तथोत्तमम् । गंगायमुनयोर्योगं वदन्ति परमर्षयः ।।३२
सितासितोदकं तीर्थं ब्रह्माद्याः सर्वदेवताः । मुनयो मनवश्चैव सेवन्ते पुण्यकांक्षिणः ।।३३
गंगा पुण्यनदी सेव्या यतो विष्णुपदोद्भवा । रविजा यमुना ब्रह्मन्तयोर्योगः शुभावहः ।।३४

अहंकार लेशमात्र भी नहीं है, वे परम ब्रह्मचारी हैं, उनके नामों को बतला रहा हूँ, सुनिये । उनके नाम हैं, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और विभु सनातन । ऋषिगण ! एक समय की बात है कि ये लोग ब्रह्मा जी की सभा में सम्मिलित होने के लिए सुमेरुपर्वत की ओर प्रस्थित हुए, वहाँ जाते हुए भगवान् विष्णु के चरणों से निकली हुई भगवती गंगा को देखा ।।२०-२२।।

गंगा का दर्शन कर वे जब उस घाट पर हल के समान आकार में बहनेवाली गंगा में स्नानार्थ उत्सुक हुए तब तक वहीं पर देवर्षि नारद जी आ गये । और वहाँ अपने बड़े भाइयों को स्नानार्थ उद्यत देख हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उन्हीं लोगों के साथ अति प्रेम से उन्होंने भी स्नान किया । ऋषिगण ! वे सनकादि ऋषिगण सांसारिक मल को दूर करने वाले गंगा जी के जल में स्नानकर देवता, ऋषि और पितरों का तर्पण कर जल में से बाहर निकले और निष्पाप हो अपने सन्ध्योपासनादि नित्य कर्मों से निवृत्त हो नारायण के गुणों से युक्त अनेक प्रकार की पुण्यमयी कथायें कहने लगे । इस प्रकार जब वे मुनिगण गंगा के परम पावन तट पर अपने नित्य कर्म से निवृत्त हो गये तब अनेक कथाओं के प्रसंग में नारद जी ने उनसे प्रश्न किया ।।२३-२७।।

नारद ने कहाः—हे मुनियों में श्रेष्ठ आप सभी सर्वज्ञ हैं, भगवान् की भक्ति में लगे रहने वाले हैं, स्वयं समग्र ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य से सम्पन्न होकर भगवत्स्वरूप हैं, और सनातन जगन्नाथ हैं । हे शास्त्र के अर्थों में पारंगत ! क्षेत्रों में जो सबसे उत्तम क्षेत्र हो, तीर्थों में जो सबसे पुनीत तीर्थ हो, उसका मुझसे वर्णन कीजिये, आपकी बड़ी कृपा होगी ।।२८-२९।।

सनक ने कहाः—हे ब्रह्मन् ! जो अति गोपनीय, सभी समृद्धियों को देनेवाला दुःस्वप्नों का विनाशक, पुण्यमय, धर्ममय, सभी रोगों को शान्त करनेवाला, दीर्घायु प्रदान करनेवाला क्षेत्रों में और तीर्थों में उत्तम तीर्थ क्षेत्र जो है, उसे सुनिये । परमज्ञानी तत्त्ववेत्ता ऋषिगण उसको गंगा और यमुना का संगम स्थल कहते हैं । वहाँ पर श्वेत गंगा-जल और, नील यमुना जल का तीर्थ है, पुण्याभिलाषी ब्रह्मा आदि देवगण, मुनिगण एवं मनुगण सभी उसका सेवन करते हैं । विष्णु भगवान् के चरणकमलों से उद्भूत होने के कारण गंगा जी को अतिशय पुण्यप्रदा समझना चाहिए । यमुना जी सूर्य की पुत्री कही गई हैं, हे ब्रह्मन् ! यही कारण है कि इनका संगम कल्याण को देने वाला है ।।३०-३४।।

स्मृतार्तिनाशिनी गंगा नदीनां प्रवरा मुने। सर्वपापक्षयकरी सर्वोपद्रवनाशिनी ॥३५
सर्वतीर्थाभिषेकाणि यानि पुण्यानि तानि वै। गंगा विन्द्वभिषेकस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३६
गंगा गंगेतियो ब्रूयाद् योजनानां शतैः स्थितः। सोऽपि मुच्येत पापेभ्यः किमुगंगाभिषेकवान् ॥३७
विष्णुपादोद्भवा देवी विश्वेश्वरशिरः स्थिता। संसेव्या मुनिभिर्देवैः किं पुनः पामरैर्जनैः ॥३८
यत्सैकतं ललाटेतु ध्रियते मनुजोत्तमैः। तत्रैव नेत्रं विज्ञेयं विध्वर्द्धधः समुज्ज्वलत् ॥३९
यन्मज्जनं महापुण्यं दुर्लभं त्रिदिवौकसाम्। सारूप्यदायकं विष्णोः किमस्मात् कथ्यते परम् ॥४०
यत्रस्नाताः पापिनोऽपि सर्वपापविवर्जिताः। महद्विमानमारूढाः प्रयान्ति परमं पदम् ॥४१
यत्र स्नाताः महात्मानः पितृमातृकुलानि वै। सहस्राणि समुद्धृत्य विष्णु लोके व्रजंति वै ॥४२
स स्नातः सवतीर्थेषु यो गंगां स्मरति द्विज। पुण्यक्षेत्रेषु मर्त्येषु स्थितवान्नात्र संशयः ॥४३
यत्र स्नातं नरं दृष्ट्वा पापोपि स्वर्गभूमिभाक्। यदंगस्पर्शमात्रेण देवानामधिपो भवेत् ॥४४
तुलसीमूलसंभूता द्विजपादोद्भवा तथा। गंगोद्भवा तु मृल्लोकान्नयत्यच्युतरूपताम् ॥४५
गंगा च तुलसी चैव हरिभक्तिरचञ्चला। अत्यन्तदुर्लभा नृणां भक्तिर्द्धर्मप्रवक्तरि ॥४६

सद्धर्मवक्तुःपदसंभवां मृदं गंगोद्भवां चैव तथा तुलस्याः।
मूलोद्भवां भक्तियुतो मनुष्यो धृत्वा शिरस्येति पदं च विष्णोः ॥४७

वह गंगाजी स्मरणमात्र से पीड़ा को दूर करनेवाली है, सभी नदियों में श्रेष्ठ हैं, सभी पापों को विनष्ट करने वाली हैं। जितने अन्य पवित्र तीर्थों के अभिषेक हैं, वे गंगा जी के विन्दुओं के अभिषेक की सोलहवीं कला की भी समानता नहीं कर सकते। जो मनुष्य चार सौ कोस पर अवस्थित रहते हुए भी गंगा-गंगा कहता है, वह भी पापों से मुक्त हो जाता है, फिर तो जो गंगा का अभिषेक करता है उसकी बात ही क्या है? विष्णु भगवान् के चरणों से प्रकट हुई, विश्वेश्वर शिव के शिर पर स्थित भगवती गंगा का सेवन देवता तथा ऋषिगण भी करना चाहते हैं तो पामर मनुष्यों की तो बात ही क्या है? वे श्रेष्ठ मनुष्य जो अपने मस्तक पर गंगा जी की रेती को लगाते हैं उनके उसी स्थान पर भगवान् शिव के अर्धचन्द्रमा के नीचे का उज्ज्वल (तृतीय) नेत्र समझना चाहिए। इन पुण्य-सलिला भगवती गंगा में स्नान करना परम पुण्यदायक है, देवताओं तक को गंगा जी में स्नान दुर्लभ है। यह गंगा जी का स्नान भगवान् विष्णु का-सा स्वरूप एवं पद देनेवाला है, इससे अधिक इसके माहात्म्य को भला क्या कहा जा सकता है ॥३५-४०॥

इन पवित्र गंगाजी में स्नान करनेवाले पापी जन भी सभी पापमयी वासनाओं से विमुक्त हो अति विशाल विमान पर चढ़कर परमपद की प्राप्ति करते हैं। महात्माजन इन पुण्यसलिला गंगा जी में स्नान कर अपने माता एवं पिता—दोनों कुलों की हजारों पीढ़ियों तक को नरक से उबार लेते हैं तथा स्वयं स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। हे मुनिजी ! जो मनुष्य इन पवित्र गंगा जी का स्मरणमात्र कर लेता है वह मानों अन्य सभी पवित्र तीर्थों में स्नान कर चुका एवं सभी पुनीत क्षेत्रों की यात्रा भी कर चुका। उन गंगा जी में स्नान करने वाले मनुष्य को देखकर पापी जन भी स्वर्ग में पहुँच जाते हैं और उनका अंग के साथ स्पर्श होने से मनुष्य देवताओं के स्वामित्व की प्राप्ति कर लेता है। इस पृथ्वीतल पर मनुष्यों को गंगा, तुलसी अनन्यभगवद्भक्ति तथा धर्मोपदेशक के वचनों में श्रद्धा—ये वस्तुएँ अति

कदा यास्याम्यहं गंगां कदा पश्यामि तामहम् । वांछत्यपि च यो ह्येवं सोपि विष्णुपदं व्रजेत् ॥४८
गंगाया महिमा ब्रह्मन् वक्तुं वर्षशतैरपि । न शक्यते विष्णुनापि किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥४९
अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येतदद्भुतम् । यतो वै नरकं यान्ति गंगा नाम्नि स्थितेऽपिहि ॥५०
संसार दुःखविच्छेदि गंगा नाम प्रकीर्तितम् । तथा तुलस्या भक्तिश्च हरि कीर्ति प्रवक्तरि ॥५१
सकृदप्युच्चरेद्यस्तु गंगेत्येवाक्षरद्वयम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥५२
योजनत्रितयं यस्तु गंगायामधिगच्छति । सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोकं समेति हि ॥५३
गोदावरी भीमरथी कृष्णा रेवा सरस्वती । तुंगभद्रा च कावेरी कालिन्दी बाहुदा तथा ॥५४
वेत्रवती ताम्रपर्णी सरयूश्च द्विजोत्तम । एवमादिषु तीर्थेषु गंगा मुख्यतमा स्मृता ॥५५
यथा सर्व गतो विष्णुर्जगद्व्याप्य प्रतिष्ठितः । तथेयं व्यापिनी गंगा सर्वपाप प्रणाशिनी ॥५६
अहो गंगा जगद्धात्री स्नानपानादिभिर्जगत् । पुनाति पावनीत्येषा न कथं सेव्यते नृभिः ॥५७
मकरस्थे रवौ गंगा यत्र कुत्रावगाहिता । पुनाति स्नानपानाद्यैर्नयन्तीन्द्रपुरं जगत् ॥५८
यो गंगां भजते नित्यं शंकरो लोकशंकरः । लिंगरूपी कथं तस्या महिमा परिकीर्त्यते ॥५९
नास्ति गंगा समं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः । नास्ति विष्णुसमं देवं नास्ति तत्वं गुरोः परम् ॥६०
वर्णानां ब्राह्मणः श्रेष्ठस्तारकाणां यथा शशी । यथा पयोधिः सिन्धूनां तथा गंगा परा स्मृता ॥६१
नास्ति शांति समो वन्धुर्नास्ति सत्यात्परंतपः । नास्ति मोक्षात्परो लाभो नास्ति गंगासमा नदी ॥६२
गंगायाः परमं नाम पापारण्यदवानलः । भवव्याधिहरा गंगा तस्मात् सेव्या प्रयत्नतः ॥६३
गायत्री जाह्नवी चोभे सर्वपापहरे स्मृते । एतयोर्भक्तिहीनो यस्तं विद्यात्पतितं द्विज ॥६४
गायत्री छन्दसां माता माता लोकस्य जाह्नवी । उभे ते सर्वपापानां नाशकारणतां गते ॥६५
यस्य प्रसन्ना गायत्री तस्य गंगा प्रसीदति । विष्णु शक्तियुते ते द्वे समकाम प्रसिद्धिदे ॥६६
धर्मार्थकामरूपाणां फलं रूपे निरंजने । सर्वलोकानुग्रहार्थं प्रवर्तन्ते महोत्तमे ॥६७
अतीव दुर्लभा नृणां गायत्री जाह्नवी तथा । तथैव तुलसीभक्तिर्हरिभक्तिश्च सात्त्विकी ॥६८

दुर्लभ हैं । सद्धर्मों के उपदेश करने वाले सत्पुरुषों के चरणों की धूलि, गंगाजी की पुनीत मिट्टी, तथा तुलसी के नीचे की मिट्टी को श्रद्धापूर्वक मस्तक पर चढ़ाने वाले लोग भगवान् विष्णु के पद की प्राप्ति करते हैं ॥४१-४७॥

मैं कब गंगा जी जाऊंगा, मुझे उनका पापनाशी दर्शन कब होगा--इस प्रकार के विचारों को जो लोग करते हैं वे भी विष्णु भगवान् के स्थान को प्राप्त कर लेते हैं । हे मुनिवर ! अधिक बातें कहाँ तक बताऊँ, इन गंगा जी की महिमा को तो भगवान् विष्णु भी सैकड़ों वर्षों में नहीं कह सकेंगे ! शोक है कि यह अज्ञान का आवरण लोगों के मन पर पड़ा हुआ है जो लोग उससे विमोहित होकर गंगा जी का नाम विद्यमान होने पर भी उधर ध्यान न देने के कारण नरक में जाते हैं । गंगा जी का नाम, तुलसी में भक्ति, भगवद्भक्ति के उपदेश में श्रद्धा--ये तीनों संसार के दुःख से छुड़ाने वाले हैं । जो मनुष्य एक बार भी पाप वासना को निर्मूल कर गंगा यह दो अक्षर भी उच्चारण करता हैं वह सभी पापों से विमुक्त होकर विष्णुलोक की प्राप्ति करता है । जो व्यक्ति बारह कोस गंगाजी के क्षेत्र में विचरण करता है, वह सभी पापों से विमुक्त होकर सूर्य लोक को प्राप्त करता है ॥४८-५३॥

अहो गंगा महाभागा स्मृता पापप्रणाशिनी । हरिलोकप्रदा दृष्टा पीता सारूप्यदायिनी ।।६९
यत्र स्नाताः नरा यान्ति विष्णोः पदमनुत्तमम् । नारायणे जगद्धाता वासुदेवः सनातनः ।।७०
गंगास्नानपराणां तु वांछितार्थफलप्रदः ।
गंगाजल कणेनापि यः सिक्तो मनुजोत्तमः । सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम् ।।७१
भगीरथान्वये जातः सुदासो नाम भूपतिः । तस्यपुत्रो मित्रसहः सर्वलोकेषु विश्रुतः ।।७२
वसिष्ठशापात्प्राप्तस्स सौदासो राक्षसीं तनुम् । गंगाबिन्दुनिषेकेण पुनर्मुक्तो नृपोऽभवत् ।।७३

इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणतो गंगामाहात्म्यं नाम प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

हे द्विजोत्तम ! गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, रेवती, सरस्वती, तुंगभद्रा, कावेरी, कालिन्दी, बाहुदा, वेत्रवती, ताम्रपर्णी और सरयू--इन सभी नदियों से कहीं बढ़कर गंगाजी पुण्यमयी हैं। जैसे निखिल चराचर जगत् को व्याप्त कर भगवान् विष्णु अवस्थित हैं उसी प्रकार यह व्यापिनी गंगा सभी पापों का विनाश करने वाली है। अहो ! जगत् को पुष्टि देने वाली यह गंगा स्नान पानादि से समस्त जगत् को पवित्र करती है। तब भी लोग इनकी सेवा क्यों नहीं करते ? मकरराशि में सूर्य के उपस्थित होने के समय गंगाजी में जहाँ कहीं भी स्नान किया जाय उसके प्रभाव से गंगा स्नान पानादि के माहात्म्य से जगत् को पवित्र कर इन्द्रलोक में भेज देती है। संसार की कल्याण भावना में लगे रहने वाले लिंगरूपी शंकर भगवान् भी सर्वदा गंगा जी की सेवा में लगे रहते हैं तो गंगा जी की महिमा कैसे कही जा सकती है। पतित पावनी गंगाजी के समान अन्य कोई तीर्थ नहीं है, माता के समान अन्य कोई गुरु नहीं है, भगवान् विष्णु के समान अन्य कोई देवता नहीं है और गुरु से बढ़कर अन्य कोई तत्व नहीं है। जिस प्रकार सभी ताराओं में चन्द्रमा; वर्णों में ब्राह्मण, समुद्रों में क्षीरसागर श्रेष्ठ है उसी प्रकार सभी तीर्थों में गंगाजी श्रेष्ठ हैं। शान्ति के समान कोई हितैषी बन्धु नहीं है, सत्य के समान कोई तप नहीं है, मोक्ष के समान कोई लाभ नहीं है। गंगाजी के समान कोई नदी नहीं है। गंगाजी का एक नाम है पापारण्यदवानल अर्थात् पाप समूह रूप जंगल को दावाग्नि के समान नष्ट करनेवाली, ये गंगाजी संसार की आधिव्याधियों की हरनेवाली हैं, इसलिए इनका सेवन नित्य करना चाहिए। गायत्री और गंगा--ये दोनों सभी पापों को हरने वाली हैं, जो इन दोनों की कल्याणी भक्ति से हीन है, हे द्विजवर्य ! उसे पतित समझना चाहिए। गायत्री छन्दों की (वेदों की) माता है, और यह जान्हवी सभी लोकों की माता है, यह दोनों सभी पापों के नाश की कारणभूता हैं। जिस व्यक्ति के ऊपर गायत्री देवी प्रसन्न होती हैं--उस पर गंगा जी भी प्रसन्न होती हैं--इन दोनों में ही भगवान् विष्णु की शक्ति भरी हुई है। अत एव ये दोनों ही एक समान कामनाओं की सिद्धिदात्री हैं। ये दोनों ही धर्म, अर्थ, एवं काम की सिद्धि देनेवाली हैं, निरंजन हैं, अतिश्रेष्ठ हैं, अर्थात् जगत् में इनसे बढ़कर कोई अन्य वस्तु नहीं है, और सर्वदा सभी लोगों पर अनुग्रह करने में लगी रहती हैं। मनुष्यों को गायत्री, गंगा, तुलसीभक्ति अथवा विष्णु भगवान् की सात्विकी भक्ति-इन चारों की प्राप्ति करना अति दुष्कर कार्य हैं ।।५४-६८।।

अहो ! ये महा सौभाग्य दायिनी गंगा जी स्मरण मात्र से पापों को नष्ट करने वाली हैं। देखने पर विष्णु-लोक की प्राप्ति कराने वाली तथा पीने पर विष्णु के समान स्वरूप प्रदान करने वाली हैं। जगत् के पालन में लगे रहने वाले, शाश्वत् नारायण वासुदेव गंगा स्नान में निरत रहने वालों की मनःकामना पूर्ण करते हैं। अधिक

क्या; जिस भाग्यशाली मनुष्य पर गंगाजी के जल का एक कण मात्र पड़ जाता है, वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करता है ।:६८-७१।।

भगीरथ के वंश में सुदास नामक एक राजा था। उसका पुत्र सभी लोकों में मित्रसह नाम से विख्यात था, वसिष्ठ जी के शाप से, उससे उस सौदास (सुदास के पुत्र मित्रसह) को राक्षसी शरीर की प्राप्ति हुई थी: किन्तु गंगा जी के जलविन्दु के छींटे से वह राजा आसुरी शरीर से मुक्त हो गया—ऐसी प्रसिद्धि है ।।७१-७२।।

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गंगामाहात्म्य नामक प्रथम अध्याय समाप्त ।।१।।

द्वितीयोऽध्यायः

नारद उवाच

शप्तः कथं वसिष्ठेन सौदासो नृपसत्तमः । गंगाविन्द्वभिषेकेण पुनः शुद्धोऽभवत् कथम् ।।१
सर्वमेतदशेषेण भ्रातर्मे वक्तुमर्हसि । शृण्वतां वदतां चैव गंगाख्यानं शुभावहम् ।।२

सनक उवाच

सौदासः सर्वधर्मज्ञः सर्वज्ञो गुणवाञ्छुचिः । बुभुजे पृथ्वीं सर्वां पितृवद्रञ्जयन् प्रजाः ।।३
सगरेण यथापूर्वं महीयं सप्तसागरा । रक्षिता तद्वदमुना सर्वधर्माविरोधिना ।।४
पुत्रपौत्रसमायुक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः । त्रिशंदष्टसहस्राणि बुभुजे पृथिवीं युवा ।।५
सौदासस्त्वेकदा राजा मृगयाभिरतिर्वनम् । विवेश सबलः सम्यक् शोधितं ह्याप्त मंत्रिभिः ।।६
निषादैः सहितस्तत्र विनिघ्नन् मृगसंचयम् । आससाद नदींरेवां धर्मज्ञः स पिपासितः ।।७
सुदासतनयस्तत्र स्नात्वा कृत्वाह्निकं मुने । भुक्त्वा च मन्त्रिभिः सार्धं तां निशां तत्र चावसत् ।।८

नारद जी ने पूछा—वसिष्ठ जी नृपति वर सुदास के पुत्र मित्रसह को किस कारण से शाप दिया था और फिर वह राजा गंगा जी की बूंदों के अभिषेक से किस प्रकार शुद्ध हुआ । भ्रात: ! इन बातों को आप मुझे विस्तार से सुनाइये; क्योंकि गंगा जी की कथा वक्ता और श्रोता—दोनों को पवित्र करती ।।१-२।।

सनक ने कहा—राजा सुदास का पुत्र मित्रसह सभी धर्मों का ज्ञाता, सर्वज्ञ, गुणी और पवित्र मन का था । वह अपने पिता ही के समान प्रजा को प्रसन्न रखते हुये समस्त पृथ्वी का भोग करता था । पूर्वकाल में राजा सगर ने जिस प्रकार सातों समुद्रों से युक्त इस समस्त पृथ्वी मण्डल का पालन किया था उसी प्रकार राजा मित्रसह भी सभी धर्मों को समान समझते हुए पृथ्वी की रक्षा में सर्वदा तत्पर रहता था । उसने युवावस्था में पुत्र-पौत्र आदि से युक्त हो सभी प्रकार के ऐश्वर्यों के साथ अड़तीस सहस्र वर्षों तक पृथ्वी का भली भाँति पालन किया था । एक बार उस राजा सौदास ने श्रेष्ठ मंत्रियों से भली भाँति जाने हुए वन में शिकार खेलने की इच्छा से अपनी सेना को साथ लेकर प्रवेश किया । वहाँ उसके साथ निषाद भी मृग समूहों को मारते हुए साथ चल रहे थे । प्यास लगने पर राजा रेवा के पवित्र तट पर पहुँचा । हे मुने ! वहाँ पहुँच कर राजा ने स्नानादि नित्यकर्म से निवृत्त हो मंत्रियों के साथ भोजन किया और रात वहीं पर बितायी ।।३-८।।

ततः प्रातः समुत्थाय कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियां । बभ्राम मंत्रिसहितो नर्मदा तीरगे वने ॥९
वनाद्वनान्तरे गच्छन्नेक एव महीपतिः । आकर्णकृष्टबाणः सन् कृष्णसारं समन्वगात् ॥१०
दूरसैन्योऽश्वमारूढः स राजानुव्रजन्मृगम् । व्याघ्रद्वयं गुहासंस्थमपश्यत्सुरते रतम् ॥११
मृगपृष्ठं परित्यज्य व्याघ्रयोः सम्मुखं ययौ । धनुः संहितबाणेन तेनासौ शरशास्त्रवित् ॥१२
तां व्याघ्रीं पातयामास तीक्ष्णा ग्रनतपर्वणा । पतमाना तु सा व्याघ्री षट्त्रिंशद्योजनायता ॥१३
तडित्वद्घोरनिर्घोषा राक्षसी विकृताभवत् । पतितां स्वप्रियां वीक्ष्य द्विषन्स व्याघ्रराक्षसः ॥१४
प्रतिक्रियां करिष्यामीत्युक्त्वा चांतर्दधे तदा । राजा तु भयसंविग्नं वने सैन्यं समेत्य च ॥१५
तद्वृत्तं कथयन्सर्वान्स्वां पुरीं स न्यवर्त्तत । शंकमानस्तु तद्रक्षात्कृत्यं राजा सुदासजः ॥१६
परितत्याज मृगयां ततः प्रभृति नारद । गते बहुतिथे काले हयमेधमखं नृपः ॥१७
समारेभे प्रसन्नात्मा वसिष्ठाद्यैर्मुनीश्वरैः । तत्र ब्रह्मादि देवेभ्यो हविर्दत्वा यथाविधि ॥१८

समाप्य यज्ञं निष्क्रान्तो वसिष्ठः स्नातकोऽपि च ।

अत्रान्तरे राक्षसोऽसौ नृपहिंसितभार्यकः । कर्त्तुं प्रतिज्ञां यां राज्ञे समायातो रुषान्वितः ॥१९
स राक्षसस्तस्य गुरौ प्रयाते वसिष्ठवेषं तु तदैव धृत्वा ।
राजानमभ्येत्य जगाद भोक्ष्ये, मांसं समिच्छाम्यहमित्युवाच ॥२०
भूयः समास्थाय स सूदवेषं पक्वामिषं मानुषमस्यचादात् ।
स्थितश्च राजापि हिरण्यपात्रे धृत्वा गुरोरागमनं प्रतीक्षन् ॥२१
तन्मांसं हेमपात्रस्थं सौदासो विनयान्वितः । समागताय गुरवे ददौ तस्मै ससादरम् ॥२२
तं दृष्ट्वा चिंतयामास गुरुः किमिति विस्मितः ॥२३
अपश्यन्मानुषं मांसं परमेण समाधिना । अहोऽस्य राज्ञः दौः शील्यमभक्ष्यंदत्तवान्मम ॥२४

प्रातःकाल उठकर पूर्वाह्ण के नित्य कर्म को करने के बाद मंत्रियों को साथ ले, राजा नर्मदा तटवर्ती वन में विचरण करने के विचार से इधर-उधर घूमने लगा । संयोगवश एक वन से दूसरे वन में प्रवेश करते समय वह अकेला हो गया और कान तक बाण खींचकर वह एक कृष्णसार मृग के पीछे दौड़ा । उस समय उसकी सेना पीछे दूर रह गई थी । घोड़े पर सवार राजा ने आगे चल कर गुफा के भीतर मैथुन करते हुए व्याघ्रदम्पति को देखा और देखते ही मृग का पीछा छोड़ व्याघ्र दम्पति पर झुका, तथा अपने तीखे अग्रभाग में झुकी हुई गांठ से युक्त बाण से व्याघ्री को उसने मार गिराया । गिरते समय व्याघ्री ने बिजली से युक्त बादल की भाँति घोर गर्जना की और एक सौ चौवालीस कोस लम्बी भीषण आकार वाली राक्षसी का शरीर धारण कर मर गई । अपनी प्रियतमा को इस भाँति प्राणहीन देख वह व्याघ्र रूपधारी राक्षस अति द्वेष से—मैं तुमसे इसका बदला चुकाऊँगा—कहते हुए वहीं अन्तर्हित हो गया । भय से उद्विग्न राजा ने वन में स्थित सैन्यशिविर में जाकर वह वृत्तान्त सबको सुनाया और फिर अपनी नगरी को वह लौट आया । राजा मित्रसह उस राक्षस की बातों से निरन्तर सशंकित रहने लगा ॥९-१६॥

उस दिन से उसने शिकार खेलना ही बन्द कर दिया ।। हे नारद जी ! तदनन्तर बहुत दिन बीत जाने के बाद प्रसन्न चित्त राजा ने वसिष्ठ आदि महर्षियों के साथ अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया । वहाँ ब्रह्मा आदि देवताओं

इति विस्मयमापन्नाः प्रमन्युरभवन्मुनिः । अभोज्यं मद्विघाताय दत्तं हि पृथिवीपते ॥२५
तस्मात्तवापि भवतु ह्येतदेव हि भोजनम् । नृमांसं रक्षसामेव भोज्यं दत्तं मम त्वया ॥२६
तद्याहि राक्षसत्वं त्वं तदाहारोचितं नृप । इति शापं ददत्यस्मिन् सौदासो भयविह्वलः ॥२७
आज्ञप्तो भवतैवेति सकंपोऽस्मै व्यजिज्ञपत् । भूयश्च चिन्तयामास वसिष्ठस्तेन नोदितः ॥२८
रक्षसा वञ्चितं भूपं ज्ञातवान् दिव्यचक्षुषा । राजापि जलमादाय वसिष्ठं शप्तुमुद्यतः ॥२९
समुद्यतं गुरुं शप्तं दृष्ट्वा भूयोरुषान्वितम् । मदयंती प्रिया तस्य प्रत्युवाचाथ सुव्रता ॥३०

मदयंत्युवाच

भो भो ! क्षत्रियदायाद कोपं संहर्तुमर्हसि । त्वया यत्कर्म भोक्तव्यं तत्प्राप्तं नात्र संशयः ॥३१
गुरूं तुंकृत्य हुंकृत्य यो वदेन्मूढधीर्नरः । अरण्ये निर्जले देशे स भवेद्ब्रह्मराक्षसः ॥३२
जितेन्द्रिया जितक्रोधा गुरुशुश्रूषणेरताः । प्रयान्ति ब्रह्मसदनमिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥३३
तयोक्तो भूपतिः क्रोधं त्यक्त्वा भार्यां ननन्द च । जलं कुत्र क्षिपामीति चिंतयामास चात्मना ॥३४
तज्जलं यत्र संसिक्तं तद्भवेद्भस्मनिश्चितम् । इतिमत्वा जलं तत्तु पादयोर्न्यक्षिपत्स्वयम् ॥३५
तज्जलस्पर्शमात्रेण पादौ कल्मषतां ययौ । कल्माषपाद इत्येवं ततः प्रभृति विश्रुतः ॥३६

को यथाविधि हवि देकर और यज्ञ को समाप्तकर वसिष्ठ जी यज्ञ मण्डप से बाहर चले गये और अवभृथ स्नानकर चुकने पर वह राजा भी बाहर चला आया। ठीक इसी अवसर पर राजा द्वारा स्त्री के मारे जाने के कारण वह राक्षस बदला चुकाने की भावना से अतिरोषपूर्वक यज्ञमण्डप में आया और वहाँ से गुरु वशिष्ठ को बाहर गया हुआ समझकर उसी क्षण वसिष्ठ का वेश धारणकर राजा के पास पहुँचा और उससे कहने लगा कि मैं मांस खाना चाहता हूँ। तदनन्तर राक्षस ने रसोइये का रूप बनाया और मनुष्य का मांस पकाकर उसने राजा को दिया। राजा भी उसे सुवर्ण के पात्र में रखकर गुरु के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। जब वास्तव में गुरु वसिष्ठ जी वापिस आये तब राजा ने आदर पूर्वक वह मांस गुरु जी को समर्पित किया। उसे देख गुरु ने विस्मित होकर विचारा कि आखिर यह क्या चीज है ? ध्यान से देखने पर मालूम हुआ कि यह तो मनुष्य का मांस है। अति विस्मित मुनि क्रोध से अभिभूत हो गये और सोचने लगे कि अहो ! इस राजा की दुष्टता तो देखो, इसने मुझे अभक्ष्य नरमांस खाने को दिया है ॥१७–२४॥

वसिष्ठ कहने लगे राजन् ! तू ने मेरे तप का विनाश करने के लिए यह अखाद्य पदार्थ खाने को दिया है— इस कारण अब से यह तुम्हारा ही भोजन होगा। अरे मूर्खराजा ! नर मांस, जो राक्षसों का भोजन है, वही तूने मुझे दिया है, अतः तू इसके खाने का योग्य पात्र राक्षस हो जा। वसिष्ठ के इस भीषण शाप से राजा मित्रसह भय से विह्वल हो गये और काँपते हुए कहने लगे, महाराज ! इसके लिए तो आपने ही आज्ञा दी थी। राजा की ऐसी बात सुन वसिष्ठ ने पुनः विचार किया तो उन्हें दिव्यदृष्टि द्वारा ज्ञात हुआ कि राक्षस ने राजा से छल किया है। इस बात को जानने के बाद राजा भी वसिष्ठ को शाप देने के लिए उद्यत हो गया। राजा की पतिव्रता रानी मदयन्ती ने पति के क्रुद्ध होकर वसिष्ठ जी को शाप देने के लिए उद्यत देखकर कहाः—क्षत्रिय पुत्र ! क्रोध शान्त करो, दुष्कर्म का जो फल तुम्हें भोगना बदा था, वही प्राप्त हुआ है। जो मूढ़ मनुष्य अपने गुरु से 'तू' वा 'हूँ' कह कर बोलता है

कल्माषपादो मतिमान् प्रिययाश्वासितस्तदा । मनसा सोऽतिभीतस्तु ववंदे चरणं गुरोः ॥३७
उवाच च प्रपन्नस्तं प्राञ्जलिर्नयकोविदः । क्षमस्व भगवन्सर्वं नापराधः कृतोमया ॥३८
तच्छ्रुत्वोवाच भूपालं मुनिर्निःश्वस्य दुःखितः । आत्मानं गर्हयामास ह्यविवेकपरायणम् ॥३९
अविवेको हि सर्वेषामापदां परमं पदम् । विवेकरहितो लोके पशुरेव न संशयः ॥४०
राज्ञा त्वजानता नूनमेतत्कर्मोचितं कृतम् । विवेकरहितोऽज्ञोऽहं यतः पापं समाचरम् ॥४१
विवेकनियतो याति यो वा को वापि निर्वृतिम् । विवेकहीनमाप्नोति यो वा को वाप्यनिर्वृतिम् ॥४२
इत्युक्त्वा चात्मनात्मानं प्रत्युवाच मुनिर्नृपम् । नात्यंतिकं भवेदेतद् द्वादशाब्दं भविष्यति ॥४३
गंगा विन्द्वभिषिक्तस्य त्यक्त्वा वै राक्षसीं तनुम् । पूर्वरूपं त्वमापन्नो भोक्ष्यसे मेदिनीमिमाम् ॥४४
तद्विन्दुसेकसंभूतज्ञानेन गतकल्मषः । हरिसेवा परो भूत्वा परां शान्तिं गमिष्यसि ॥४५
इत्युक्त्वाथर्वविद्भूपं वसिष्ठः स्वाश्रमं ययौ । राजापि दुःखसंपन्नो राक्षसीं तनुमाश्रितः ॥४६
क्षुत्पिपासाविशेषार्तो नित्यं क्रोधपरायणः । कृष्णपक्षपाद्युतिर्भीमो विभ्राम विजने वने ॥४७
मृगांश्च विविधांस्तत्र मानुषांश्च सरीसृपान् । विहंगमान्प्लवंगांश्च प्रशस्तांस्तानभक्षयत् ॥४८
अस्थिभिर्बहुभिर्भूप: पीतरक्तकलेवरैः । रक्तान्तप्रेतकेशैश्च चित्रासीद्भूर्भयंकरी ॥४९

वह निर्जन वनस्थल में ब्रह्मराक्षस होता है। शास्त्रों का यह निश्चय है कि इन्द्रियों को तथा क्रोध को अपने वश में रखकर जो अपने गुरु की सेवा में बराबर लगे रहते हैं वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। स्त्री के समझाने पर राजा ने क्रोध छोड़ दिया और अपनी स्त्री की इस चतुरता पर उसका सम्मान किया और सोचने लगा कि इस शापार्थ लिए हुए जल को अब कहाँ फेंकू ? क्योंकि यह जल अब जिस वस्तु पर गिरेगा वह तुरत ही भस्म हो जायगी। ऐसा सोचने के उपरान्त राजा ने उसे अपने ही पैरों पर डाल लिया। जल का स्पर्श होते ही उसके पैर चितकबरे हो गये, उसी दिन से वह राजा कल्माषपाद नाम से विख्यात हुआ ॥२५–३६॥

कल्माषपाद परम बुद्धिमान् राजा था। स्त्री के समझाने पर मन में बहुत डरते हुए उसने गुरु के चरणों में प्रणाम किया और फिर उस नीतिज्ञ राजा ने हाथ जोड़ गुरु की शरण में जाकर निवेदन किया:—'भगवन् मैने जो सब अपराध किये हैं, उन्हें आप क्षमा करें।' वसिष्ठ जी राजा की इस आर्तवाणी को सुन स्वयं परम दुःखित हुए और बोले—'राजन् ! मैं स्वयं बड़ा अविवेकी हूँ, मुझे सैकड़ों बार धिक्कार है। कार्य एवं अकार्य का विवेक न रखना सभी आपत्तियों का मूल है, विवेक से हीन व्यक्ति पशु हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। हे राजन् ! तुम तो अनजान थे, अतः यदि मुझे तुम शाप दे दिये होते तो ठीक ही था, मैं तो एक दम मूढ़ हो गया, मेरा तो सारा विवेक चौपट हो गया, जिससे इतना गुरुतम अपराध हुआ। जो विवेक द्वारा अपने चित्त को वश में रखता है, वह चाहे कोई भी क्यों न हो—सुख पाता है और जो विवेक को छोड़ देता है, उसे सभी प्रकार की यातनाएँ आकर घेरती हैं।' इस प्रकार स्वयं अपनी निन्दा करते हुए वसिष्ठ जी राजा से कहने लगे :—'राजन् ! तुम्हारे ऊपर यह शाप केवल बारह वर्षों तक रहेगा, इससे अधिक दिनों तक नहीं रह सकेगा, इसके बाद इसका प्रभाव नष्ट हो जायगा गंगा जल की बूदों से अभिषिक्त होकर इस राक्षस शरीर से तुम छूट जाओगे और पुनः पूर्ववत् स्वरूप प्राप्तकर पृथ्वी का उपभोग करोगे ॥३६–४४॥

ऋतुत्रये स पृथिवीं शतयोजनविस्तृताम् । कृत्वातिदुःखितां पश्चाद्वनान्तरमुपागमत् ॥५०
तत्रापि कृतवान्नित्यं नरमांसाशनं सदा । जगाम नर्मदातीरं मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥५१
विचरन्नर्मदातीरे सर्वलोकभयंकरः । अपश्यत् कंचन मुनिं रमंतं प्रियया सह ॥५२
क्षुधानलेन संतप्तस्तं मुनिं समुपाद्रवत् । जग्राह चातिवेगेन व्याधो मृगशिशुं यथा ॥५३
ब्राह्मणी स्वपतिं वीक्ष्य निशाचरकरस्थितम् । शिरस्यंजलिमाधाय प्रोवाच भयविह्वला ॥५४

इति श्री बृहन्नारदीय पुराणतोगंगामाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

गंगाजल के अभिषेक से तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा, सारे पाप नष्ट हो जायेंगे और तुम हरि सेवा कर परमशान्ति प्राप्त करोगे । इस प्रकार कहकर अथर्ववेद के ज्ञाता वसिष्ठ जी अपने आश्रम की ओर चले गये और राजा राक्षसशरीर धारण कर कष्ट का अनुभव करने लगा । सर्वदा भूख-प्यास से दुःखी रहने लगा । सर्वदा क्रोध से पूर्ण रहने लगा । कृष्णपक्ष की रात के समान भीषण काली आकृति से युक्त होकर निर्जन वन में इधर-उधर भटकने लगा, और जहाँ-तहाँ अनेक प्रकार के मृग, मनुष्य, पक्षी, सर्प और बड़े-बड़े वानरों को पकड़-पकड़ कर खाने लगा । वहाँ की सारी पृथ्वी चुसे हुए रक्तवाली लाशों से, हड्डियों से, रक्त से चिपके हुए मरे आदमियों के केशों से आकीर्ण हो गई और परम भयंकर दिखाई पड़ने लगी । छः मास के भीतर ही चार सौ कोस की विस्तृत पृथ्वी को अति दुःखित करने के पश्चात् वह दूसरे वन को चला गया । वहाँ जाकर भी उसने सर्वदा मनुष्यों का मांस खाना शुरू किया और इस प्रकार एक बार मुनियों तथा सिद्धजनों से सेवित नर्मदा के पवित्र तट पर पहुँच गया । सभी को भय पहुँचाने वाले उस भयंकर राक्षस ने अपनी प्रिया के साथ रमण करते हुए किसी मुनि को देखा । देखते ही क्रोधाग्नि से अति दुःखित होने के कारण झपट कर जैसे व्याधा मृग के बच्चों को दबोच ले उसी भाँति उसने अपने हाथों में उसे कस लिया । ब्राह्मणी ने उस भयंकर राक्षस के हाथों में पड़े हुए अपने प्राणपति को देखकर अति भयभीत हो हाथ जोड़कर निवेदन किया ॥४५-५४॥

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गंगामाहात्म्य नामक द्वितीय अध्याय समाप्त ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

ब्राह्मण्युवाच

भो भो नृपति शार्दूल त्राहि मां भयविह्वलाम् । प्राणप्रियप्रदानेन कुरु पूर्णं मनोरथम् ॥१
नाम्ना मित्रसहस्त्वं हि सूर्यवंशसमुद्भवः । न राक्षसस्ततोऽनाथां पाहि मां विजने वने ॥२
या नारी भर्तृरहिता जीवत्यपि मृतोपमा । तथापि बाले वैधव्यं किं वक्ष्याम्यरिमर्दन ॥३
न मातापितरौ जाने नापि बंधुं च कंचन । पतिरेव परो बन्धुः परमं जीवनं मम ॥४
भवान्वेत्त्यखिलान्धर्मान् योषितां वर्तनं यथा । त्रायस्व बुद्धिरहितां बालापत्यां जनेश्वर ॥५
कथं जीवामि पत्यास्मिन् हीना हि विजने वने । दुहिताहं भगवतस्त्राहि मां पतिदानतः ॥६
प्राणदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति । वदन्तीति महाप्राज्ञाः प्राणदानं कुरुष्व मे ॥७

इत्युक्त्वा सा पपातास्य राक्षसस्य पदाग्रतः । एवं संप्रार्थ्यमानोऽपि ब्राह्मण्या राक्षसो द्विजम् ।।८
अभक्षयत् कृष्णसारशिशुं व्याघ्रो यथाबलात् । ततो विलप्य बहुधा तस्य पत्नी पतिव्रता ।।९
पूर्वशापहतं भूपमशपत् क्रोधिता पुनः । पतिं मे सुरतासक्तं यस्माद्धिसितवान्बलात् ।।१०
तस्मात्स्त्रीसंगमं प्राप्तस्त्वमपि प्राप्स्यसे मृतिम् । शप्त्वैवं ब्राह्मणी क्रुद्धा पुनः शापांतरं ददौ ।।११
राक्षसत्वं ध्रुवं तेऽस्तु मत्पतिर्भक्षितो यतः । सोपि शापद्वयं श्रुत्वा तया दत्तं निशाचरः ।।१२
प्रमन्युः प्राह विसृजन् कोपादंगारसंचयम् । दुष्टे कस्मात्प्रदत्तं मे वृथा शापद्वयं त्वया ।।१३
एकस्यैवापराधाय शापस्त्वेको ममोचितः । यस्मात् क्षिपसि दुष्टाग्रेमयि शापांतरं ततः ।।१४
पिशाचयोनिमद्यैव याहि पुत्रसमन्विता । तेनैवं ब्राह्मणी शप्ता पिशाचत्वे तदा गता ।।१५
क्षुधार्ता सुस्वरं भीमा रुरोदापत्यसंयुता । राक्षसश्च पिशाची च क्रोशंतौ निर्जने वने ।।१६
जग्मतुर्नर्मदा तीरे वटं राक्षससेवितं । औदासीन्यं गुरौ कृत्वा राक्षसीं तनुमाश्रितः ।।१७
तत्रास्ते दुःखसंतप्तः कश्चिल्लोकविरोधकृत् । राक्षसं च पिशाची च दृष्ट्वा स्ववटमागतौ ।।१८

ब्राह्मणी ने कहा :—हे राजसिंह ! मुझ भयभीता की आप रक्षा करें । मेरे प्रियतम को छोड़कर मेरे मनोरथ को पूरा करें । आप राक्षस नहीं हैं, जो ऐसे कठोरकर्म कर रहे हैं; प्रत्युत आप तो सूर्यवंशोत्पन्न मित्रसह नामक नृपति वर हैं । इस निर्जन वन में मुझ असहाया की आपको रक्षा करनी चाहिए ! हे अरिमर्दन ! इस जगत् में जिस अभागिनी स्त्री का पति नहीं रहता वह जीती हुई भी मरी के समान है, फिर अपने बालवैधव्य के दुःख को मैं क्या हूँ आप स्वयं समझ सकते है । मैं न तो अपनी मां को जानती हूँ, न पिता को जानती हूँ, न किसी अपने भाई को ही जानती हूँ, मेरे प्राणप्रिय पतिदेव ही मेरे परमबन्धु हैं और उन्हीं को पाकर मेरा जीवन वन में भी सार्थक है । आप समस्त मानवधर्म के जानने वाले हैं । स्त्रियों के धर्म की भी सब बातें तो आपको मालूम ही हैं । हे नरनाथ ! मैं निर्बुद्धि अबला छोटे बच्चे की माँ हूँ । मेरी आप रक्षा करें । इस निर्जन वन में भला मैं अपने प्राणप्यारे के बिना कैसे जीवित रह सकती हूँ । मैं आपकी पुत्री हूँ, मुझे पति का दान देकर आप मेरे प्राणों की रक्षा करें । इस विश्व में प्राणदान से बढ़कर कोई दान नहीं है, और न होगा अतः यही समझकर मुझे प्राणदान दें ।

ऐसी बातें कहती हुई वह उस ब्रह्मराक्षस के चरणों पर गिर पड़ी; किन्तु इतना आर्त निवेदन करने पर भी कृष्णमृगशावक को सिंह की भाँति वह राक्षस उस ब्राह्मण को चबा गया । ऐसा देख उसकी पतिव्रता पत्नी ने घोर विलाप किया और प्रथम शाप से विनष्ट हुए उस राजा को पुनः क्रुद्ध होकर शाप दे दिया—'हे राक्षस ! तूने रति में आसक्त मेरे प्राणप्रिय को बलपूर्वक मार डाला है, अतः तू भी स्त्री प्रसंग के अवसर पर मृत्यु को प्राप्त होगा ।' अति क्रुद्ध ब्राह्मणी ने इस शाप को देने के बाद फिर दूसरा भी शाप दिया 'तूने मेरे प्रियतम को खा लिया है अतः यह तेरा राक्षसत्व अटल हो जायगा ।' अपने लिए इन उग्र दो शापों को सुन राक्षस भी क्रोध से धधकने लगा और क्रोध से अंगारे उगलते हुए बोला—'अरी दुष्टे ! एक अपराध के लिए तुम्हें एक ही शाप देना समुचित था, फिर तू ने मुझे व्यर्थ में दो शाप क्यों दिये ? हे दुष्टे ! तूने मुझे अकारण ही यह दूसरा शाप दिया । अतः तू भी अपने पुत्र समेत राक्षसयोनि में उत्पन्न हो जा ।' ब्रह्म राक्षस के शाप देते ही ब्राह्मणी पुत्र समेत राक्षसी हो गई और पुत्र समेत भूखी होकर भयंकर चीखें मारती हुई रुदन करने लगी । इस प्रकार शापोपहत वह राक्षस तथा बच्चे समेत राक्षसी

उवाच क्रोधबहुलो वटस्थो ब्रह्मराक्षसः । किमर्थमागतौ भीमौ युवां मत्स्थानमीप्सितम् ॥१९
ईदृशौ केन पापेन जातौ मे ब्रुवतां ध्रुवम् । सौदासस्तद्वचः श्रुत्वा तया यच्चात्मना कृतम् ॥२०
सर्वं निवेदयित्वास्मै पश्चादेतदुवाच ह ।

सौदास उवाच

कस्त्वं वद महाभाग त्वया वै किं कृतं पुरा ॥२१

सख्युर्ममातिस्नेहेन तत्सर्वं वक्तुमर्हसि । करोति वचनं मित्रे योवा कोवापि दुष्टधीः ॥२२
स हि पापफलं भुंक्ते यातनास्तु युगायुतम् । जन्तूनां सर्वदुःखानि क्षीयन्ते मित्रदर्शनात् ॥२३
तस्मान्मित्रेषु मतिमान्न कुर्याद्वंचनं कदा । कल्माषपादेनेत्युक्तो वटस्थो ब्रह्मराक्षसः ॥२४
उवाचप्रीतिमापन्नो धर्मवाक्यानि नारद ।

ब्रह्मराक्षस उवाच

अहमासं पुरा विप्रो मागधो वेदपारगः ॥२५

सोमदत्त इति ख्यातो नाम्ना धर्मपरायणः । प्रमत्तोऽहं महाभाग विद्यया वयसा धनैः ॥२६
औदासीन्यं गुरोःकृत्वा प्राप्तवानीदृशींगतिम् । न लभेऽहं सुखं किंचित् जिताहारोऽतिदुःखितः ॥२७
मया तु भक्षिता विप्राःशतशोथ सहस्रशः । क्षुत्पिपासापरो नित्यमत्तस्तापेन पीडितः ॥२८

चिल्लाते हुए अति क्षुधार्त हो नर्मदा तट पर स्थित एक राक्षस के निवासस्थान बरगद के वृक्ष के पास पहुँचे । उस बरगद के वृक्ष में गुरु से उदासीनता का व्यवहार रखने एवं लोक विरोधी होने के कारण एक राक्षस आसुरी शरीर प्राप्तकर दुःख से चिन्तित हो निवास करता था । राक्षस और पिशाची को अपने आश्रयस्थल के समीप आया देख वह अति क्रोध में भरकर बोला । अरे भयंकर प्राणियो ! तुम किसलिए इस प्रिय स्थान पर आये हुए हो, और बताओ कि किस घोर पाप के कारण तुम लोगों की यह गति हुई है । राक्षस की यह बात सुन सुदास-पुत्र मित्रसह ने स्वयं अपने किये गये तथा ब्राह्मणी के किये गये अपराधों की चर्चा की और फिर कहा ॥१-२०॥

सौदास ने कहाः—हे महाभाग्यशालिन् ! आप भी यह बताइये कि आप कौन हैं ? और पहले कौन-सा ऐसा अपराध किया था जिससे आपको यह दुर्गति भोगनी पड़ रही है, स्नेहपूर्वक मुझे अपना मित्र मानकर आप अपना सब वृत्तान्त मुझसे बताइये । जो मनुष्य अपने मित्र से कपट व्यवहार रखता है, वह चाहे कोई भी हो दस सहस्र युगों तक अपने पापकर्म का कुपरिणाम भोगता है । मित्रों का शुभदर्शन कर प्राणी के सभी दुःख दूर हो जाते हैं, इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति को कभी भूलकर भी मित्र से कोई दुराव नहीं करना चाहिए। नारद जी ! कल्माषपाद की ऐसी बातें सुन बरगद पर अवस्थित वह ब्रह्मराक्षस अति प्रसन्न हुआ और धर्मयुक्त वाणी बोला ॥२१-२४॥

ब्रह्मराक्षस ने कहा :—मैं पूर्वजन्म में मगध देश निवासी, वेदों का पारगामी सोमदत्त नामक ब्राह्मण था । हे महा-भाग्यशाली ! विद्या, अवस्था और धन के मद से उन्मत्त होकर मैंने गुरु के साथ उपेक्षा का व्यवहार किया, उसी अपराध के कारण आज मेरी यह दशा हो रही है । मुझे अब सुख नहीं मिलता, भूख ने मुझे एकदम व्याकुल कर रखा

जगत्त्रासकरोनित्यं मांसाशनपरायण: । गुर्ववज्ञा मनुष्याणां राक्षसत्वप्रदायिनी ॥२९
मयानुभूतमेतद्धि तत: श्रीमान्न चाचरेत् ।

कल्माषपाद उवाच

गुरुस्तु कीदृश:प्रोक्त: कस्त्वया श्लाघित: पुरा ॥३०
तद्वदस्व सखे सर्वं परं कौतूहलं हि मे ।

ब्रह्मराक्षस उवाच

गुरव:सन्ति बहव: पूज्या वन्द्याश्च सादरम् ॥३१
तानहं कथयिष्यामि श्रृणुष्वैकमना: सखे । अध्यापकश्च वेदानां वेदार्थश्रुतिबोधक: ॥३२
शास्त्रस्ववक्ता धर्मवक्ता नीतिशास्त्रोपदेशक: । मंत्रोपदेशव्याख्याकृद्वेदसंदेहहृत्तथा ॥३३
व्रतोपदेशकश्चैव भयत्राताऽन्नदो हि च । श्वसुरो मातुलश्चैव ज्येष्ठभ्राता पिता तथा ॥३४
उपनेता निषेक्ता च संस्कर्त्ता मित्रसत्तम । एते हि गुरव: प्रोक्ता: पूज्या वन्द्याश्च सादरम् ॥३५

कल्माषपाद उवाच

गुरवो बहव:प्रोक्ता एतेषां कतमो वर: । तुल्या: सर्वेप्युत सखे तद्यथावद्धि ब्रूहि मे ॥३६

ब्रह्मराक्षसउवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ यत्पृष्टं तद्वदामि ते । गुरुमाहात्म्य-कथनं श्रवणंचानुमोदनम् ॥३७
सर्वेषां श्रेय आधत्ते तस्माद्वक्ष्यामि साम्प्रतम् । एते समान पूजार्हा: सर्वदा नात्र संशय: ॥३८

है, इसी कारण मैं अतिशय दु:खी रहता हूँ, अब तक मैंने सैकड़ों क्या सहस्रों ब्राह्मणों को मारकर खा डाला है। इतने पर भी मेरी भूख की ज्वाला शान्त नहीं हुई, प्यास भी नहीं बुझी। अन्त:करण की अग्नि से सदा जला करता हूँ सर्वदा संसार को भयभीत करता हूँ और मांस खाने में तत्पर रहता हूँ। गुरुजनों का अपराध मनुष्य को राक्षसयोनि में डाल देता है, ऐसा मुझे अनुभव हो चुका, अत: जो लोग श्रीमान् हैं, उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए ॥२५-२९॥

कल्माषपाद ने कहा :—शास्त्रों में गुरु का क्या लक्षण बताया गया है ? आपने कैसे गुरु की प्रशंसा की है ? हे सुहृद ! मुझे आपकी बातों से बड़ा कुतूहल हो रहा है अत: विस्तारपूर्वक मुझे सुनाइये ॥३०॥

ब्रह्मराक्षस ने कहा :—हे सखे ! जगत् में गुरु अनेक प्रकार के हैं, उन सभी की आदरपूर्वक पूजा और वन्दना करनी चाहिए, उनका वर्णन मैं तुमसे कर रहा हूँ। एकाग्रचित्त होकर सुनो। वेदों का पढ़ाने वाला, वेदार्थ तथा श्रुतियों को बतलाने वाला, शास्त्रों की व्याख्या बतलाने वाला, धर्मोपदेश करने वाला, नीतिशास्त्र का उपदेश करने वाला, मंत्र का उपदेश और व्याख्या करने वाला, वेदों में उठी हुई शंकाओं का निर्मूलन करने वाला, व्रतोपदेष्टा, भय से रक्षा करने वाला, अन्नदाता, श्वसुर, मामा, बड़ा भाई, पिता, यज्ञोपवीत कराने वाला, गर्भाधान आदि संस्कारों को कराने वाला—ये सभी गुरु हैं, मनुष्य को इन सभी की आदरपूर्वक पूजा करनी चाहिए, वन्दना करनी चाहिए ॥३१-३५॥

कल्माषपाद ने कहा :—आपने बहुत-से गुरुओं को बतलाया, इनमें सर्वश्रेष्ठ कौन है ? अथवा सभी एक समान हैं ? इसका वास्तविक भेद मुझे बताइये ॥३६॥

तथापि शृणु वक्ष्यामि शास्त्राणां सारनिश्चयम् । अध्यापकस्य वेदान्तं मंत्रव्याख्याकृतस्तथा ॥३९
पिता च धर्मवक्ता च विशेषगुरवःस्मृताः । एतेषामपि भूपाल शृणुष्व परमं गुरुम् ॥४०
सर्वशास्त्रार्थ तत्त्वज्ञैर्भाषितं प्रवदामिते । यः पुराणादि वदति धर्मयुक्तानि पण्डितः ॥४१
संसारपाशविच्छेदकरणानि स उत्तमः । देवपूजार्हकर्माणि देवतापूजने फलम् ॥४२
ज्ञायते च पुराणेभ्यस्तस्मातानीह देवताः । सर्ववेदार्थसाराणि पुराणानीति भूपते ॥४३
वदन्ति मुनयश्चैव तद्वक्ता परमोगुरुः । यः संसारार्णवं तर्तुमुद्योगं कुरुते नरः ॥४४
शृणुयात्स पुराणानि इति शास्त्र विभागकृत् । प्रोक्तवान् सर्व धर्मांश्च पुराणेषु महीपते ॥४५
तर्कस्तु वाद हेतुस्यान्नीतिस्त्वैहिकसाधनम् । पुराणानि महाबुद्धे इहामुत्र सुखाय हि ॥४६
यः शृणोति पुराणानि सततं भक्तिसंयुतः । तस्य स्यान्निर्मला बुद्धिर्भूयो धर्मपरायणः ॥४७
पुराणश्रवणाद्भक्तिर्जायते श्रीपतौ शुभा । विष्णुभक्तिनृणां भूप धर्मबुद्धिः प्रवर्तते ॥४८
धर्मात्पापानि नश्यन्ति ज्ञानं शुद्धं च जायते । धर्मार्थकाममोक्षाणां ये फलान्यभिलिप्सवः ॥४९
शृणुयुस्ते पुराणानि प्राहुरित्थं पुराविदः । अहंतु गौतममुनेः सर्वज्ञाद् ब्रह्मवादिनः ॥५०
श्रुतवान्सर्वधर्मार्थं गंगातीरे मनोरमे । कदाचित्परमेशस्य पूजां कर्तुमहं गतः ॥५१
उपस्थितायापि तस्मै प्रणामं न ह्यकारिषम् । स तु शान्तो महाबुद्धिर्गौतमश्तेजसां निधिः ॥५२
मन्त्रोदितानि कर्माणि करोतीति मुदं ययौ । यस्त्वर्चितो मया देवः शिवः सर्वजगद्गुरुः ॥५३
गुर्ववज्ञा कृता येन राक्षसत्वे नियुक्तवान् । ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि योऽवज्ञां कुरुते गुरोः ॥५४
तस्यैवायुः प्रणश्यन्ति धीर्विद्यार्थात्मजक्रियाः । शुश्रूषां कुरुते यस्तु गुरूणां सादरं नरः ॥५५
तस्य संपद्भूवेभूय इति प्राहुर्विपश्चितः । तेन शापेन दग्धोऽहमनन्तश्चैव क्षुधाग्निना ॥५६
मोक्षं कदा प्राप्स्यामि न जाने नृपसत्तम । एवं वदति विप्रेन्द्र वटस्थेऽस्मिन्निशाचरे ॥५७

ब्रह्मराक्षस ने कहा :—महा बुद्धिमान् ! तुमने बड़ा अच्छा प्रश्न किया, बहुत अच्छा पूछा । जो कुछ तुमने पूछा है, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो । गुरु के माहात्म्य का कथन, श्रवण और अनुमोदन यह भी सब कल्याण करने वाला है । इसलिए मैं इसका विवेचन करता हूँ । यद्यपि ये सभी एक ही समान पूजनीय हैं तथापि शास्त्रों का जो निश्चय है, मैं उसे बता रहा हूँ । सुनिये । वेदपाठी, मंत्र व्याख्याता, पिता और धर्मवक्ता—ये सभी गुरुजनों में विशिष्ट हैं । हे राजन् ! इन चारों में भी जो सर्वश्रेष्ठ है, उसे भी मैं बता रहा हुँ, सुनिये । इस विषय में सभी शास्त्रों के निष्कर्षों को जो लोग जानते हैं, मैं उनका अभिमत बतला रहा हूँ । जो संसार के पाश को काटने वाले धर्ममय पुराणों का व्याख्याता है, वह उत्तम गुरु है । देवपूजा के कर्म और देवपूजा के फल पुराणों द्वारा ही मालूम होते हैं । अतः हे राजन् ! पुराण सभी वेदों के तात्पर्य के निचोड़ है, इसका व्याख्यान करने के कारण वे देवता स्वरूप हैं । मुनिजन भी यही बतलाते हैं कि जो संसार-सागर से पार होने का उद्योग करता है, वह पुराणों को सुनता है । हे राजन् ! सभी शास्त्रों के विभाजक व्यास जी ने पुराणों में सभी धर्मों का वर्णन किया है ॥३७-४५॥

हे परम बुद्धिमान् ! तर्क करना तो विवाद का मूल कारण है, नीति से इस लोक के कार्य सिद्ध होते हैं, पुराण ऐहिक, परलौकिक-दोनों सिद्धियों के दाता हैं । जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक सदा पुराणों को सुनता है, उसकी बुद्धि निर्मल

धर्मशास्त्रप्रसंगेन तयोः पापं क्षयंगतम् । एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः कश्चिद्विप्रोऽतिधार्मिकः ॥५८
कलिंगदेश संभूतो नाम्ना गर्ग इतिश्रुतः । वहन् गंगाजलं स्कन्धे स्तुवन्विश्वेश्वरं प्रभुम् ॥५९
गायन्नामानि तस्यैव मुदाहृष्टतनूरुहः । तमागतं मुनिं दृष्ट्वा पिशाची राक्षसी चते ॥६०
प्राप्ता नः पारणेत्युक्त्वा प्राद्रवन्नूद्ध् वंबाहवः । तेन कीर्तितनामानि श्रुत्वा दूरे व्यवस्थिताः ॥६१
अशक्तास्तं धर्षयितुमिदमूचुश्च राक्षसाः । अहो विप्र महाभाग नमस्तुभ्यं महात्मने ॥६२
नामकीर्तनमाहात्म्याद्राक्षसा दूरगा वयम् । अस्माभिर्भक्षिताः पूर्वं विप्राः कोटिसहस्रशः ॥६३
नाम प्रावरणं विप्र रक्षति त्वां महाभयात् । नामश्रवणमात्रेण राक्षसा अपि भो वयम् ॥६४
परां शान्ति समुत्पन्ना महिम्ना ह्यच्युतस्यवै । सर्वथा त्वं महाभाग रागादिरहितोह्यसि ॥६५

हो जाती है और वह अधिक धर्म करने लगता है। पुराणों के सुनने से श्रीपति भगवान् विष्णु की कल्याणकारिणी भक्ति मिलती है, हे राजन् ! जो मनुष्य भगवान के भक्त होते हैं, उनकी बुद्धि सर्वदा धर्म में लगी रहती है, धर्म से पाप नष्ट हो जाते हैं, और निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है। प्राचीन ज्ञानी लोग कहते हैं कि 'जो धर्म, अर्थ, ज्ञान एवं मोक्ष के इच्छुक हैं, वे पुराणों को सुनें।' मैंने तो गंगा जी के रमणीय तट पर सर्वज्ञ ब्रह्मवेत्ता गौतम जी से सभी धर्मों के तात्पर्य को सुना था। एक समय मैं शिवपूजा कर रहा था, इसी समय मेरे गुरु जी आ गये, पूजा में निरत होने के कारण मैंने उन्हें प्रणाम नहीं किया, परन्तु गौतम जी परम बुद्धिमान तथा तेजस्वी थे इसलिए वे शान्त रहे और यह समझकर कि यह मंत्र शास्त्रोक्त कार्य कर रहा है प्रसन्न हुए; परन्तु मैं जिन जगत् गुरु भगवान शंकर की पूजा में तत्पर था, वे गुरु की अवज्ञा के कारण अतिक्रुद्ध हुए और मुझे राक्षस बना दिया। अतः जो व्यक्ति जान या अनजान में गुरु का अपमान करता है, उसकी बुद्धि, विद्या, धन, सन्तान और सत्कर्म-सभी नष्ट हो जाते हैं। और जो आदर-पूर्वक गुरुजनों की सेवा में तत्पर रहते हैं; हे राजन ! उन्हें सम्पदायें प्राप्त होती हैं, ऐसा विद्वान् कहते हैं। मैं शिव जी के उसी शाप से जल रहा हूँ, भीतर से भूख की अग्नि मुझे और भी जलाये जा रही है। न जाने इस दुःख से मेरा कब पिण्ड छूटेगा ॥४६-५७

हे ब्रह्मर्षि नारद जी ; बरगद के वृक्ष पर अवस्थित वह ब्रह्मराक्षस इस प्रकार की अनुताप भरी बातें कर रहा था कि धार्मिक चर्चा के कारण उसका पाप विनष्ट हो गया, और उसी अवसर पर एक परम धार्मिक ब्राह्मण वहाँ आ गये। वह विद्वान् ब्राह्मण कलिंग देश के थे, उसका नाम गर्ग था, कंधे पर गंगा जल लिये हुए वह विश्वेश्वर प्रभु की स्तुति कर रहे थे, और उन्हीं के नामों का कीर्तन कर रहे थे, प्रसन्नता के कारण उनकी रोमावलि पुलकित थी, उस मुनि को वहाँ उपस्थित देख वह पिशाची और राक्षस 'हमारा भोजन आ गया,' ऐसा कहते हुए हाथ उठाकर दौड़ पड़े, परन्तु उच्चारित किये गये नामों को सुनकर दूर ही रुककर अशक्त हो गये और ऐसा कहने लगे—'अहो ! महाभाग्यशाली ब्राह्मण ! आप परम महात्मा हैं आप को हम लोग प्रणाम करते हैं,, जिन भगवान् विष्णु के नाम माहात्म्य से हम जैसे क्रूर राक्षस आप के समीप नहीं फटक सकते, ऐसे भगवान् को हमारा प्रणाम है। हमने आज के पूर्व हजारों क्या करोड़ों ब्राह्मणों को खा डाला है, किन्तु हे ब्राह्मण ! यह भगवन्नाम का दुर्ग इस भय से तुम्हारे प्राणों की रक्षा कर रहा है। हम सब यद्यपि राक्षस हैं, किन्तु भगवान् के नाम श्रवण से हमें भी परम शान्ति अनुभव हो रही है, अहो भगवान् अच्युत ही की महिमा अपार है। हे महाभाग्यशाली ! आप

गंगाजलाभिषेकेण पाह्यस्मात्पातकोच्चयात् । हरिसेवापरो भूत्वा पश्चात्मानं तु तारयेत् ।।६६
स तारयेजगत्सर्वमितिशंसंति सूरयः । अपहाय हरेर्नाम घोरसंसारभेषजम् ।।६७
केनोपायेन लभ्येत मुक्तिः सर्वत्र दुर्लभा । लोहोडुपेन प्रतरन्निमज्जत्युदके तथा ।।६८
तथैवाकृतपुण्यास्तु तारयन्ति कथं परान् । अहो चरित्रं महतां सर्वलोकसुखावहम् ।।६९
यथा हि सर्वलोकानामानन्दाय कालनिधिः । पृथिव्यां यानि तीर्थानि पवित्राणि द्विजोत्तम ।।७०
तानि सर्वाणि गंगायाः कणस्यापि समानि न । तुलसीदल संमिश्रमपि सर्षपमात्रकम् ।।७१
गंगाजलं पुनात्येव कुलानामेकविंशतिम् । तस्माद् विप्र महाभाग सर्वशास्त्रार्थकोविद् ।।७२
गंगाजलप्रदानेन पाह्यस्मान् पापकर्मिणः । इत्याख्यातं राक्षसैस्तैः गंगामाहात्म्यमुत्तमम् ।।७३
निशम्य विस्मयाविष्टो बभूव द्विजसत्तमः । एषामपीदृशी भक्तिर्गंगायां लोकमातरि ।।७४
किमुज्ञानप्रभावाणां महतां पुण्यशालिनाम् । अथासौ मनसा धर्मं विनिश्चित्य द्विजोत्तमे ।।७५
सर्वभूतहितो भक्तः प्राप्नोतीति परंपदम् । ततोविप्रः कृपाविष्टो गंलाजलमनुत्तमम् ।।७६
तुलसीदलसंमिश्रं तेषु रक्षःस्वसेचयत् । राक्षसास्तेनसिक्तास्तु सर्षपोपमबिन्दुना ।।७७
विसृज्य राक्षसं भावमभवन्देवतोपमाः । ब्राह्मणी पुत्रसंयुक्ता सोमदत्तस्तथैव च ।।७८
कोटिसूर्यप्रतीकाशा बभूवुर्विबुधर्षभा । शंखचक्रगदाचिह्नहरिसारूप्यमागताः ।।७९
स्तुवन्तो ब्राह्मणं सम्यक्ते जग्मुर्हरि मंदिरम् । राजा कल्माषपादस्तु निज रूपं समास्थितः ।।
जगाम महतीं चिन्तां दृष्ट्वा तान्मुक्तिगानधान् ।।८०

तस्मिन्राज्ञि सुदुःखार्ते गूढ-रूपा सरस्वती । धर्ममूलं महावाक्यं बभाषेऽगाधया गिरा ।।८१
भो भो राजन् महाभाग न दुःखं गन्तुमर्हसि । राजंस्तवापि भोगान्ते महच्छ्रेयो भविष्यति ।।८२
इतीरितं समाकर्ण्य भारत्या नृपसत्तमः । मनसानिर्वृतिं प्राप्य सस्मार च गुरोर्वचः ।।
पूर्ववृत्तं च विप्राय सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ।।८३।।
ततो नृपस्तु कालिंगं प्रणम्य विधिवन्मुने । नामानि व्याहरन् विष्णोः सद्यो वाराणसीं ययौ ।।८४

तो रागादि विकारों से बिलकुल शून्य हैं, (अतः हमारी कुचेष्टाओं के प्रतीकार की भावना आप में न होनी चाहिए) । ।।५८-६५।।

अतः गंगाजल का अभिषेक कर हमें इस बहते हुए पाप से बचाइये । विद्वानों का कथन है कि जो हरिसेवा में परायण होकर अपने को तारता है, वह समस्त जगत् को भी तार सकता है । हरि का नाम इस भयंकर संसार की महौषधि है, मुक्ति सबसे बढ़कर दुर्लभ वस्तु है । बताओ, इस भगवन्नाम को छोड़कर वह किसी अन्य उपायों से भी प्राप्त हो सकती है ? लोहे की नाव द्वारा जल में तैरनेवाला डूब जाता है, इसी प्रकार जिसने स्वयं पुण्य नहीं किया है वह दूसरों को कैसे तार सकता है ? जैसे चन्द्रमा सभी लोगों, को आनन्द देता है, उसी प्रकार महान् पुरुषों के चरित भी सबको सुख देते हैं । हे द्विजोत्तम ! इस पृथ्वी तल में जितने भी तीर्थ हैं, वे सब गंगा के कणमात्र की भी समानता नहीं कर सकते । तुलसी दल पड़ा हुआ सरसों के बराबर भी गंगाजल इक्कीस पीढ़ियों को तारने वाला है । अतः हे सर्व-शास्त्र विशारद ! महाभाग्यशाली ब्राह्मण ! गंगाजल का दान देकर हम पाप कर्मियों की रक्षा कीजिये।

षण्मासं तत्र गंगायां स्नात्वा दृष्ट्वा सदाशिवम् । ब्राह्मणीदत्तशापात्तु मुक्तो मित्रसहोऽभवत् ॥८५
ततस्तु स्वपुरीं प्राप्तो वसिष्ठेन महात्मना । अभिषिक्तो मुनिश्रेष्ठ स्वकं राज्यमपालयत् ॥८६
पालयित्वा महीं कृत्स्नां भुक्त्वा भोगान् स्त्रियं विना । वसिष्ठात्प्राप्य सन्तानं गतोमोक्षं नृपोत्तमः ॥८७
नैतच्चित्रं द्विजश्रेष्ठ ! विष्णोर्वाराणसीगुणान् । गृणञ्छृण्वन् स्मरन् गङ्गां पीत्वा मुक्तो भवेन्नरः ॥८८
तस्मान्महिम्नो विप्रेन्द्र गङ्गायाः शक्यते नहि । पारं गन्तुं सुराधीशैः ब्रह्मविष्णुशिवैरपि ॥८९
यन्नामस्मरणादेव महापातककोटिभिः । विमुक्तो ब्रह्मसदनं नरो याति न संशयः ॥९०
गङ्गा गङ्गेति यन्नाम सकृदप्युच्यते यदा । तदैव पापनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥९१
इतिश्रीवृहन्नारदीयपुराणतो गंगामाहात्म्यखण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

उन राक्षसों ने इस प्रकार जब गंगा जी का माहात्म्य कहा तो वह विप्रवर अति विस्मित हुआ और सोचा कि जब इन राक्षसों की लोकजननी गंगा में ऐसी भक्ति है तो फिर जो गंगा जी के माहात्म्य को जानते हैं, उन बड़े पुण्यात्माओं की श्रद्धा के विषय में क्या कहा जा सकता है ? फिर उसने सोचा कि जो सभी प्राणियों का हित करता है, वह भक्त परम पद प्राप्त करता है, अतः सबों का उद्धार करना भी धर्म है—ऐसी बातें विचार कर चित्त में करुणा भाव लेकर उस ब्राह्मण ने तुलसी दल समेत गंगाजी के जल का छींटा उनपर फेंका। सरसों बराबर छींटा पड़ते ही वे राक्षस स्वभाव को छोड़कर देवताओं के समान हो गये। पुत्र समेत वह ब्राह्मणी तथा सोमदत्त कोटि सूर्य की भाँति देदीप्यमान तेज से संवलित श्रेष्ठ देवता बन गये। उनका स्वरूप शंख चक्र गदाधारी विष्णु के समान हो गया और वे ब्राह्मण की स्तुति करते हुए विष्णु लोक को चले गये। परन्तु राजा कल्माषपाद उन दैत्यों की मुक्ति देखता हुआ चिन्तामग्न मुद्रा में वहीं खड़ा ही रह गया। इस प्रकार जब वह अति दुःखी हुआ तो प्रच्छन्न-रूपा सरस्वती देवी ने गम्भीर वाणी में यह धर्ममय महावाक्य उच्चारण किया—"हे महाभाग राजन् ! तुम दुःखी न हो, कर्म भोग के अनन्तर तुम्हारी भी मुक्ति हो जायगी" ऐसी आकाशवाणी सुन वह राजा मन में सन्तुष्ट हुआ और उसे अपने गुरु वशिष्ठ के वचन का स्मरण हो आया, और हर्षित होकर अपना सब वृत्तान्त उस ब्राह्मण को सुनाया। हे नारदजी ! तदनन्तर उस राजा ने कलिंग देशीय गर्ग ब्राह्मण को प्रणाम किया और विधिपूर्वक भगवान् विष्णु के नामों का कीर्तन करते हुए काशी पुरी को प्रस्थित हुआ।

वहाँ उसने छः मास तक स्नान कर भगवान् सदाशिव का दर्शन किया, जिससे उस राजा मित्रसह की ब्राह्मणी के शाप से मुक्ति हो गई। तदनन्तर जब वह शाप से विमुक्त हो अपनी राजधानी को पहुँचा तो महर्षि वसिष्ठ ने उसका राज्याभिषेक किया और वह पुनः अपने राज्य का पालन करने लगा। राज्य का पालन करते हुए समस्त वसुंधरा का भोग किया, केवल स्त्री समागम से वंचित रहा, किन्तु महर्षि वसिष्ठ की कृपा से सन्तान की प्राप्ति कर मोक्ष को प्राप्त किया। हे विप्रवर्य्य नारद जी ! इस कथा में कोई आश्चर्य नहीं है. भगवान् विष्णु तथा वाराणसी पुरी के गुणों को जो लोग कहते या सुनते हैं; अथवा गंगा जल पाने करते हैं, मुक्त हो जाते हैं। अतः हे विप्रेन्द्र ! ब्रह्मा, विष्णु, तथा महादेव जी भी गंगा जी की महिमा का पार नहीं पा सकते, अन्य लोगों की बात ही क्या है ? पवित्र गंगाजी का नाम लेने से मनुष्य करोड़ों महापापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।

चतुर्थ अध्याय

वसुरुवाच

शृणु मोहिनि वक्ष्यामि तीर्थानां लक्षणं पृथक् । येन विज्ञातमात्रेण पापिनां गतिरुत्तमा ॥१
सर्वेषामपि तीर्थानां श्रेष्ठा गंगा धरातले । न तस्या सदृशं किंचित् विद्यते पापनाशनम् ॥२
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वसोः स्वस्य पुरोधसः । प्रणता मोहिनी प्राह गंगास्नानकृतादरा ॥३

मोहिन्युवाच

भगवन् वाडवश्रेष्ठ गंगामाहात्म्यमुत्तमम् । सर्वेषां च पुराणानां सम्मतं वद साम्प्रतम् ॥४
श्रुत्वा माहात्म्यमतुलं गंगायाः पापनाशनम् । पश्चात्पापविनाशिन्यां स्नातुं यास्ये त्वया सह ॥५
तच्छ्रुत्वा मोहिनीवाक्यं वसुः सर्वपुराणवित् । माहात्म्यं कथयामास गंगायाः पापनाशनम् ॥६

वसु ने कहा :—मोहिनी ! मैं तीर्थों का भिन्न लक्षण बतला रहा हूँ, सुनो । जिसके केवल लक्षण जान लेने से पापियों को उत्तम गति प्राप्त होती है । इस पृथ्वीतल में सभी तीर्थों में गंगा श्रेष्ठ है, उसके समान पापों का नाश करने वाला कोई अन्य तीर्थ इस भूमण्डल में नहीं है । अपने पुरोहित वसु की ये बातें सुनकर गंगास्नान के लिए आदरयुक्त मन से मोहिनी ने विनम्र भाव से पूछा :—

मोहिनी ने कहा :—भगवन् ! वाडव श्रेष्ठ अब मुझे सभी पुराणों से सम्मत गंगा जी के उत्तम माहात्म्य को बतलाइये । पापनाशिनी गंगा जी के अनुपम पापनाशी माहात्म्य को सुनने के बाद तुम्हारे साथ मैं स्नान को चलूंगी । सभी पुराणों के जाननेवाले वसु ने मोहिनी की प्रार्थना सुनकर गंगा जी का उत्तम पापनाशी माहात्म्य बतलाया ।

बृहन्नारदीय पुराण में एकादशी माहात्म्य के प्रसंग पर महर्षि वसिष्ठ ने नृपतिवर मान्धाता के प्रश्न करने पर मोहिनी की कथा इस प्रकार कही है । उक्त प्रसंग बहुत विस्तृत है, अतः मूल में पूरा देने पर बहुत विस्तार हो जाता मोहनी की वह कथा सामञ्जस्य के लिए संक्षेप में दी जा रही है—

प्राचीनकाल में रुक्माङ्गद नामक एक परम धार्मिक राजा इस पृथ्वी पर शासन करता था । उसके प्रताप से राज्य भर में किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी । लोग अपने-अपने आश्रमों एवं धर्मों में निष्ठा रख सुखपूर्वक काल यापन करते थे । राजा की आज्ञा से राज्य भर में ८ वर्ष से लेकर ८५ वर्ष तक के सभी मनुष्य एकादशी व्रत रखते थे । मनसा, वाचा, कर्मणा किसी प्रकार का पाप नहीं करते थे । संयमपूर्वक रह कर राजा की इस आज्ञा का पालन करते थे जो उल्लंघन करता था, उसे कठोर दण्ड दिया जाता था । इस प्रकार सारी प्रजा सभी सुखों से पूर्ण ऐहिक जीवन व्यतीत कर स्वर्ग को जाने लगी परिणामतः नरक में सन्नाटा छा गया । यमराज के अधिकारीगण नरक को सूना देख चिन्तित हुए, स्वयं यम भी चिन्तित थे, इसी अवसर पर नारद जी पहुँचे । यम को चिन्तित एवं नरक को बिल्कुल सुनसान

वसुरुवाच

ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्तेऽपिचाश्रमा: । येषां भागीरथी पुण्या समीपे वर्तते सदा ॥८
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुन: । तां गतिं न लभेज्जन्तुर्गंगां संसेव्य यां लभेत् ॥८
पूर्वे वयसि पापानि कृत्वा कर्माणि ये नरा: । शेषे गंगां निषेवन्ते तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥६
तिष्ठेद्युगसहस्रं तु पादेनैकेन य: पुमान् । मासमेकं तु गंगायां स्नातस्तुल्यफलावुभौ ॥१०
तिष्ठेतावाक्छिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान् । तिष्ठेद्यथेष्टं यश्चापि गंगायां स विशिष्यते ॥११

वसु ने कहा :---मोहिनी ! संसार में वे देश, वे प्रान्त, वे पर्वत तथा वे आश्रम धन्य हैं, जिनके समीप पुण्यसलिला भगवती भागीरथी की धारा प्रवाहित होती है। तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञाराधन, तथा दानादि सत्कर्मों से प्राणी वैसी गति नहीं प्राप्त कर सकता जैसी गति गंगा की आराधना कर प्राप्त कर सकता है। जो मनुष्य अपनी प्रथम अवस्था में पापकर्म करते हैं तथा वृद्धावस्था में भागीरथी का सेवन करते हैं, वे भी गंगा के माहात्म्य से परमगति प्राप्त करते हैं। जो पुरुष एक युग पर्यन्त एक पैर से खड़ा होकर उग्र तपस्या करता है, और जो केवल एक मास तक गंगा जी में स्नान करता है, वे दोनों समान पुण्य प्राप्त करते हैं—। जो पुरुष दस सहस्त्रयुगों तक शिर को नीचे कर तपस्या करता है और जो जीवन पर्यन्त भागीरथी के तट पर नियमपूर्वक निवास करता है उन दोनों में वास करने वाला विशिष्ट फल प्राप्त करता है। दु:खी सभी प्रकार के जीवों के लिये---जो संगति के अन्वेषण में रत रहते हैं---गंगा के समान अन्य कोई गति नहीं है। अति घोर पातकों के परिणाम से नरकलोक को जानेवाले अतिअधम पुरुषों को भी गंगा अपने माहात्म्य के बल से उबार लेती है। निश्चय ही वे बड़भागी मनुष्य इन्द्र-

---

देख नारद ने कारण पूछा। यम ने कहा, महाराज क्या बताऊँ? रुक्मांगद ने नरक का द्वार ही बन्द करा दिया, वह स्वयं तो एकादशी का व्रत रखता ही है, उसकी प्रजा भी एकादशी पर विशेष श्रद्धा रखती है, उसी का यह परिणाम है। नारद ने कहा---महाशय, यह तो बड़ी अच्छी बात है, आप भी शान्ति से समय बिताइये, लोग भी सुख भोगें---इसमें दुखी होने का तो कोई कारण नहीं है। यम ने कहा, महाराज ! आप सच कह रहे हैं, किन्तु बिना कोई काम किये हराम का खाना बुरा है। अत: ब्रह्मा जी से चल कर निवेदन करूँगा कि क्या किया जाय ! ऐसा निश्चित कर यमराज चित्र-गुप्त और नारद के साथ ब्रह्मा के पास पहुँचे और सब निवेदन किया और अपना पाश तथा दण्ड उनके आगे रख दिया। ब्रह्मा ने समझाया कि क्या किया जाय ? यह एकादशी का माहात्म्य है, यम ने कहा सो तो सही है पर मुझसे बेकार बैठे नहीं रहा जाता, अत: या तो आप रुक्मांगद को पथ-भ्रष्ट करें अन्यथा हमें अवकाश दें। ब्रह्मा ने कहा---अच्छी बात है, मैं सोच कर बताऊंगा। यम को समझा बुझा कर विदा करने के बाद ब्रह्मा ने रुक्मांगद को विचलित करने का उपाय सोचा और एक परम सुन्दरी कन्या उत्पन्न की। उसे देख कर सभी जीव मोहित हो जाते थे। अत: उसका नाम मोहिनी रखा। समय आने पर ब्रह्मा जी ने मोहिनी से कहा, बेटी ! मैंने रुक्मांगद को छलने के लिए तुम्हारी सृष्टि की है, सो तुम मन्दराचल को जाओ, वहाँ तुम्हें देख कर वह मोहित हो जायगा और तुम से विवाह करने को आतुर होगा। उस समय तुम उससे कहना कि मैं विवाह तो तुमसे कर लूंगी पर मेरा कहना तुम्हें सर्वदा मानना पड़ेगा। जब वह स्वीकार कर ले तब विवाह करना और अवसर आने पर मेरा मनोरथ पूर्ण करना।

भूतानां हि सर्वेषां दुःखोपहतचेतसाम् । गतिमन्वेषमाणानां न गंगासदृशी गतिः ॥१२
प्रकृष्टैः पातकैर्घोरैः पापिनः पुरुषाधमान् । प्रसह्य तारयेद्‌गंगा गच्छतो निरयेऽशुचौ ॥१३
ते समानास्तु मुनिभिर्नूनं देवैः सवासवैः । येऽभिगच्छन्ति सततं गंगामभिमतां सुरैः ॥१४

अन्धान् जडान्द्रव्यहीनांश्च गंगा संपावयेद्‌बृहती विश्वरूपा ।
देवैः सेन्द्रैर्मुनिभिर्मानवैश्च निषेविता सर्वकालं समृध्द्यै ॥१५

समेत देवताओं तथा वेदशास्त्र के तत्वों को जाननेवाले मुनियों के समान हैं, जो देवताओं द्वारा अभिमत भगवती गंगा की प्रतिदिन यात्रा करते हैं। सर्वदा इन्द्र समेत देवताओं, मुनियों तथा मानवों से समृद्धि के लिए सुसेवित पुण्य-सलिला गंगा अन्धों, मूर्खों और निर्धनों को तारती है, वह विश्वरूपा है, परम तेजस्विनी है : यह गंगा अमावस्या के दस दिन पहिले से अर्थात् प्रत्येक कृष्णपक्ष की पंचमी से अमावास्या तक पृथ्वीलोक में सन्निहित होती है, फिर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर दस दिन तक पाताललोक में सन्निधान करती है, और इसी प्रकार शुक्लपक्ष की एकादशी से कृष्णपक्ष की पंचमी तक सर्वदा स्वर्ग में सन्निहित होती है। सतयुग में सभी तीर्थ महत्त्वशाली थे, त्रेता में पुष्कर क्षेत्र का माहात्म्य अधिक था, द्वापर युग में कुरुक्षेत्र महत्त्वपूर्ण माना गया है, कलियुग में गंगा का विशेष महत्त्व है। इसका कारण यह है कि कलियुग में अन्य सभी तीर्थ स्वभावतः अपने महत्त्व एवं पराक्रम को गंगा में छोड़ देते हैं, किन्तु यह गंगा अपने तेज को कहीं नहीं छोड़ती है। गंगा के परम पुनीत जल-कण से युक्त वायु के स्पर्श मात्र से ही पापी मनुष्य भी परम गति प्राप्त करते हैं। जो ये सर्वान्तर्यामी भगवान् विष्णु चित्स्वरूप हैं, वे ही द्रव-स्वरूप से गंगा के परम पुनीत जल है, इसमें कोई संशय नहीं है। ब्राह्मण की हत्या करने वाला, गुरु की हत्या करने वाला, गो हत्यारा, चोर और गुरुपत्नी के साथ समागम करनेवाला—ऐसे घोर पापी भी गंगाजल से पवित्र

निदान मोहिनी ब्रह्मा की आज्ञा प्राप्त कर मन्दराचल की ओर गई। इधर राजा रुक्मांगद भी मृगया के प्रसंग से वहाँ पहुँचा। वहाँ मोहिनी को देखते ही वह कामासक्त होकर मूर्च्छित हो गया। राजा को इस भाँति मूर्च्छित देख मोहिनी ने जाकर उठाया और सान्त्वना भरे शब्दों में सत्कार किया। राजा ने पूछा, सुन्दरि ! इस घोर पर्वत में इतनी रूपराशि लिए तुम अकेली फिरने वाली कौन हो ? मेरा सारा राज्य; यह शरीर आज से तुम्हें अर्पित है। मोहिनी ने उत्तर दिया :—राजन् ! मैं ब्रह्मा की पुत्री हूँ, मेरा नाम मोहिनी है, मैं आप का अनुरोध स्वीकार तो कर लूंगी; किन्तु यह प्रतिज्ञा आप करें कि मैं जो कुछ कहूँगी वह आपको मानना पड़ेगा। राजा ने कहा:—सुन्दरि ! मैं सत्यवादी राजा ऋतध्वज का पुत्र हूँ, जन्म से लेकर आज तक परिहास कथा में भी मैंने मिथ्या भाषण नहीं किया हैं, मैं तुम्हारी बातों को कभी न टालूँगा—विश्वास करो। मोहिनी ने प्रसन्न चित्त हो राजा का वरण किया। भावी की प्रबलता, अपनी प्रतिज्ञाभ्रष्ट हो जाऊँ तो मेरे सुकृत नष्ट हो जाए।

मोहिनी को साथ ले राजा अपने नगर को पहुँचा, उसके पुत्र धर्माङ्गद ने पिता समेत विमाता का बहुत सम्मान किया, उसकी रानियों ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। मोहिनी इससे बहुत प्रभावित हुई। एक दिन मोहिनी ने कहा—महाराज ! ऐसे योग्यपुत्र के होते हुए भी आप राज्य कार्य में क्यों व्यस्त हैं ? राज्य भार सौंप कर स्वच्छन्द विचरण कीजिये। राजा को मोहिनी की बात पसन्द आ गई और दूसरे दिन राज्यभार पुत्र को सौंप वह मोहिनी के साथ वन को प्रस्थित हुआ। धर्माङ्गद ने सुविधा के लिए अनेक दास दासियों को साथ कर दिया।

पक्षादौ कृष्णपक्षेतु भूमौ संनिहिता भवेत् । यावत्पुण्या ह्यमावस्या दिनानि दश मोहिनि ॥१६
शुक्ल-प्रतिपदादेश्च दिनानि दशसंख्यया । पाताले सन्निधाने तु कुरुते स्वयमेव हि ॥१७
आरभ्य शुक्लैकादश्या दिनानि दश यानि तु । पचम्यन्तानि सा स्वर्गे भवेत्सन्निहिता सदा ॥१८
कृते तु सर्वतीर्थानि त्रेतायां पुष्करं परम् । द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गंगा विशिष्यते ॥१९

पापी भी गंगा जल से पवित्र हो जाते हैं, इसमें विचार करने की कोई बात नहीं है । क्षेत्र में विद्यमान, या कहीं अन्यत्र उठा-
कर लाया गया अतिशय शीतल वा अतिशय उष्ण--सभी प्रकार का गंगा का पुनीत जल आजीवन किये गये पापों को
नष्ट करने वाला है । बासी जल को वर्जित रखना चाहिये, बासी पत्ते का उपयोग नहीं करना चाहिये, किन्तु
बासी गंगाजल तथा बासी तुलसी के पत्ते के लिए यह नियम नहीं है अर्थात् ये पुराने हो जाने पर भी काम में लाये
जा सकते हैं । सुमेरु पर्वत के सुवर्ण, सभी प्रकार के रत्न, पत्थरों के टुकड़े तथा वहाँ के जलाशयों की परिगणना
की जा सकती है किन्तु गंगाजी के परम पुनीत जल गुणों की परिगणना नहीं की जा सकती । तीर्थयात्रा की सम्पूर्ण
विधि को न करने वाला मानव भी गंगाजल के माहात्म्य से समस्त फलों को प्राप्त करता है । चिन्तामणि के गुणों
से भी बढ़ कर गुणशाली गंगाजल के बिन्दु हैं, जो कि भक्तों को मनोवांछित फलों को विशेष रूप से देने वाले हैं ।
भक्तिपूर्वक एक कुल्ला गंगाजल पान कर लेने पर मनुष्य मानों स्वर्ग में कामधेनु के स्तनों से निःसृत दिव्य रसों का पान
करता है । शालग्राम की शिला पर जो मनुष्य भक्ति से गंगाजल को छोड़ता है वह अपने हृदय के अज्ञानान्धकार को
विनष्टकर प्रातःकालीन सूर्य की भांति शोभित होता है । मानसिक, वाचिक, एवं शारीरिक विविध प्रकार के पापों से
मनुष्य केवल गंगादर्शन मात्र से छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं । गंगाजल से भीगी हुई भिक्षा को भी जो मनुष्य सदा

वन में मोहिनी के साथ सुखपूर्वक निवास करते हुए राजा के नव वर्ष बीत गये । एकादशी तथा उसके पूर्व
और पश्चात् के दिनों को छोड़ कर वह सर्वदा भोग विलास में लीन रहता था । एक बार उसे ध्यान में आया कि मेरा
कार्तिकव्रत छूट गया । उसने मोहिनी से कहा, कार्तिक विष्णु का पवित्र महीना है, तुम्हारे साथ मेरा यह पवित्र व्रत
कई वर्षों से छूट गया, मैं इस वर्ष इसे करना चाहता हूँ । मोहिनी ने व्रत का विरोध करते हुए कहा, महाराज !
व्रतादि विधान ब्राह्मणों के लिए बने हैं, क्षत्रिय विशेषकर आप जैसे महाराज को यह सब शोभा नहीं देता, यदि
आपको अभीष्ट है तो रानी सन्ध्यावली से इसे पूर्ण कराइये । राजा ने वैसा ही किया । एक दिन राजा को दशमी
तिथि भूल गई, उस दिन वह भोग विलास में लिप्त था । संयोगतः राज्य के ढिंढोरे उसके कान में पड़े और वह मोहिनी
को एकाएक छोड़कर खड़ा हो गया । मोहिनी को यह नहीं रुचा । उसने बिगड़कर कहा, मैं व्रत की निन्दा तो नहीं
करती परन्तु मेरी इच्छा है कि आप व्रती न रहें । राजा ने दुःखी हो कहा :--मैं तुम्हारे इस प्रस्ताव पर सहमत
नहीं हूँ । मोहिनी ने राजा को प्रतिज्ञा याद दिलाई; पर राजा भावीवश अपनी टेक पर डटा रहा । मोहिनी ने कहा
इस प्रकार आपको कोई पाप नहीं लगेगा, यदि विश्वास न हो तो ब्राह्मणों को बुलाकर पूछ लीजिये । ब्राह्मणों ने कहाः--
महाराज ! मोहिनी का कथन असत्य नहीं है । ब्राह्मणों की बातों से राजा बड़ा खिन्न हुआ, उसने स्पष्ट रूप से कहा
कि यदि इसके लिए मुझे त्रिदेव भी रोकें तो मैं नहीं मान सकता । राजा की ऐसी दृढ़ता से मोहिनी बहुत कुपित हुई,
और पूर्व प्रतिज्ञा का स्मरण करा कर गमनोद्यत हुई । राजा की पटरानी सन्ध्यावली और पुत्र धर्माङ्गद ने बहुत बीच
बचाव किया । सन्ध्यावली ने मोहिनी से कहा कि संसार में अन्य जो भी दुर्लभ वस्तुएं हों वह तुम मांग सकती हो;

कलौ तु सर्वतीर्थानि स्वं स्वं वीर्यं स्वभावतः। गंगायां प्रतिमुंचन्ति सा तु देवी न कुत्रचित् ॥२०
गंगाम्भः कणदिग्धस्य वायोः संस्पर्शनादपि। पापशीला अपि नराः परां गतिमवाप्नुयुः ॥२१
योसौ सर्वगतो विष्णुश्चित्स्वरूपी जनार्दनः। स एवं द्रवरूपेण गंगाम्भो नात्र संशयः ॥२२
ब्रह्महा गुरुहा गोघ्नः स्तेयी च गुरुतल्पगः। गंगांभसा च पूयन्ते नात्र कार्या विचारणा ॥२३

भक्षण करता है वह सर्प की केंचुल की भाँति सभी पापों से विहीन हो जाता है। हिमालय एवं विन्ध्याचल की भाँति कठोर पापों की राशियाँ भी गंगाजल से इस प्रकार शीघ्र नष्ट हो जाती हैं जैसे भगवान् विष्णु की कृपा से विपत्तियाँ शीघ्र नष्ट हो जाती हैं।

स्नानार्थ गंगा की पवित्र धारा में प्रवेश करते ही मनुष्य के ब्रह्म हत्या आदि कठोर पाप-पुञ्ज भी हाहाकार करते हुए विनाश को प्राप्त होते हैं। जो पुरुष सर्वदा गंगातट पर निवास करता है तथा गंगा के परम पुनीत जल को पान करता है, वह पूर्वसंचित पापों से मुक्त हो जाता है। जो पुरुष गंगा को आश्रय बना कर नित्य निर्भय निवास करता है वह महर्षियों, देवताओं तथा मानवों सभी से पूजनीय है। अष्टांगयोगसाधना से भला क्या लाभ है? घोर तपस्याओं से भी क्या लाभ है, बड़े-बड़े यज्ञों के करने से क्या महान् फल मिलता है? इन सबों से बढ़कर विशेष फल देने वाला गंगातट का निवास है। अनेक प्रकार के जपों से युक्त यज्ञों द्वारा क्या सिद्धि प्राप्त होती है, अनेक कठोर तपस्याओं तथा दोनों से क्या फल प्राप्त होता है, क्योंकि सुखपूर्वक सेवन करने योग्य एवं मोक्ष प्रदान करने वाली गंगा जब विद्यमान हैं। यज्ञों द्वारा, नियमों द्वारा, दान एवं संन्यास द्वारा भी वे फल नहीं प्राप्त होते, जिन्हें गंगा की सेवा कर प्राप्त किया जा सकता है। सूर्य ग्रहण के अवसर पर प्रयागक्षेत्र में सहस्र गोदान करने का जो फल मिलता है, उस फल को केवल एक दिन गंगाजी में स्नान करने से प्राप्त होता है। जो मनुष्य अन्य सभी कामनाओं का परित्याग कर सुनिश्चित मन से गंगातट पर निवास करता है वास्तव में वही मोक्ष का भाजन है। विशेषतः गंगा जी काशीपुरी में शीघ्र ही मोक्ष-दायिनी मानी गयी है। प्रत्येक महीने की चतुर्दशी तथा अष्टमी तिथि को उनके स्नान का विशेष माहात्म्य है। जीवन

पर राजा की यह प्रतिज्ञा मत तोड़ो, मोहिनी ने कहा, अच्छी बात है, यदि राजा अपने पुत्र का शिर काटकर मेरी गोद में डाल दें तो मैं उक्त आग्रह न करूँगी। सन्ध्यावली को कुछ कष्ट तो अवश्य हुआ होगा पर वह प्रसन्न स्वर में बोली, ऐसा ही होगा। राजा, सन्ध्यावली के इस प्रस्ताव से विह्वल हो गया, उसने बहुतेरा समझाया; पर मोहिनी ने नहीं माना, उसने कहा—मेरी इच्छा तो यही है कि आप एकादशी भोजन करें, स्पष्ट ही आपको धर्म संकट में डालने के लिए मैं ऐसा कर रही हूँ। इसी बीच धर्माङ्गद भी आ गया; राजा की विह्वलता को उसने समझा-बुझाकर दूर किया। उसने कहा, तात! धर्म एवं प्रतिज्ञा के सम्मुख पुत्र का कोई स्थान नहीं। आपको अवश्यमेव ऐसा करना होगा। पत्नी सन्ध्यावली और पुत्र धर्माङ्गद के आग्रह से राजा पुत्र का शिर काटने को प्रस्तुत हो गया। मोहिनी ने जब यह देखा तो विह्वल हो भूमि पर गिर पड़ी, उसने सोचा कि मेरा जन्म नष्ट हो गया, राजा की प्रतिज्ञा अटल बनी रही, मुझ अभागिनी से कुछ करते-धरते नहीं बन पड़ा।

इधर ज्यों ही राजा पुत्र का शिर छेदन करने को उद्यत हुआ, भगवान् प्रकट हो गये और बोले—मैं सन्तुष्ट हूँ। अपने पुत्र धर्माङ्गद एवं पटरानी सन्ध्यावली के साथ मेरे लोक को चलो। यमराज की प्रेरणा से ही मोहिनी ने तुम्हें इतना दुःखी किया है, चलो, यमराज के शिर पर लात रखकर मेरे साथ चलो।

क्षेत्रस्थमुद्धृतं वापि शीतमुष्णमथापिवा । गांगेयं तु हरेत्तोयं पापमामरणान्तिकम् ।।२४
वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं दलम् । नवर्ज्यं जाह्नवीतोयं नवर्ज्यं तुलसीदलम् ।।२५
मेरोः सुवर्णस्य च सर्वरत्नैः संख्योपलानामुदकस्य वापि ।
गंगा जलानां न तु शक्तिरस्ति वक्तुं गुणाख्या परिमाणमत्र ।।२६
तीर्थयात्राविधिं कृत्स्नमकुर्वाणो यथा नरः । गंगातोयस्य माहात्म्यात्सोप्यत्र फलभाग्भवेत् ।।२७
चिन्तामणिगुणाच्चापि गंगायास्तोयबिन्दवः । विशिष्टा यत्प्रयच्छन्ति भक्तेभ्यो वांछितं फलम् ।।२८

पर्यन्त सर्वदा कृच्छ्व्रत के अनुष्ठान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है वह सिद्धि जीवन पर्यन्त गंगातट पर निवास करने से प्राप्त होती है । इसी प्रकार कृच्छ्र एवं चान्द्रायण व्रतों के अनुष्ठान से जो फल प्राप्त होता है वह गंगा तट पर निवास से प्राप्त होता है केवल दोपहर तक गंगा-तट पर निवास करने से जो फल प्राप्त होता है, हे ब्रह्मा की पुत्री, वह फल सौ यज्ञों से भी नहीं मिल सकता । सभी प्रकार के यज्ञ, तपस्या, दान एवं स्वाध्याय से जो फल प्राप्त होता है वह भक्ति पूर्वक गंगा-तट पर निवास से प्राप्त होता है । जो पुण्यनिष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों को सत्य वचन बोलने से प्राप्त होता है अथवा अग्निहोत्र के अनुष्ठान से जो फल प्राप्त होता वह गंगातट पर निवास से ही प्राप्त होता है । माता, पिता, स्त्री यहाँ तक कि अनन्त कोटि कुलों को भी भवसागर से गंगाजी की भक्ति तारने वाली है—इसे निश्चय मानो । सुखी पुरुषों को सन्तोष ही परम ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाला है, एवं वही तत्त्वज्ञान है, उमा के भक्तों को विनय, सदाचरण तथा समृद्धि की प्राप्ति होती है, किन्तु उस सन्तोष, विनय, सदाचरण तथा समृद्धि की प्राप्ति केवल गंगा के प्राप्त करने से हो जाती है, अर्थात् गंगा की प्राप्ति से कृतकृत्य हो जाती है, उसे किसी अन्य

यमराज इस घटना से बहुत दुःखी हुए । ब्रह्मा के पास जा मोहिनी का सारा वृत्तान्त उन्होंने बतलाया । ब्रह्मा मोहिनी के पास गये और समझाने लगे । पुत्रि ! यदि उद्योग करने पर भी सिद्धि नहीं मिली तो तुम्हारा कोई दोष नहीं है तुम पर मैं बहुत प्रसन्न हूँ । यथोचित वरदान माँग लो । इसी बीच राजा रुक्मांगद के पुरोहित वसु, जो बारह वर्ष की समाधि से उठे , राजा का सारा वृत्तान्त मालूम हुआ, सुनते ही वे आग-बबूला हो गया और वहाँ आये जहाँ मोहिनी थीं । आते ही उन्होंने मोहिनी को शाप से भस्म कर दिया ।

स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर मोहिनी स्वर्ग पहुँची । वहाँ भी देवदूतों ने उसे धक्का देकर निकाल दिया और वह नरक में पड़कर विविध दुःखों का अनुभव करने लगी । नरक भी उसके संसर्ग से कंपायमान हुए । यहाँ तक कि पाताल वासियों ने भी उसे स्थान नहीं दिया । तब निराश होकर ब्रह्मा आदि को साथ ले पुनः वसु के पास आयी । ब्रह्मा के अति अनुरोध से वसु ने मोहिनी का अपराध क्षमा किया, और कहा कि आज से इसका स्थान एकादशी और दशमी के मध्यभाग में निश्चित करता हूँ । जो मनुष्य दशमी विद्धा एकादशी व्रत रहते हैं, उनका सारा पुण्य तुम्हें प्राप्त होगा । अर्थात् उनका व्रत निरर्थक है । इससे देवताओं का मनोरथ भी सिद्ध होगा । किन्तु मोहिनी को उचित है कि वह विविध तीर्थों की यात्रा करे ।

मोहिनी ने ब्रह्मा के कमण्डलु जल के अमिट प्रभाव से पूर्ववत् शरीर प्राप्त किया, और पिता तथा पुरोहित वसु को प्रणाम किया और पुरोहित को साथ ले गंगा तट पर पहुँची ।

इसी के बाद प्रस्तुत कथा प्रारम्भ होती है ।

गंडूषमात्रतो भक्त्या सकृद्गंगांभसा नरः । कामधेनुस्तनोद्भूतान् भंवते दिव्यरसान्दिवि ॥२९
शालग्रामशिलायां तु यस्तु गंगाजलं क्षिपेत् । अपहृत्य तमस्तीव्रं भाति सूर्यो यथोदये ॥३०
मनोवाक्कायजैर्ग्रस्तः पापैर्बहुविधैरपि । वीक्ष्य गंगां भवेत्पूतः पुरुषो नात्र संशयः ॥३१
गंगातोयाभिषिक्तां तु भिक्षामश्नाति यः सदा । सर्पवत्कंचुकं मुक्त्वा पापहीनो भवेत्स वै ॥३२
हिमवद्विंध्यसदृशा राशयः पापकर्मणाम् । गंगाम्भसा विनश्यन्ति विष्णुभक्त्या यथापदः ॥३३
प्रवेशमात्रे गंगायां स्नानार्थं भक्तितो नृणाम् । ब्रह्महत्यादि पापानि हाहेत्युक्त्वा प्रयान्त्यलम् ॥३४
गंगातीरे वसेन्नित्यं गंगातोयं पिबेत्सदा । यः पुमान् स विमुच्येत पातकैः पूर्वसंचितैः ॥३५
यो वै गंगां समाश्रित्य नित्यं तिष्ठति निर्भयः । स एव देवैर्मर्त्यैश्च पूजनीयो महर्षिभिः ॥३६
किमष्टाँगेन योगेन किं तपोभिः किमध्वरैः । वास एवहि गंगायां सर्वतोपि विशिष्यते ॥३७
किं यज्ञैर्बहुभिर्जाप्यैः किं तपोभिद्धं नार्पणैः । स्वर्गमोक्षप्रदा गंगा सुखसेव्या यतस्तथा ॥३८
यज्ञैर्यमैश्चनियमैर्दानैः सन्यासतोपि वा । न तत्फलमवाप्नोति गंगां सेव्य यदाप्नुयात् ॥३९
प्रभासे गोसहस्रेण राहुग्रस्ते दिवाकरे । यत्फलं लभते मर्त्यो गंगायां तद्दिनेन वै ॥४०
अन्योपायांश्च यस्त्यक्त्वा मोक्षकामःसुनिश्चितः । गंगातीरे सुखं तिष्ठेत्स वै मोक्षस्य भाजनम् ॥४१
वाराणस्यां विशेषेण गंगा सद्यस्तु मोक्षदा । प्रतिमासं चतुर्दश्यामष्टम्यां चैव सर्वदा ॥४२
गंगातीरे निवासश्च यावज्जीवं च सिद्धिदः । सकृच्छ्राणि सदाकृत्वा यत्फलं चाश्नुते सदा ॥४३
कृच्छाणि तु सदा कृत्वा यत्फलं चाश्नुते सदा ।
चान्द्रायणं चैव तथा तल्लभेज्जाह्नवीतटे । गंगासेवापरस्येह दिवसार्द्धेन यत्फलम् ॥४४
नतच्छक्यं ब्रह्मसुते प्राप्तुं क्रतुशतैरपि । सर्वयज्ञतपोदानयागस्वाध्यायकर्मभिः ॥४५
यत्फलं तल्लभेद्भक्त्या गंगातीरनिवासतः । यत्पुण्यं सत्यवचनैर्नैष्ठिक-ब्रह्मचारिणाम् ॥४६
यदग्नि-होतृणां पुण्यं तत्तु गंगानिवासतः । समातृपितृदाराणां कुलकोटिमनन्तकम् ॥४७

फल की कामना नहीं की जाती । मरने पर भी वह गंगा का भक्त तथा गंगा में गति प्राप्त करने वाला हो जाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। जो पुरुष भक्तिपूर्वक गंगाजल का स्पर्श करता है तथा गंगाजल का पान करता है, वह विना किसी परिश्रम के मोक्ष का प्रमुख उपाय प्राप्त करता है तथा सभी यज्ञों में दीक्षित होकर प्रतिदिन सोमरस पान करता है। जिन मनुष्यों के सब काम गंगाजल द्वारा सम्पन्न होते है, वे अपने-इस नश्वर शरीर का छोड़ने के बाद शिव के समीप विराजमान होते हैं। वे जिस प्रकार सूर्य तथा चन्द्र मण्डल में विद्यमान अमृत रस को इन्द्रादि प्रमुख देवगण पान करते हैं उसी प्रकार भक्त मनुष्य गंगाजल को पान करते हैं। विधिपूर्वक अनेक कन्यादानों के करने से तथा भूक्तिपूर्वक भूमि के दानों के करने से अनेक बार अन्नदान, गोदान, स्वर्ण आदि के दानों के करने से तथा रथ, अश्व आदि के दानों से जो पुण्य कहा गया है उससे शत गुणित अधिक पुण्य केवल चुल्लू भर गंगाजल के पान करने से प्राप्त होता है। सहस्रों चान्द्रायण व्रत के अनुष्ठान का जो फल बताया गया है उससे अधिक फल गंगाजल के पान करने से प्राप्त होता है। केवल एक कुल्ली भर गंगाजल के पान करने से अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है। जो स्वच्छन्द गंगाजल पान करता है। उसके हाथों में मुक्ति का निवास है। तीन महीनों में सरस्वती नदी का जल, सात महीने में यमुना का जल, दस महीने में नर्मदा का जल तथा एक वर्ष में गंगा का जल जीर्ण होता है। शास्त्राय रीति से जिन देहधारियों के मरण के समय भी गंगा जल नही दिया गया है—और कहीं अन्य स्थल पर जिनकी मृत्यु हो चुकी है—ऐसे भी प्राणियों को उत्तम फल की प्राप्ति केवल गंगा में हड्डी के संयोग हो जाने से होती है। सहस्रों

गंगाभक्तिस्तारयते संसारार्णवतो ध्रुवम् । संतोषः परमैश्वर्यं तत्वज्ञानं सुखात्मनाम् ॥४८
विनयाचारसंपत्तिरुमाभक्तस्य जायते । कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो गंगां प्राप्यैव केवलम् ॥४९
तद्भक्तस्तत्परश्च स्यान्मृतो वापि न संशयः । भक्त्या तज्जलसंस्पर्शो तज्जलं पिबते च यः ॥५०
अनायासेन हि नरो 'मोक्षोपायं स विन्दति । दीक्षितः सर्वयज्ञेषु सोमपानं दिने दिने ॥५१
सर्वाणि येषां गंगायास्तोयैः कृत्यानि सर्वदा । देहं त्यक्त्वा नरास्ते तु मोदन्ते शिवसन्निधौ ॥५२
देवाः सोमार्कसंस्थानि यथा शक्रादयो मुखैः । अमृतान्युपभुञ्जन्ति तथा गंगाजलं नराः ॥५३
कन्यादानैश्च विधिवद्भूमिदानैश्च भक्तितः । अन्नदानैश्च गोदानैः स्वर्णदानादिभिस्तथा ॥५४
रथाश्वगजदानैश्च यत्पुण्यं प्रकीर्तितम् । ततः शतगुणं पुण्यं गंगाम्भश्चुलुकाशनात् ॥५५
चान्द्रायणसहस्त्राणां यत्फलं परिकीर्त्तितम् । ततोधिकफलं गंगातोयपानादवाप्यते ॥५६
गंडूषमात्रपाने तु अश्वमेध-फलं लभेत् । स्वच्छन्दं यः पिबेदम्भस्तस्य मुक्तिः करेस्थिता ॥५७
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्तभिस्त्वथ यामुनम् । नार्मदं दशभिर्मासैर्गंगा वर्षेण जीर्यति ॥५८
शस्त्रेणाकृत तोयानां मृतानां क्वापि देहिनाम् । तदुत्तरफलावाप्तिर्गंगायामस्थियोगतः ॥५९
चान्द्रायणसहस्रं तु यश्चरेत्कायशोधनम् । यः पिबेत्तु यथेष्टं तु गंगाम्भः स विशिष्यते ॥६०
गंगां पश्यति यः स्तौति स्नाति भक्त्या पिबेज्जलम् । स स्वर्गज्ञानममलं योगं मोक्षं च विन्दति ॥६१
यस्तु सूर्यसुनिष्टप्त-गांगेयं पिबते जलम् । गोमूत्रपावकाहाराद्गांगपानं विशिष्यते ॥६२

इति श्री बृहन्नारदीयपुराणतो गंगा महात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

चान्द्रायण व्रत करके जिसने अपनी काया शुद्ध की है, और जिसने यथेष्ट गंगाजल का पान किया है इन दोनों में गंगाजल पान करने वाला विशेष शुद्ध है । जो मनुष्य गंगा जी को देखते हैं, स्तुति करते हैं, भक्तिपूर्वक स्नान करते हैं, तथा गंगाजल का पान करते हैं, वे स्वर्ग, निर्मल ज्ञान, योग एवं मोक्ष—इन सबों को प्राप्त करते हैं । जो लोग सूर्य की किरणों से सुतप्त गंगाजल का पान करते हैं, वे भी पूर्वोक्त फलों को प्राप्त करते हैं, अधिक क्या कहा जाय गंगाजी के पवित्र जल का पान गो-मूत्र तथा पावकाहार (चित्रकवृक्ष का रस ?) इन दोनों से विशेष महत्त्वपूर्ण है । ॥१—६२॥

इति श्री बृहत्नारदीय पुराण से गंगा माहात्म्य नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥४॥

अथ पञ्चम अध्याय

भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात् । गङ्गासन्दर्शनात् तद्वत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१
सप्तावरान् सप्त परान् पितॄन्स्तेभ्यश्च ये परे । पुमांस्तारयते गङ्गां वीक्ष्य स्पृष्ट्वावगाह्य च ॥२
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गंगेति कीर्तनात् । पुमान्पुनाति पुरुषाञ्छतशोऽथ सहस्त्रशः ॥३
ज्ञानमैश्वर्यमतुलं प्रतिष्ठायुर्यशस्तथा । शुभानामाश्रमाणां च गंगादर्शनजं फलम् ॥४
सर्वेन्द्रियाणां चाञ्चल्यं व्यसनानि च पातकम् । निर्घृणत्वञ्च नश्यन्ति गङ्गादर्शनमात्रतः ॥५
परहिंसा च कौटिल्यं परदोषाद्यवेक्षणम् । दाम्भिकत्वं नृणां गङ्गादर्शनादेव नश्यति ॥६
मुहुर्मुहुस्तथा पश्येत्स्पृशेद्वापि मुहुर्मुहुः । भक्त्या यदिच्छति नरः शाश्वतं पदमव्ययम् ॥७
वापीकूपतडागादि प्रपासत्रादिभिस्तथा । अन्यत्र यद्भवेत्पुण्यं तद्गंगा-दर्शनाद्भवेत् ॥८
यत्फलं जायते पुंसां दर्शने परमात्मनः । तद्भवेदेव गङ्गायाः दर्शनाद्भक्तिभावतः ॥९
नैमिषे च कुरुक्षेत्रे नर्मदायां च पुष्करे । स्नानात्संस्पर्शनात्सेव्य सुफलं लभते नरः ॥१०
तद्गंगादर्शनादेव कलौ प्राहुर्महर्षयः । अशुभैः कर्मभिर्युक्तान् मज्जमानान्भवार्णवे ॥११
पततो नरके गंगा स्मृता दूरात्समुद्धरेत् । योजनानां सहस्त्रेषु गंगां स्मरति यो नरः ॥१२
अपि दुष्कृत-कर्मा हि लभते परमां गतिम् । स्मरणादेव गंगायाः पापसंघातपंजरम् ॥१३
भेदं सहस्त्रधा याति गिरिर्वज्रहतो यथा । गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्ध्यायञ्जाग्रद्भुञ्जन्हसन् रुदन् ॥१४

जिस प्रकार गरुड़ के दर्शन से सर्प विष रहित हो जाते है उसी प्रकार गंगा के दर्शन करने से मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है । सात अपर पुरुषों के अतिरिक्त जो सात अन्य पूर्व पुरुष हैं, उन्हे भी मनुष्य गंगा का दर्शन करके, स्पर्श करके तथा स्नान करके तारता है । गंगा के दर्शन, स्पर्श तथा 'गंगा गंगा' नाम कीर्तन से पुरुष अपने सैकड़ों सहस्त्रों पूर्व पुरुषों को तारता है । अतुल ज्ञान, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, दीर्घायु एवं शुभ कारक आश्रय धर्मों के पालन का सत्फल गंगा के दर्शन से प्राप्त होता है । सभी इन्द्रियों की चंचलता, दुर्व्यसन तथा पातक, निर्दयता, ये सभी गंगा के दर्शन मात्र से दूर हो जाते हैं । परकीय हिंसा, कुटिलता, परकीय दोष एवं बुराइयों का देखना दम्भ करना—ये सभी मानवीय दुर्गुण गंगा के दर्शन मात्र से नष्ट होते हैं, जो मनुष्य शाश्वत अव्ययपद को प्राप्त करने की इच्छा रखता हो वह बारम्बार गंगा का दर्शन करे, तथा बारम्बार स्पर्श करे । बावली, कुप, तड़ागादि एवं अन्य जलाशयों में स्नान से जो पुण्य मिलता है वह गंगा के दर्शन मात्र से प्राप्त होता है । मनुष्यों को परमात्मा के दर्शन से जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य भक्ति भावना से गंगा के दर्शन मात्र करने से प्राप्त होता है । नैमिष, कुरुक्षेत्र, नर्मदा, पुष्कर क्षेत्र में स्नान कर भली भांति उनका सेवन करने से जो सत्फल मनुष्य प्राप्त करता है, वह फल केवल गंगा के दर्शन से प्राप्त करता है—ऐसा महर्षियों ने कहा है । अमांगलिक कर्मों से युक्त भवसागर में डूबते हुए प्राणियों को नरक में गिरते समय स्मरणमात्र करने से गंगा दूर से ही उबार लेती हैं । सहस्रों योजनों के अन्तर पर रह कर भी जो मनुष्य गंगा का स्मरण करता है वह भले ही दुष्कर्मी हो परन्तु परमगति प्राप्त करता है । गंगा के स्मरण मात्र करने से पाप समूहों का पंजर सहस्र टुकड़ों में इस प्रकार टूट कर परिणत हो जाता है जैसे वज्र से आहत होकर पर्वत । जाते, बैठे, सोते, ध्यान करते, जागते, भोजन करते, हँसते, रोते समय जो निरन्तर गंगा का स्मरण करते हैं वे बन्धन से मुक्त

यः स्मरेत् सततं गंगां स च मुच्येत बंधनात् । सहस्त्रयोजनस्थाश्च गंगां भक्त्या स्मरंति ये ॥१५
गंगा गंगे ति चाक्रुश्य मुच्यन्ते तेऽपि पातकात् । ये च स्मरन्ति वै गंगां गंगाभक्ति पराश्च ये ॥१६
तेऽप्यशेषैर्महापापैर्मु च्यन्ते नात्र संशयः । भवनानि विचित्राणि विचित्राभरणास्त्रियः ॥१७
आरोग्यं वित्तसम्पत्तिर्गंगास्मरणजंफलम् । मनसा संस्मरेद्यस्तु गंगां दूरस्थितो नरः ॥१८
चान्द्रायणसहस्त्रस्य स फलं लभते ध्रुवम् । गंगा गंगा जपन्नामयोजनानां शतेस्थितः ॥१९
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति । कीर्तनान्मुच्यते पापाद्दर्शनान्मङ्गलं लभेत् ॥२०
अवगाह्य तथा पीत्वा पुनात्यासप्तमं कुलम् । सप्तावरान्परान्सप्त सप्ताथ परतः परान् ॥२१
गंगा तारयते पुंसां प्रसंगेनापि कीर्तिता । अश्रद्धया तु गंगाया यस्तु नामानुकीर्तनम् ॥२२
करोति पुण्यवाहिन्याः सोऽपि स्वर्गस्य भाजनम् । सर्वावस्थांगतोवापि सर्वधर्मविवर्जितः ॥२३
गंगायाः कीर्तनेनैव शुभां गतिमवाप्नुयात् । ब्रह्महा गुरुहा गोघ्नः स्पृष्टो वा सर्वपातकैः ॥२४
कदा द्रक्ष्यामि तां गंगां कदा स्नानं लभे ह्यहम् । इति पुंसाऽभिलषिता कुलानां तारयेच्छतम् ॥२५
अथ स्नानफलं देवि गंगायाः प्रवदामि ते । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥२६
स्नातस्य गंगासलिले सद्यः पापं प्रणश्यति । अपूर्वपुण्यप्राप्तिश्च सद्यो मोहिनि जायते ॥२७
स्नातानां शुचिभिस्तोयैः गांगेयैः प्रयतात्मनाम् । व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥२८

हो जाते हैं। सहस्र योजन पर स्थित भी जो मनुष्य भक्तिपूर्वक गंगा का स्मरण करते हैं, वे भी गंगा गंगा चिल्ला कर पापों से छुटकारा पाते हैं। गंगा की भक्ति में निरत जो मनुष्य गंगा का स्मरण करते हैं, वे भी सम्पूर्ण महापापों से मुक्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं। विचित्र भवन, विचित्र आभूषण धारण करने वाली स्त्रियाँ, आरोग्य, वित्त, सम्पत्ति—ये सभी गंगा के स्मरण के फल हैं। दूर पर स्थित भी जो मनुष्य गंगा का स्मरण करता है वह निश्चय ही एक सहस्र चान्द्रायण व्रत का सत्फल प्राप्त करता है। सैंकड़ों योजनों पर अवस्थित भी मनुष्य गंगा गंगा इस प्रकार के नाम के स्मरण करने से सभी पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक को जाता है। गंगा गंगा इस प्रकार कीर्तन करने से सभी पापों से छूटता है, दर्शन करने से मंगल प्राप्त करता है, अवगाहन तथा पान करके सात पुरुषों को पवित्र करता है। सात अपर पुरुषों को, सात पर पुरुषों को, सात पर से भी अपर पुरुषों को गंगा प्रसंग मात्र में कीर्तन करने से तारती है। अश्रद्धा से भी जो गंगा नाम कीर्तन करता है, उस पुण्यवाहिनी के अद्भुत माहात्म्य से वह प्राणी भी स्वर्ग का भाजन होता है। सभी धर्म कर्मों से विवर्जित सभी निकृष्ट अवस्था में प्राप्त मनुष्य भी गंगा नाम कीर्तन से शुभ गति प्राप्त करता है। ब्रह्महत्या, गुरु हत्या, गो हत्या आदि कठोर पापों का करने वाला अर्थात् सभी घोर पापों का करने वाला मनुष्य भी गंगा जल के स्पर्श से सभी पापों से मुक्त होता है। कब उस पुण्यवाहिनी गंगा का दर्शन करूँगा ? कब उसकी धारा में स्नान करूँगा ? मनुष्यों की ऐसी अभिलाषा भी सौ पुरुषों कों तारने वाली है। हे देवि ? अब मैं गंगा के स्नान का फल तुम्हें बतला रहा हूँ. जिसे सुनकर निस्संदेह प्राणी सभी पातकों से मुक्त हो जाता है। गंगाजल के स्नान करने वाले प्राणी का सभी पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, और हे मोहिनि ! उसे अपूर्व पुण्य की प्राप्ति होती है। गंगा के परम पुनीत जल से स्नान करने वाले जितात्मा प्राणों को जो शुद्धि प्राप्त होती है, वह सैंकड़ों यज्ञों के करने से भी नहीं होती। जिस प्रकार उदयाचल पर आसीन सूर्य कठोर अन्धकार का विनाश कर शोभित होता है, उसी प्रकार गंगाजल से स्नान करने वाला मनुष्य अपने कठोर पापों को विनष्ट कर शोभित होता है। हे राज सुन्दरि ! विधिपूर्वक गंगा में किये गये केवल एक स्नान के करने से मनुष्य सौ अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं। स्नान करने से

अपहत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रवि। तथापहत्य पाप्मानं भाति गंगाजलोक्षितः ॥२९
एकेनैवापि विधिना स्नानेन नृपसुन्दरि। अश्वमेधफलं मर्त्यो गंगायां लभते ध्रुवम् ॥३०
अनेकजन्मसम्भूतं पुंसः पापं प्रणश्यति। स्नानमात्रेण गंगायाः सद्यः स्यात्पुण्यभाजनम् ॥३१
अन्यस्थानकृतं पापं गंगातीरे विनश्यति। गंगातीरे कृतं पापं गंगास्नानेन नश्यति ॥३२
रात्रौ दिवा च सन्ध्यायां गंगायान्तु प्रयत्नतः। स्नात्वाश्वमेधजं पुण्यं गृहेऽप्युद्धृततज्जलैः ॥३३
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वेष्टायतनेषु च। तत्फलं लभते मर्त्यो गंगास्नानान्न संशयः ॥३४
महापातकसंयुक्तो युक्तो वा सर्वपातकैः। गंगास्नानेन विधिवन्मुच्यते सर्वपातकैः ॥३५
गंगा स्नानात् परं स्नानं न भूतं न भविष्यति। विशेषतः कलियुगे पापं हरति जाह्नवी ॥३६
निहत्य कामजान्दोषान् कायवाक्चित्तसम्भवान्। गंगास्नाने भक्त्या तु मोदते दिवि देववत् ॥३७
वर्षं स्नाति च गंगायां यो नरो भक्तिसंयुतः। तस्य स्याद्वैष्णवे लोके स्थितिः कल्पं न संशयः ॥३८
आमृत्युस्नाति गंगायां यो नरो नित्यमेव च। समस्तपापनिर्मुक्तः समस्तकुलसंयुतः ॥३९
समस्तभोगसंयुक्तो विष्णुलोके महीयते। परार्द्धद्वितयं यावन्नात्र कार्या विचारणा ॥४०
गंगायां स्नाति यो मर्त्यो नैरन्तर्येण नित्यदा। जीवन्मुक्तः स चात्रैव मृतो विष्णुपदं व्रजेत् ॥४१
प्रातः स्नानाद्दशगुणं पुण्यं मध्यं दिनं स्मृतम्। सायंकाले शतगुणं अनन्तं शिवसन्निधौ ॥४२
कपिलाकोटिदानाद्धि गंगास्नानं विशिष्यते। कुरुक्षेत्रसमा गंगा यत्र कुत्रावगाहिता ॥
हरिद्वारे प्रयागे च सिन्धुसङ्गे फलाधिका ॥४३
ये मदीयांशुसन्तप्ते जले ते स्नान्ति जाह्नवि। ते भित्वा मण्डलं यान्ति मोक्षं चेति रवेर्वचः ॥४४

मनुष्य के अनेक जन्मजाति पाप नष्ट हो जाते हैं और स्नान करते ही वह शीघ्र ही पुण्यभाजन हो जाता है। दूसरे स्थानों का किया हुआ पाप गंगा के तट पर जाते ही नष्ट हो जाता है और गंगा तट पर किया हुआ पाप गंगा जल में स्नान करने से नष्ट होता है। रात्रि में, दिन में, संध्या के समय प्रयत्नपूर्वक गंगा में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का पुण्य प्राप्त होता है, और यह पुण्य अपने गृह पर भी लाये गये गंगाजल के स्नान से प्राप्त होता है। सभी तीर्थों में स्नान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, सभी यज्ञों एवं सभी देव-मन्दिरों में दर्शन करने से जो पुण्यप्राप्ति होती है, वह फल मनुष्य गंगा स्नानमात्र से प्राप्त करता है--इसमें सन्देह नहीं। महापातक अथवा सभी पातकों का करने वाला प्राणी विधिपूर्वक गंगा स्नान करके सभी से मुक्त हो जाता है। अधिक क्या इस गंगा स्नान से अधिक महत्वपूर्ण स्नान न तो कहीं हुआ था और न होगा। विशेषतया कलियुग में यह जान्हवी पापों की नष्टकारिणी है, यह काम से उत्पन्न हुए दोषों को, वाचिक शारीरिक एवं मानसिक दोषों को भी दूर करने वाली है। भक्तिपूर्वक गंगा में स्नान करने वाला मनुष्य स्वर्ग में देवताओं की भाँति आनन्द का अनुभव करता है। जो मनुष्य श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक एक वर्ष तक नियमतः गंगा में स्नान करता है, उसकी एक कल्प पर्यन्त वैष्णव लोक में अवस्थिति होती है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। जो मनुष्य आजीवन नित्य गंगा में स्नान करता है वह सभी परिवार समेत समस्त पापों से मुक्त होकर सभी भोगों से संयुक्त होकर विष्णु लोक में दो परार्ध तक पूजित होता है। इसमें संशय नहीं। जो मनुष्य नित्य निरन्तर गंगा में स्नान करता है वह इस जीवन में भी मुक्त है और मरकर विष्णु धाम को जाता है। प्रातः स्नान करने से दिन के स्नान से दस गुना अधिक पुण्य होता है। सायंकाल में शत गुणित अधिक तथा शिव के समीप

ये गृहे स्वे स्थितोऽपि त्वां स्नाने संकीर्तयिष्यति । सोऽपि यास्यति नाकं वै इत्याह वरुणश्च ताम् ॥४५

इति श्री बृहन्नारदीय पुराणतो गंगा माहात्म्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

स्नान करने से अनन्त गुणित पुण्य प्राप्त होता है । कोटि कपिला गौ के दान से भी विशेष फल गंगा स्नान का माना गया है । यत्र तत्र सभी स्थानों पर स्नान करने पर गंगा, कुरुक्षेत्र के समान फल देने वाली है; किन्तु हरिद्वार, प्रयाग एवं गंगासागर में वह विशेष फल देने वाली हैं । हे जान्हवी ! जो मनुष्य मेरी किरणों से संतप्त तुम्हारे जल में स्नान करते हैं वे मण्डल का भेदन कर मोक्ष प्राप्त करते हैं--ऐसी बात सूर्य ने गंगा से कही थी । जो मनुष्य अपने घर पर स्थित होकर भी स्नान करते समय तुम्हारा कीर्तन करेगा, वह भी स्वर्ग को जायगा--ऐसी बात वरुण ने गंगा से कही थी ।।१-४५।।

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गंगा माहात्म्य नामक पाँचवा अध्याय समाप्त ।।५।।

षष्ठोऽध्यायः

वसुरुवाच

अथ कालविशेषे तु गंगास्नानस्य ते फलम् । कीर्तयिष्यामि वामोरु सावधाना निशामय ॥१
नैरंतर्येण गंगायां माघे स्नाति च यो नरः । स शक्रलोके सुचिरं कालं तिष्ठेत् सगोत्रजः ॥२
ततो ब्रह्मपुरं याति कल्पकोटिशतायुतैः । नैरंतर्येण विधिवद् गंगायां स्नाति यो नरः ॥३
षण्मासमेककालाशी सकृदेवोत्तरायणे । सोपि विष्णुपदं याति कुलानां शतमुद्धरन् ॥४
संक्रान्तिषु तु सर्वासु स्नात्वा गंगाजले नरः । विमानेनार्कवर्णेन स व्रजेद्विष्णुमन्दिरम् ॥५
विषुवेयनसंक्रान्तौ विशेषात्फलमीरितम् । तपः समं कार्तिकेऽपिगंगास्नाने फलं विदुः ॥६
मेषप्रवेशार्ककाले कार्त्तिक्यांवापि मोहिनि । माघस्नानाधिकं प्राहुः कमलासनपूर्वकाः ॥७
संवत्सरस्नानजन्यं फलमक्षयके तिथौ । कार्त्तिके वापि वैशाखे इति प्राह पिता तव ॥८
मन्वादौ च युगादौ यत्प्रोक्तं गंगाजले फलम् । स्नानेन याज्यवनिते त्रिमास्यापि च तत्फलम् ॥९
द्वादश्यां श्रवणर्क्षे च अष्टम्यां पुष्ययोगतः । आर्द्रायां च चतुर्दश्यां गंगास्नानं सुदुर्लभम् ॥१०
पूर्णिमा माधवे पुण्या तथा कार्तिकमाघयोः । अमावास्यास्तथैतेषां गंगास्नाने सुदुर्लभाः ॥११
कृष्णाष्टम्यां सहस्रं तु शतं स्यात्सवपर्वसु । अमायां च तथाष्टम्यां माघासितदले सति ॥१२

वसु ने कहा--हे सुन्दरि ! अब इसके उपरान्त विशेष अवसरों पर गंगा-स्नान के फल का माहात्म्य मैं तुम्हें बतला रहा हूँ, सावधान होकर सुनो—जो मनुष्य निरन्तर बिना किसी दिन चूक किये माघ महीने में गंगा स्नान करता है वह अपने सगोत्रीय परिवार समेत चिरकाल तक इन्द्रलोक में स्थित होता है । तदुपरान्त सहस्रों कोटि कल्पों तक ब्रह्मपुर में निवास करता है । जो मनुष्य ६ मास तक सूर्य के उत्तरायण होने पर एक समय भोजन कर केवल एक बार भी गंगा-स्नान कर लेता है, वह भी अपने सैकड़ों कुलों का उद्धार करता हुआ विष्णु के पद को प्राप्त करता है । सभी संक्रान्तियों के अवसर पर गंगाजल में स्नान कर मनुष्य सूर्य के समान तेजस्वी विमान पर समारूढ़ होकर विष्णु मन्दिर को जाता है।

तुला तथा मेष की संक्रान्ति में विशेष रूप से स्नान का फल कहा गया है । माघ के समान कातिक में भी गंगास्नान का फल माना गया है । मोहिनि ! ब्रह्मा आदि ने कहा है कि मेष राशि में सूर्य के प्रवेश करने के समय या कार्तिक की संक्रान्ति में भी माघस्नान से अधिक फल होता है । कार्तिक तथा वैशाख महीने की अक्षय तिथियों में स्नान करने से एक वर्ष के स्नान करने का फल प्राप्त होता है-ऐसा ब्रह्मा ने कहा है । हे याज्यवनिते ! मन्वन्तर के आदि तथा युगादि दिवसों पर स्नान से जो फल प्राप्त होता है वह तीन महीने के स्नान करने के फल के समान है । द्वादशी तिथि को श्रवण नक्षत्र, अष्टमी को पुष्य नक्षत्र के योग, आर्द्रा नक्षत्र युक्त चतुर्दशी तिथि--इन अवसरों पर गंगा स्नान अति दुर्लभ है । वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि अक्षय पुण्य प्रदान करने वाली है उसी प्रकार कार्तिक तथा माघ की अमावस्या तिथियाँ भी गंगा स्नान के लिए अति दुर्लभ हैं । कृष्ण-पक्ष की अष्टमी तिथि का स्नान सहस्र गुने अधिक फलदायक है । सभी पर्व दिवसों का स्नान शतशः अधिक फलदायी है । माघ मास के कृष्ण-पक्ष की अष्टमी तथा

अर्धोदयं तदापर्व किंचिन्न्यून महोदयः। महोदये शतगुणं लक्षमर्द्धोदये स्मृतम् ॥१३
स्नानं गंगाजले देवि ग्रहणाच्चन्द्रसूर्ययोः। मासत्रयस्नानफलं फाल्गुनाषाढमासयोः ॥१४
जन्मर्क्षे तु कृते स्नाने गंगायां भक्तिभावतः। जन्मप्रभृति पापं वै संचितं हि विनश्यति ॥१५
चतुर्दश्यां माघकृष्णे व्यतीपातश्च दुर्लभः। कृष्णाष्टम्यां विशेषेण वैधृतिर्जाह्नवीजले ॥१६
माघं सकलमेवापि नरो यो विधिपूर्वकम्। अरुणोदयके स्नायी स तु जातिस्मरो भवेत् ॥१७
सर्वशास्त्रार्थविज्ञानी नीरोगश्च भवेद्ध्रुवम्। संक्रांत्यां पक्षयोरन्ते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥१८
गंगास्नातो नरःकामाद्ब्रह्मणः सदनं लभेत्। इन्दोर्लक्षगुणं प्रोक्तं रवेर्दशगुणं ततः ॥१९
गंगातीरे तु संप्राप्ता इन्दोः कोटी रवेर्दश। वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी
गंगायां यदिलभ्येत सूर्यग्रहशतैः समाः ॥२०
ज्येष्ठे मासि क्षितिसुतदिने शुक्लपक्षे दशम्यां, हस्तेशैलादवतरदसौ जाह्नवी मर्त्यलोकम्।
पापान्यस्यां हरति हि तिथौ सा दशैषाद्यगंगा, पुण्यं दद्यादपिशतगुणं वाजिमेघक्रतोश्च ॥२१
महापातकसंघानि यानि पापानि सन्ति मे। गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हन जाह्नवि ॥२२
मघासंज्ञेन ऋक्षेण चन्द्रः सम्पूर्णमंडलः। गुरुणा याति संयोगं तन्महत्त्वं तिथेः स्मृतम् ॥२३
गंगायांयदि लभ्येत् सूर्यग्रहशतैः समा। अथ देशविशेषेण स्नानस्य फलमुच्यते ॥२४

अमावस्या तिथियाँ भी विशेष फल देने वाली हैं। अर्धोदय अवसर पर विशेष पर्व है, महोदय का अवसर उससे कुछ न्यून है, महोदय का स्नान शतगुणित अधिक तथा अर्धोदय का स्नान लक्ष गुणित अधिक फलदायी माना गया है। हे देवि ! चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण के अवसर पर गंगा जल द्वारा स्नान करने पर विशेषतया फाल्गुन तथा आषाढ़ मास में तीन मास निरन्तर स्नान करने के समान फल प्राप्त होता है। अपने जन्म-नक्षत्र के दिन भक्तिभाव से गंगास्नान करने पर जन्म से लेकर किया गया संचित पाप नष्ट हो जाता है। माघ मास की कृष्ण चतुर्दशी एवं व्यतीपात योग गंगास्नान के लिए दुर्लभ योग हैं। विशेषतया गंगाजल में स्नान के लिए कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को वैधृति योग भी अति दुर्लभ योग है। जो मनुष्य विधिपूर्वक सम्पूर्ण माघ महीने में अरुणोदय के समय गंगास्नान करता है वह अपनी पूर्व जन्म की जाति का स्मरण करने वाला हो सकता है, निश्चय ही सभी शास्त्रों को विशेष जानने वाला तथा नीरोग होता है। संक्रान्ति के अवसर पर दोनों पक्षों के समाप्त होते समय, सूर्य तथा चन्द्रमा के ग्रहण के अवसर पर मनोरथ पूर्वक गंगा स्नान करने वाला मनुष्य ब्रह्मा का सदन प्राप्त करता है। चन्द्रमा के ग्रहण का स्नान लक्ष गुणित तथा सूर्य के ग्रहण का स्नान उससे भी दश गुणित अधिक फलदायी होता है, गंगा के तट पर चन्द्रमा कोटि गुने अधिक फल देने वाला तथा सूर्य उससे भी दश गुने अधिक फलदायी हो जाता है। वारुण योग से संयुक्त चैत्र मास की कृष्ण चतुर्दशी तिथि यदि गंगा में प्राप्त हो तो सैकड़ों सूर्य ग्रहण के समान फलदायिनी हो जाती है। ज्येष्ठ महीने की शुक्ल पक्षीय दशमी तिथि को मंगल दिन हस्त नक्षत्र पर जान्हवी पर्वत से मर्त्य लोक में अवतरित हुई, अतः उक्त तिथि को यह गंगा दश घोर पापों को दूर करती---है और अश्वमेधयज्ञ से भी दश गुना अधिक पुण्य देती है। हे जान्हवि ! मेरे महापातकों के जो पुञ्ज हैं उन्हें गोविन्द द्वादशी को प्राप्त हो कर तू दूर कर दे। मघा नामक नक्षत्र के दिन यदि चन्द्रमा का मण्डल पूर्ण हो जाता है अर्थात् पूर्णिमा तिथि पड़ती है तथा गुरुवार का दिन पड़ता है तो वह तिथि गंगास्नान के लिए महत्वपूर्ण कही जाती हैं और सैकड़ों सूर्य ग्रहण के समान फलदायी बतलायी गयी है। अब देशविशेष के अनुसार स्नान का फल बतला रहा हूँ। गंगा में जहाँ तहाँ स्नान करने से कुरु-क्षेत्र से दश गुना अधिक फल होता है; किन्तु जहाँ पर यह विन्ध्यगिरि से संयुक्त है वहाँ कुरुक्षेत्र से शतगुणित

कुरुक्षेत्राद्दशगुणा यत्र तत्रावगाहिता । कुरुक्षेत्राच्छतगुणा यत्र विंध्येन संयुता ॥२५
विन्ध्याच्छतगुणा प्रोक्ता,काशीपुर्यां तु जाह्नवी । सर्वत्र दुर्लभा गंगा त्रिषु स्थानेषु चाधिका ॥२६
गंगाद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे । एषु स्नाता दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥२७
गंगाद्वारे कुशावर्ते स्नाने पुण्यफलं शृणु । सप्तानां राजसूयानां फलं स्यादश्वमेधयोः ॥२८
उषित्वा तत्र मासार्धं षण्णां विश्वजितां फलम् । दशायुतानां तु गवां दानपुण्यं विदुर्बुधाः ॥२९
सरोत्तमेऽथ गोविन्दं रुद्रं कनखले स्थितम् । स्नात्वा वाप्येषु गंगायां पुण्यमक्षयमाप्नुयात् ॥३०
तीर्थं च सौकरं नाम महापुण्यं शुभे शृणु । यस्मिन्नाविरभूत्पूर्वं वाराहाकृतिरच्युतः ॥३१
शतस्याग्निचितां पुण्यं ज्योतिष्टोमद्वयस्य च । अग्निष्टोमसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥३२
तत्रैव ब्राह्मणस्तीर्थे ज्योतिष्टोमायुतस्य च । अश्वमेधत्रयस्यापि स्नातः पुण्यं लभेन्नरः ॥३३
कुब्जाख्यं तीर्थमनघं यत्र च व्याधयोऽखिलाः । नश्यन्ति सर्वजन्मोत्थं पातकं चापि मोहिनि ॥३४
अत्रान्यत्कापिलं तीर्थं यत्र स्नातो नरः शुभे । कपिलाष्टायुतस्यापि दानतुल्यं फलं लभेत् ॥३५
वेणीराज्यं ततस्तीर्थं सरयूर्यत्र गङ्गया । सुपुण्यया महापुण्यं स्वसा स्वस्रेव संगता ॥३६
हरिदक्षिणपादाब्जक्षालनादमरापगा । वामपादोद्भवा वापि सरयूर्मानसप्रसूः ॥३७
तीर्थे तत्रार्चयन् रुद्रं विष्णुं विष्णुत्वमाप्नुयात् । पंचाश्वमेधफलदं स्नानं तत्र प्रकीर्तितम् ॥३८

अधिकफल देने वाली है। विन्ध्य गिरि से शतगुणित अधिक काशी में जाह्नवी फलदेने वाली है। यों तो सभी स्थानों पर गंगा दुर्लभ है; किन्तु तीन स्थानों पर विशेषतया उसका प्रभाव है--गंगाद्वार, प्रयाग तथा गंगासागर के संगम स्थान पर। इन स्थानों में स्नान करने वाले प्राणी स्वर्ग को प्राप्त करते हैं तथा जो यहाँ मृत्यु लाभ करते हैं वे तो पुनर्जन्म ही नहीं धारण करते। गंगाद्वार तथा कुशावर्त में स्नान करने पर जो पुण्य एवं फल प्राप्त होता है, उसे सुनो ! यहाँ स्नान करने से सात राजसूय यज्ञ एवं दो अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। उक्त गंगाद्वार में केवल तीन मास तक निवास करने पर विश्वजित् याग का फल प्राप्त होता है। यथा दश सहस्र गौओं के दान देने का फल प्राप्त होता है ऐसा विद्वानों ने कहा है। कनखल में स्थित गोविन्द तथा रुद्र सरोवर में गंगा तट पर स्नान करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। हे कल्याणि ! सूकर नामक महापुण्यप्रद क्षेत्र में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है; उसे सुनो ! उस पवित्रतम तीर्थ में प्राचीन काल में अच्युत भगवान् ने बाराह आकार धारण किया था, वहाँ स्नान करने से मनुष्य को एक सौ अग्निचित्, दो ज्योतिष्टोम तथा एक-एक सहस्र अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है एवं तीन अश्वमेध का पुण्य वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य प्राप्त करता है। हे मोहिनि ! कुब्ज नामक निष्पाप तीर्थ है, जिसमें स्नान करने से सभी प्रकार की व्याधियाँ तथा जन्म से लेकर किये गये पाप समूह भी नष्ट हो जाते हैं। अन्यत्र कपिल नामक तीर्थ है, हे कल्याणि ! जहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य अस्सी सहस्र कपिला गौ के दान का फल प्राप्त करता है। उसके बाद वेणी राज्य नामक पवित्र तीर्थ है; जहाँ पर महापुण्यदायिनी सुरसरि गंगा से एक बहन से दूसरी बहन की भाँति पुण्य सलिला सरयू नदी मिली हैं। भगवान् विष्णु के दाहिने पैर के प्रक्षालन से सुरसरि गंगा (उत्पन्न) अवतरित हुई हैं और मानस की पुत्री सरयू उनके बांये पैर से उत्पन्न हुई हैं। उस वेणी तीर्थ में शिव एवं विष्णु की पूजा करने से विष्णुत्व की प्राप्ति होती है; और वहाँ स्नान करने से पाँच अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है---ऐसा कहा गया है। तदनन्तर गाण्डव नामक यीर्थ है; जहाँ पर गण्डकी नदी गंगा से मिली है; वहाँ का स्नान तथा एक सहस्र गौ का दान ये दोनों समान माने गए हैं। तदनन्तर रामतीर्थ है, जहाँ के समीप वैकुण्ठ में भगवान् विष्णु सन्निहित हैं। उसके बाद रामतीर्थ की महत्ता है; जहाँ असौर्थं कुल नामक मुनि ने शिव का ध्यान कर

ततस्तु गांडवं तीर्थं गंडकी यत्र संगता । गोसहस्रस्य दानं च तत्र स्नानं समं द्वयम् ।।३९
रामतीर्थं ततः पुण्यं वैकुण्ठं यत्र सन्निधौ । सोमतीर्थं ततः पुण्यं यत्रासौर्थकुलो मुनिः ।।४०
समभ्यर्च्यं शिवं ध्यायन्गणतां तु समाययौ । चम्पकाख्यं पुण्यतीर्थं तद्गंगोत्तरवाहिनी ।।४१
मणिकर्णिकया तुल्यं महापातकनाशनम् । कलशाख्यं ततस्तीर्थं कलशादुत्थितो मुनिः ।।४२
अगस्त्यः पूजयन्यत्र रुद्रं मुनिवरोऽभवत् । सोमद्वीपं महापुण्यं तीर्थं वाराणसीसमम् ।।४३
सोमो यत्रार्चयन्नीशं रुद्रेण शिरसा धृतः । विश्वामित्रस्य भगिनी गंगया यत्र संगता ।।४४
तत्राप्लुतो नरो भूयाद्वासवस्य प्रियातिथिः । जन्हुह्रदे महातीर्थे स्नातो मर्त्यो हि मोहिनि ।।४५
एक विंशतिकुल्यानां तारको भवति ध्रुवम् । तस्माददितितीर्थं च यत्रैषा ह्यदितिर्हरिम् ।।४६
कश्यपात्तत्र सुभगे स्नानमाहुर्महोदयम् । शिलोच्चयं महातीर्थं यत्र तप्त्वा तपः प्रजाः ।।४७
तृणादिभिस्सह स्वर्गं यान्ति तीगणाश्रयात् । इन्द्रार्थणी नाम तीर्थं स्याद्यत्रेन्द्राणी तु वासवम् ।।४८
तपस्तप्त्वा पतिं लेभे सेव्यमेतत्प्रयोगवत् । पुण्यदं स्नातकं तीर्थं विश्वामित्रस्तपश्चरन् ।।४९
यत्र ब्रह्मर्षितां लेभे क्षत्रियास्तीर्थसेवया । प्रद्युम्नतीर्थं तपसा ख्यातं यत्र स्मरो हरेः ।।५०
प्रद्युम्ननामा पुत्रोऽभूत्परं तत्र महोदयम् । ततो दक्षप्रयागं तु गंगातो यमुना गता ।।५१
स्नातस्यैवाक्षयं पुण्यं प्रयाग इव लभ्यते ।।५२

इति श्री बृहन्नारदीयपुराणतो गंगामाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ।।६

गणत्व की प्राप्ति की है। फिर चम्पक नामक पवित्र तीर्थ है, जहाँ पर उत्तर वाहिनी गंगा हैं। वहाँ का स्नान मणिकर्णिका स्नान की भांति घोर पातकों का नाश करने वाला है। तदनन्तर कलश नामक तीर्थ है, जहाँ पर कलश से उत्पन्न हुए अगस्त मुनि ने शिव की आराधना कर मुनिवरत्व प्राप्त किया था। सोमद्वीप नामक तीर्थ वाराणसी के समान महत्त्वशाली है; जहाँ पर सोम ने ईश (शिव) की आराधना की थी, जिससे शिव जी ने शिर पर उसे धारण कर लिया। विश्वामित्र की भगिनी (कौशिकी) जहाँ गंगा से मिली है, उस पवित्र तीर्थस्थान में स्नान करने वाला मनुष्य वासव (इन्द्र) का प्रिय अतिथि होता है। हे मोहिनि ! जन्हुह्लद नामक महातीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य निश्चय ही इक्कीस पीढ़ियों का तारने वाला होता है। उसके बाद अदिति नामक तीर्थ है, जहाँ पर अदिति ने भगवान् विष्णु की आराधना की थी। हे सुन्दरि ! वहीं पर अदिति ने महोदय स्नान की चर्चा की थी। ऐसा लोग कहते हैं। फिर शिलोच्चय नामक तीर्थ है, जहाँ पर तपस्या करके लोग तृणादिकों समेत स्वर्ग जाते हैं। पुनः इन्द्राणी नामक तीर्थ की महत्ता बतायी गयी है. जहाँ पर इन्द्राणी ने तपस्या करके इन्द्र को पति रूप में प्राप्त किया था, उस तीर्थ की किसी प्रयोग की भांति सेवा करनी चाहिए। फिर पुण्यदायी स्नातक नामक तीर्थ हैं, जहाँ पर क्षत्रिय विश्वामित्र ने तपस्या करके ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त किया था। फिर प्रद्युम्न नामक तीर्थ है; जहाँ पर कामदेव तप करके भगवान् कृष्ण का प्राद्युम्न नामक पुत्र हुआ था। तदनन्तर दक्ष प्रयाग नामक तीर्थ है, जहाँ पर गंगा से यमुना मिलती है। वहाँ स्नान करने वाले को प्रयाग-स्नान जैसा अक्षय पुण्य प्राप्त होता है ।।१–५२।।

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गंगा माहात्म्य नामक छठां अध्याय समाप्त ।।६।।

प्रथमोऽध्यायः
उत्पत्तिखण्ड

नारद उवाच

विष्णुपादाग्रसंभूता या गंगेत्यभिधीयते । तदुत्पत्तिं वद भ्रातरनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ॥१

सनक उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि गङ्गोत्पत्तिं तवानघ । वदतां शृण्वताञ्चैव पुण्यदां पापनाशिनीम् ॥२
आसीदिन्द्रादिदेवानां जनकः कश्यपो मुनिः । दक्षात्मजे तस्य भार्ये दितिश्चादितिरेव च ॥३
अदितिर्देवमातास्ति दैत्यानां जननी दितिः । ते तयोरात्मजा विप्र परस्परजयैषिणः ॥४
सदा सपूर्वदेवास्तु यतो दैत्याः प्रकीर्तिताः । आदिदैत्यो दितेः पुत्रो हिरण्यकशिपुर्बली ॥५
प्रह्लादस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुमहान्दैत्यसत्तमः । विरोचनस्तस्य सुतो बभूव द्विजभक्तिमान् ॥६
तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी बलिरासीत्प्रतापवान् । स एव वाहिनीपालो दैत्यानामभवन्मुने ॥७
बलेन महता युक्तो बुभुजे मेदिनीमिमाम् । विजित्य वसुधां सर्वां स्वर्गं नेतुं मनोदधे ॥८
गजाश्च यस्यायुतकोटिलक्षास्तावंत एवाश्वरथा मुनीन्द्र । गजे गजे पंचशती पदातेः किं वर्ण्यते तस्य चमू वरिष्ठा ॥९
अमात्यकोट्यग्रसरावमात्यौकुंभांडनामाप्यथ कूपकर्णः । पिता समं शौर्यपराक्रमाभ्यां बाणो बलेः पुत्रशताग्रजोऽभूत् ॥१०

नारद ने कहा--भ्रातः ! यदि मैं आपसे अनुगृहीत होऊँ तो मुझे विष्णु भगवान् के चरण के अग्रभाग से उत्पन्न गंगाजी की उत्पत्ति कथा सुनाइए ॥१॥

सनक ने कहा--निष्पाप नारद जी ! कहने एवं सुननेवाले दोनों को पुण्य प्रदान करनेवाली पापनाशिनी गंगा की उत्पत्तिकथा मैं तुमसे कह रहा हूँ, सुनो ॥२॥

इन्द्रादि देवताओं को उत्पन्न करनेवाले कश्यप नामक एक मुनि थे । दक्ष की दिति-अदिति नामक दोनों कन्यायें उनकी धर्मपत्नी थीं । इनमें देवताओं की जननी अदिति तथा दैत्यों की जननी दिति थी । विप्र ! इन दोनों की संतान आपस में एक दूसरे को पराजित करने की इच्छुक रहा करती थीं । देवता लोग दैत्यों के छोटे भाई थे । दिति के समस्त पुत्रों में सर्वप्रथम हिरण्यकशिपु नामक महाबली दैत्य हुआ । उसके दैत्यों में श्रेष्ठ प्रह्लाद तथा प्रह्लाद के ब्राह्मणों का महान् भक्त विरोचन नामक एक पुत्र हुआ । फिर उसके भी अति तेजस्वी महान्प्रतापी बलि नामक पुत्र हुआ । मुने ! बली बलि दैत्य की सेनाओं का नायक भी बना और उसने बहुत बड़ी सेना द्वारा इस समस्त पृथ्वी मंडल को जीतकर आनन्द का अनुभव किया । तत्पश्चात् उसने स्वर्ग जीतने की भी इच्छा की ॥३-८॥

मुनिवर ! उस समय उसकी सेना में दस पद्म हाथी तथा इतने ही घोड़े और रथ थे, प्रत्येक हाथी के पीछे ५०० पैदल सेना थी । इसलिये उस विशाल सेना का वर्णन किस भांति किया जा सकता है । उसके करोड़ों मंत्रियों में कुंभांड और कूपकर्ण नामक दो प्रधान मन्त्री थे, बलि के भी सौ पुत्र थे, जिन में सबसे ज्येष्ठ अपने पिता के समानशौर्य-

बलिः सुराञ्जेतुमनाः प्रवृत्तः सैन्येन युक्तो महता प्रतस्थे । ध्वजातपत्रैर्गगनाम्बुराशेस्तरंगविद्युत्स्मरणेप्रकुर्वन ॥११

अवाप्य वृत्रारिपुरं सुरारी रुरोध दैत्यैर्मृगराजगाढ़ैः । सुराश्च युद्धाय पुरात्तथैव विनिर्ययुर्वज्रकरादयश्च ॥१२

ततः प्रववृते युद्धं घोरं गीर्वाण-दैत्ययोः । कल्पांत मेघनिर्घोषं डिंडिमध्वान-संभ्रमम् ॥१३

मुमुचुः शरजालानि दैत्याः सुमनसां बले । देवाश्च दैत्यसेनासु संग्रामेऽत्यंतदारुणे ॥१४

जहि दारय भिंधीति छिंधि मारय ताडय । इत्येवं सुमहान्घोषोवदतां सैन्ययोरभूत् ॥१५

शरदुंदुभिनिध्वानैः सिंहनादैः सुरद्विषाम् । भांकारैः स्पन्दनानाञ्च बाणक्रेंकारनिःस्वनैः ॥१६

अश्वानां ह्रेषितश्चैव गजानां बृंहितैस्तथा । टंकारैर्धनुषाञ्चैव लोकः शब्दमयोऽभवत् ॥१७

सुरासुरविनिर्मुक्तबाणनिष्पेषजानले । अकालप्रलयं मेने निरीक्ष्य सकलं जगत् ॥१८

बभौ देवद्विषां सेना स्फुरच्छस्त्रौघधारिणी । चलद्विद्युन्निभा रात्रिश्छादिता जलदैरिव ॥१९

तस्मिन्युद्धे महाघोरैर्गिरीन् क्षिप्तान्सुरारिभिः । नाराचैश्चूर्णयामासुर्देवास्ते लघुविक्रमाः ॥२०

केचित्संताडयामासुर्नागैर्नागान् रथान् रथैः । अश्वैरश्वांश्च केचित्तु गदादंडैरथार्द्दयन् ॥२१

परिघैस्ताडिताः केचित्पेतुः शोणितकर्दमे । समुत्क्रान्तासवः केचिद्विमानानि समाश्रिताः ॥२२

ये दैत्या निहता देवैः प्रसह्य संगरे तदा । ते देवभावमापन्ना दैतेयान्समुपाद्रवन् ॥२३

अथ दैत्यगणाः क्रुद्धास्ताड्यमानाः सुरैर्भृशम् । शस्त्रैर्बहुविधैर्देवान्निजघ्नु रतिदारुणाः ॥२४

दृषद्भि भिंदिपालैश्च खड्गैः परशुतोमरैः । परिघैश्छुरिकाभिश्च कुंतैश्चक्रैश्च शंकुभिः ॥२५

मुशलैरंकुशैश्चैवलांगलैः पट्टिशैस्तथा । शक्त्युपलैः शतघ्नीभिः पाशैश्च तलमुष्टिभिः ॥२६

शूलैर्नालीकनाराचैः क्षेपणीयैस्समुद्गरैः । रथाश्वनागपदगैः संकुलो ववृधे रणः ॥२७

पराक्रमी बाण नामक पुत्र था। देवताओं को जीतने के लिए बलि ने अपनी विशाल वाहिनी को साथ लेकर युद्धार्थ प्रस्थान किया। समुद्र की भांति विस्तीर्ण आकाश मंडल में चमकते हुए ध्वजा एवं छत्रों को बिजली की तरंगों के समान देखते हुए उसने प्रस्थान किया। वृत्रासुर के शत्रु इन्द्र की नगरी में पहुँचकर उसने सिंह के समान भीषण दैत्यों द्वारा उसे चारों ओर से घेर लिया। देवता लोग भी उसी समय हाथ में वज्र आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध के लिए नगरी के बाहर निकले ॥९–१२॥

तदनन्तर देवों और दैत्यों में महान युद्ध छिड़ गया। जिसमें डिंडिम (डमरू) वाद्यों की आवाज, महाप्रलय में मेघ-गर्जन के समान भीषण मालूम होती थी। दैत्यगण देवताओं की सेना में तथा देवता लोग दैत्य की सेना में लगातार बाणों की वर्षा करते थे। दोनों सेनाओं में मार डालो, चीर डालो, फाड़ डालो, पीटो इस प्रकार महान् कोलाहल हो रहा था। नगाड़ों की ध्वनियों से, असुरों के सिंहनादों से, बाणों के पंख फड़कने से, घोड़ों की हिनहिनाहट से, हाथियों की चिंघाड़ों से एवं धनुषों की टंकार से समस्त जगत् गूंज रहा था। सुरों तथा असुरों के छूटे हुए बाणों की पारस्परिक रगड़ से उत्पन्न हुई अग्नि को निखिल संसार में व्याप्त देखकर अकाल-प्रलय का अनुभव हो रहा था। दैत्यों की सेना चम-चम चमकते हुए शस्त्रों को लिये हुए, चंचल चपला समेत बादलों से घिरी हुई रात्रि के समान शोभित हो रही थी। उस युद्ध में विकराल भीषण दैत्यों द्वारा फेंके गये पर्वतों को देवता लोग तुरन्त अपने बाणों से चूर्ण-चूर्ण कर देते थे। कोई हाथियों द्वारा हाथियों को टक्कर देकर, कोई रथ द्वारा रथों को टक्कर देकर, कोई घोड़ों द्वारा घोड़ों को टक्कर देकर तथा कोई एक

देवाश्च विविधास्त्राणि दैतेयेभ्यस्समाक्षिपन् । एवमष्टसहस्राणि युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥२८
अथ दैत्यबले वृद्धे पराभूताः दिवौकसः । सुरलोकं परित्यज्य सर्वे भीताःप्रदुद्रुवुः ॥२९
नररूपपरिच्छन्ना विचेरुरवनीतले । वैरोचनस्त्रिभुवनं नारायणपरायणः ॥३०
बुभुजेऽव्याहतैश्वर्यप्रवृद्धश्रीर्महाबलः । इयाज चाश्वमेधैः स विष्णुप्रीणनतत्परः ॥३१
इन्द्रत्वं चाकरोत्स्वर्गे दिक्पालत्वं तथैव च । देवानां प्रीणनार्थाय यैः क्रियन्ते मखाः द्विजैः ॥३२
तेषु यज्ञेषु सर्वेषु हविर्भुक्ते सदैत्यराट् । अदितिः स्वात्मजान्वीक्ष्य देवमातातिदुःखिता ॥३३
वृथात्र निवसामीति मत्वागाद्धिमवद्गिरिम् । शक्रस्यैश्वर्यमिच्छन्ती दैत्यानां च पराजयम् ॥३४
हरिध्यानपराभूत्वा तपस्तेपेऽतिदुष्करम् । किंचित्कालं समासीना तिष्ठंती च ततः परम् ॥३५
पादेनैकेन सुचिरं ततः पादाग्रमात्रतः । कंचित्काल फलाहारा ततः शीर्णदलाशना ॥३६
ततोजलाशना वायुभोजनाहारवर्जिता । सच्चिदानंदसंदोहं ध्यायत्यात्मानमात्मना ॥३७
दिव्याब्दानां सहस्रं सा तपोऽतप्यत नारद । दुरंतं तत्तपः श्रुत्वा दैतेया मायिनोऽदितिम् ॥३८
देवतारूपमास्थाय संप्रोचुर्बलिनोदिताः । किमर्थं तप्यसे मातः शरीरपरिशोषणम् ॥३९
यदि जानंति दैतेया महद्दुःखं ततो भवेत् । त्यजेदं दुःखबहुलं कायशोषणकारणम् ॥४०

दूसरे को गदाओं द्वारा पीड़ित कर रहा था। कुछ वीरगण परिघों से घायल होकर उस रक्त के कीचड़ में गिर गये और कुछ प्राण-परित्याग कर ऊपर विमान के आश्रय में गये। संग्राम में देवताओं के पराक्रम द्वारा जो दैत्य प्राण-परित्याग करते थे वे मृत्यु के बाद देवरूप प्राप्तकर दैत्यों के ऊपर झपट पड़ते थे। इस प्रकार देवताओं द्वारा पीड़ित होने पर भयंकर दैत्यलोग भी अनेक प्रकार के शस्त्रों द्वारा देवताओं को मारने लगे। उस समय पत्थर, भिन्दिपाल, तलवार, फरसा, तोमर, परिघ, छुरी, भाला, चक्र, शंकु, मूसल, अंकुश, लांगल, पटा, गोफन, तोप (शतघ्नी) फांस, मुक्के, शूल, बन्दूक, धनुष-बाण, मुग्दर, रथ, घोड़े, हाथी और पैदलों से भरा हुआ युद्ध बढ़ने लगा। इस प्रकार आठ हजार वर्षों तक युद्ध बराबर होता रहा, और युद्ध में देवताओं द्वारा अनेक प्रकार के अस्त्र छोड़ने पर भी दैत्यों का बल बढ़ता ही गया। तदनन्तर दैत्यों के बल बढ़ने पर पराजित होकर देवतालोग भयभीत हो स्वर्ग छोड़कर भाग निकले और मनुष्य रूप धारणकर पृथ्वी पर विचरने लगे। उधर विरोचन का पुत्र बलि एकमात्र भगवान् विष्णु की शरण लेकर त्रिभुवन का शासन करने लगा। उस महाबली की लक्ष्मी, अविच्छिन्नऐश्वर्य द्वारा निरन्तर वृद्धि प्राप्त करती थी। विष्णु भगवान् को प्रसन्न करने के लिए उसने अश्वमेध-यज्ञ भी किया। स्वर्ग में इन्द्र तथा दिक्पालों का कार्यभार स्वयं ग्रहणकर उस दैत्यराज ने देवताओं के प्रसन्नतार्थ ब्राह्मणों द्वारा किये गये समस्त यज्ञों में हविष्पात्र को भी भक्षण करना आरम्भ किया। देव-माता अपने पुत्रों की ऐसी दुर्दशा देखकर बहुत दुःखित हुई ॥१३-३३

मैं यहाँ व्यर्थ निवास कर रही हूँ, ऐसा समझकर उन्होंने हिमालय को प्रस्थान किया और वहाँ पहुंचकर इन्द्र के ऐश्वर्य एवं दैत्यों के पराजय के निमित्त हरि के ध्यान में निमग्न हो अत्यन्त दुःसाध्य तप करना आरम्भ किया। कुछ काल बैठकर, खड़ा होकर, एक पैर से, पैर के केवल अग्रभाग से, कुछ समय फल खाकर, सूखकर गिरे हुए फटे-पुराने पत्तों को खाकर, जल पीकर, वायु का पानकर, फिर उसे भी त्यागकर हृदय से एक मात्र सच्चिदानन्द का ध्यान करने लगीं। नारद ! इस प्रकार अदिति ने एक सहस्र दिव्य वर्षों तक दुष्कर तप किया। मायावो दैत्यगण इस प्रकार घोर तप करती हुई अदिति के बारे में सुनकर बलि की प्रेरणा से देव-रूप धारण कर वहाँ गये और बोलेः——मातः ! शरीर को सुखाने वाले इस कठोर तप को तुम क्यों कर रही हो ? यदि दैत्यों को यह विदित हो

प्रयाससाध्यं सुकृतं न प्रशंसंति पंडिताः । शरीरं यत्नतोरक्ष्यं धर्मसाधनतत्परैः ॥४१
ये शरीरमुपेक्षंते ते स्युरात्मविघातिनः । सुखं त्वं तिष्ठ सुभगे पुत्रानस्मान्न खेदय ॥४२
मात्राहीना जना मातर्मृतप्राया न संशयः । गावो वा पशवो वापि यत्र गावो महीरुहाः ॥४३
न लभंते सुखं किंचिन्मात्राहीना मृतोपमाः । दरिद्रोवापि रोगी वा देशांतरगतोऽपिवा ॥४४
मातृर्दर्शनमात्रेण लभते परमां मुदम् । अन्ने वा सलिले वापि धनादौ वा प्रियासु च ॥४५
कदाचिद्विमुखो याति जनो मातरि कोऽपि न । यस्य माता गृहे नास्ति यत्र धर्मपरायणा
साध्वीच स्त्री पतिप्राणा गंतव्यं तेन वै वनम् ॥४६
धर्मश्च नारायणभक्तिहीनो धनं च सद्भोगविवर्जितं हि । गृहं च भार्यातनयैर्विहीनं यथा तथा
मातृविहीन मर्त्यः ॥४७
तस्माद्देवि परित्राहि दुखार्तानात्मजांस्तव । इत्युक्ताप्यदितिर्दैत्यैर्न चचाल समाधितः ॥४८
एवमुक्त्वा सुराःसर्वे हरिध्यानपरायणाम् । निरीक्ष्य क्रोधसंयुक्ता हंतुं चक्रुर्मनोरथम् ॥४९
कल्पांतमेघनिर्घोषाः क्रोधसंरक्तलोचनाः । दंष्ट्राग्रैरसृजन्वह्नि सोऽदहत्काननं क्षणात् ॥५०
शतयोजनविस्तीर्णं नानाजीवसमाकुलम् । तेनैव दग्धा दैतेया ये प्रधर्षयितुं गताः ॥५१
सैवावशिष्टा जननी सुराणामब्दच्छतादच्युतशक्तचित्ता । संरक्षिता विष्णुसुदर्शनेन
दैत्यांतकेन स्वजनानुकंपिना ॥५२

इति श्री वृहन्नारदीय पुराणतो गङ्गोत्पत्तौ प्रथमोऽध्यायः ॥१

जायगा तो उनके द्वारा हमें महान् कष्ट भोगना पड़ेगा । इसलिए दुःख सागर तथा शरीर सुखा देनेवाले इस तप को छोड़ दो । कष्ट से प्राप्त होनेवाले पुण्य की प्रशंसा पंडित लोग नहीं करते हैं। धर्म में तत्पर रहनेवालों को अपनी शरीर-रक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए । शरीररक्षा की उपेक्षा करनेवाले आत्मघाती कहलाते हैं । अतःसौभाग्यवति ! तुम सुखपूर्वक रहो, हम पुत्रों को व्यर्थ चिंतित न करो ॥३४–४२॥

मातृहीन पुत्र मृतक के समान है। गौ, पशु, वृक्ष आदि के रहते हुए भी यदि माता नहीं है तो कुछ भी सुख नहीं मिल सकता है । दरिद्र या रोगी या प्रवासी कोई भी क्यों न हो, माता के दर्शन से उसे परम आनन्द प्राप्त होता है । अन्न, जल, धन तथा स्त्री सब मनुष्य से कभी भी विमुख हो सकते हैं किन्तु माता कभी भी विमुख नहीं हो सकती। जिसके घर में माता तथा पति-प्राणा एवं धर्म-परायणा स्त्री न हो उसे जंगलों में निवास करना चाहिए ॥४३–४६॥

जिस प्रकार नारायण-भक्तिहीन धर्म, सद्भोग से रहित धर्म, स्त्री तथा पुत्र रहित घर व्यर्थ है उसी तरह मातृहीन मनुष्य भी व्यर्थ है । इसलिए देवि ! अपने दुःखी पुत्रों की रक्षा करो, इस प्रकार दैत्यों के कहने पर भी अदिति समाधि से विचलित नहीं हुई । भगवान् के ध्यान में निमग्न देखकर दैत्यों ने क्रुद्ध होकर उन्हें मारने की इच्छा की । प्रलय-कालीन मेघ के समान गर्जते तथा क्रोध के कारण लाल-लाल आँखें कर अपने मुख से उन लोगों ने अग्नि उत्पन्न की। उस भीषण अग्नि ने जंगल को क्षणमात्र में जलाकर जलाने के लिए गए उन दैत्यों को भी भस्म कर दिया । एकमात्र देवताओं की माता अदिति ही अब शेष रहीं। कारण यह था कि एक सहस्र वर्ष अच्युत भगवान् के ध्यान में निमग्न रहने से प्रसन्न होकर दैत्य-संहारी भगवान् विष्णु अपने सुदर्शन चक्र द्वारा उनकी रक्षा कर रहे थे । वे भगवान् अपने जनों के ऊपर महान् अनुग्रह करते हैं ॥४७–५२॥

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गंगोत्पत्ति के प्रसंग में प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

द्वितीयोऽध्याय

नारद उवाच

अहोह्यत्यद्भुतं प्रोक्तं त्वया भ्रातरिदं मम । स वह्निरदितिं मुक्त्वा कथं तानदहत्क्षणात् ॥१
वदादितेर्महासत्वं विशेषाश्चर्यकारणम् । परोपदेशनिरताः सज्जना हि मुनीश्वराः ॥२

सनक उवाच

श्रृणु नारद माहात्म्यं हरिभक्तिरतात्मनाम् । हरिध्यानपरान्साधून्कः समर्थः प्रबाधितुम् ॥३
हरिभक्तिपरो यत्र तत्र ब्रह्मा हरिः शिवः । देवाःसिद्धा मुनीशाश्च नित्यं तिष्ठन्ति सत्तमाः ॥४
हरिरास्ते महाभाग हृदये शांतचेतसाम् । हरिनामपराणाञ्च किमुध्यानरतात्मनाम् ॥५
शिवपूजारतोवापि विष्णुपूजापरोऽपि वा । यत्र तिष्ठति तत्रैव लक्ष्मीः सर्वाश्च देवताः ॥६
यत्र पूजापरो विष्णोर्वन्हिस्तत्र न बाधते । राजा वा तस्करो वापि व्याधयश्च न संति हि ॥७
प्रेता पिशाचाः कूष्माण्डग्रहाबालग्रहास्तथा । डाकिन्यो राक्षसाश्चैव न बाधतेऽच्युतार्चकम् ॥८
परपीडारता ये तु भूतवेतालकादयः । नश्यंति यत्र सद्भक्तो हरिलक्ष्म्यर्चने रतः ॥९
जितेन्द्रियः सर्वहितो धर्मकर्म परायणः । यत्र तिष्ठति तत्रैव सर्वतीर्थानि देवताः ॥१०
निमिषं निमिषार्द्धं वा यत्रतिष्ठन्ति योगिनः । तत्रैव सर्वश्रेयांसि तत्तीर्थं तत्तपोवनम् ॥११
यन्नामोच्चारणादेव सर्वे नश्यंत्युपद्रवाः । स्तोत्रैर्वाप्यर्हणाभिर्वा किमुध्यानेन कथ्यते ॥१२
एवं तेनाग्निना विप्र दग्धं सासुरकाननम् । सादितिनैंव दग्धाभूद्विष्णुचक्राभिरक्षिता ॥१३

नारद ने कहा—हे भ्रातः ! आपने यह एक आश्चर्यजनक बात कही, अग्नि ने क्षण भर में एकमात्र अदिति को छोड़कर उन सबको कैसे जला दिया ? महर्षि लोग सज्जन होने के कारण परोपदेश ही में सर्वदा लगे रहते हैं। अतः आप अदिति के विशेष आश्चर्यजनक महापराक्रम को सुनाइए ॥१–२॥

सनक ने कहा—नारद ! भगवान् के ध्यान में लीन रहनेवाले महात्माओं को कौन दुःखी कर सकता है ? इसलिए भगवान् के चरण-सेवकों का माहात्म्य मैं तुमसे कह रहा हूँ, सुनो। भगवान् का भक्त जहाँ स्थित रहता है वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवतागण, सिद्धगण और मुनीश्वर आदि भी सर्वदा स्थित रहते हैं। महाभाग ! शांतचित्तवालों, हरिनाम का जप करनेवालों तथा ध्यान में निमग्न रहने वालों के हृदय में भगवान् निवास करते हैं। जिस स्थान पर शिव-पूजा-परायण या विष्णू-पूजा में रत कोई प्राणी निवास करता है, वहाँ लक्ष्मी और समस्त देवगण स्थित रहते हैं।

जिस स्थान पर विष्णु-पूजा-परायण प्राणी रहता है उसे राजा, चोर अथवा कोई व्याधि पीड़ित नहीं कर सकते। अच्युत भगवान् के सेवक को प्रेत, पिशाच, अशुभ-ग्रह, बाल-ग्रह, डाकिनी, राक्षस आदि कभी बाधा नहीं पहुँचा सकते। विष्णु और लक्ष्मी के पूजन में निमग्न सद्भक्त जहाँ रहता है वहाँ दूसरों को पीड़ा देनेवाले भूत-वेताल आदि नष्ट हो जाते हैं। जितेन्द्रिय, समस्त जीवों का हितैषी तथा धर्म-कर्म-परायण प्राणी जहाँ रहता है, वहीं समस्त तीर्थ और समस्त देवतागण भी निवास करते हैं। जहां निमेषमात्र अथवा निमेषार्द्ध-समय तक योगी जन रहते हैं, वहीं पर सब प्रकार के कल्याण भी होते हैं और वही स्थान तीर्थ तथा तपोवन है। जिस भगवान् के नामोच्चारण-

ततः प्रसन्नवदनः पद्मपत्रायतेक्षणः । प्रादुरासीत्समीपेऽस्याः शंखचक्रगदाधरः ॥१४
ईषद्धास्यस्फुरद्दंतप्रभाभाषितदिङ्मुखः । स्पृशन्करेण पुण्येन प्राह कश्यपवल्लभाम् ॥१५

श्रीभगवानुवाच

देवमातः प्रसन्नोऽस्मि तपसाराधितस्त्वया । चिरं श्रांतासि भद्रं ते भविष्यति न संशयः ॥१६
वरं वरय दास्यामि यत्ते मनसि रोचते । मा भैर्भद्रे महाभागे ध्रुवं श्रेयो भविष्यति ॥१७
इत्युक्ता देवमाता सा देवदेवेन चक्रिणा । तुष्टाव प्रणिपत्यैनं सर्वलोकसुखावहम् ॥१८

अदितिरुवाच

नमस्ते देवदेवेश सर्वव्यापिञ्जनार्दन । सत्त्वादिगुणभेदेन लोकव्यापारकारण ॥१९
नमस्ते बहुरूपायारूपायच महात्मने । सर्वैकरूपरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥२०
नमस्ते लोकनाथाय परमज्ञानरूपिणे । सद्भक्तिजनवात्सल्य शालिने मंगलात्मने ॥२१
यस्यावताररूपाणि ह्यर्चयन्ति मुनीश्वराः । तमादिपुरुषं देवं नमामि ह्यर्थसिद्धये ॥ २२
श्रुतयो यं न जानंति न जानन्ति च सूरयः । तं नमामि जगद्धेतुं समायं चाप्यमायिनम् ॥२३
यस्यावलोकनं चित्रं मायोपद्रवकारणम् । जगद्रूपं जगद्धेतुं तं वन्दे सर्ववन्दितम् ॥२४
यत्पादाम्बुजकिंजल्क सेवारक्षितमस्तकाः । अवापुः परमां सिद्धिं तं वन्दे कमलाधवम् ॥२५
यस्य ब्रह्मादयो देवा महिमानं न वै विदुः । अत्यासन्नं च भक्तानां तं वन्दे भक्तसंगिनम् ॥२६
यो देवस्त्यक्तसंगानां शान्तानां करुणार्णवः । करोतिह्यात्मनससंगं तं देवं संगवर्जितम् ॥२७

मात्र से निखिल उपद्रव शान्त हो जाते हैं, उनकी स्तुति पूजन और ध्यान से क्या नहीं सिद्ध हो सकता है ? विप्र ! इस कारण इस अग्नि द्वारा असुर समेत सारा जंगल जल गया; परन्तु भगवान् विष्णु के सुदर्शन से सुरक्षित हो वह नहीं जली । तदनन्तर उसके समीप प्रसन्न-मुख, कमल नेत्र भगवान् शंख, चक्र और गदा धारण किये हुए प्रकट हुए । मन्द हास्य के कारण दांतों की उज्ज्वल किरणों द्वारा दिशाओं को प्रकाशित करते हुए भगवान् अपने पवित्र हाथ से महर्षि कश्यप की प्राण-वल्लभा का स्पर्श कर बोले ॥३–१५॥

श्री भगवान् ने कहा—देवि ! मैं तुम्हारी तप-आराधना से, प्रसन्न हूँ; बहुत दिनों से कष्ट सहन कर रही हो, निःसंदेह तुम्हारा कल्याण होगा । अपने मनोरथ के अनुरूप वरदान मांगो, मैं देने को तैयार हूँ, सौभाग्यवती ! किसी प्रकार का भय न करना, तुम्हारा कल्याण होना निश्चित है ।

देव-देवाधीश, सुदर्शन चक्रधारी भगवान् के इस प्रकार कहने पर देवताओं की जननी (अदिति) ने समस्त लोक को सुख देने वाले विष्णु की प्रणामपूर्वक स्तुति की ॥१६–१८॥

अदिति ने कहा—देव-देवाधीश ! सर्व-व्यापक ! जनार्दन ! सत्त्व, रजस् तमस् गुणों के भेद से लोकों की उत्पत्ति स्थिति और लय के कारण ! तुम्हें नमस्कार है । अनेक रूप धारण करने वाले ! निर्गुण विराट्-रूपधारीसगुण ब्रह्म-रूप भगवान् तुम्हें नमस्कार है । लोकाधिपति, परम ज्ञान-स्वरूप, अपने सद्भक्त-जनों को वत्सलता से अनुगृहीत करने वाले मंगलमय भगवान् के लिए यह नमस्कार है । महर्षि लोग जिसके अवतार-रूप की अर्चना-वन्दना करते हैं, अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए मैं उन आदि-देव को नमस्कार करती हूँ । जिनको भली भाँति श्रुति तथा विद्वज्जन भी नहीं जान सकते हैं उन जगत् के कारण माया विशिष्ट तथा माया शून्य भगवान् को मैं नमस्कार करती हूँ । जिनका दर्शन विचित्र फल देने वाला एवं मायारूपी उपद्रव का हेतु है; उन जगद्रूप (विराट् रूप), जगत् के कारण, सर्व वन्दित

यज्ञेश्वरं यज्ञकर्म यज्ञकर्मसुनिष्ठितम् । नमामि यज्ञफलदं यज्ञकर्मप्रबोधकम् ॥२८
अजामिलोऽपि पापात्मा यन्नामोच्चारणादनु । प्राप्तवान्परमं धाम तं वन्दे लोकसाक्षिणम् ॥२६
हरिरूपी महादेवः शिवरूपी जनार्दनः । इति लोकस्य नेता यस्तं नमामि जगद्गुरुम् ॥३०
ब्रह्माद्या अपि देवेशा यन्मायापाशयंत्रिताः । न जानन्ति परं भावं तं वन्दे सर्वनायकम् ॥३१
हृत्पद्मस्थोऽप्ययोग्यानां दूरस्थ इव भासते । प्रमाणातीतसद्भावस्तं वन्दे ज्ञानसाक्षिणम् ॥३२
यन्मुखाद्ब्राह्मणो जातो बाहुभ्यांक्षत्रियोऽजनि । ऊर्वोर्वैश्यःसमुत्पन्नः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ॥३३
मनसश्चंद्रमा जातो जातः सूर्यश्च चक्षुषः । मुखादग्निस्तथेन्द्रश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥३४
ऋग्यजुःसामरूपाय सप्तस्वर गतात्मने । षडंगरूपिणे तुभ्यं भूयो भूयो नमोनमः ॥३५
त्वमिन्द्रः पवनः सोमस्त्वमीशानस्त्वमंतकः । त्वमग्निर्निॠतिश्चैव वरुणस्त्वं दिवाकरः ॥३६
देवाश्च स्थावराश्चैव पिशाचाश्चैव राक्षसाः । गिरयः सिद्धगंधर्वा नद्यो भूमिश्च सागराः ॥३७
त्वमेव जगतामीशो यत्रासि त्वं परात्परः । त्वद्रूपमखिलं देव तस्मान्नित्यं नमोऽस्तु ते ॥३८
अनाथनाथ सर्वज्ञ भूतदेवेन्द्रविग्रह । दैतेयैर्बाधितान्पुत्रान्मम पाहि जनार्दन ॥३९
इति स्तुत्वा देवमाता देवं नत्वा पुनः पुनः । उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा हर्षाश्रुक्षालितस्तनी ॥४०
अनुग्राह्यास्मि देवेश त्वया सर्वादिकारण । अकण्टकांश्रियं देहि मत्सुतानां दिवौकसाम् ॥४१
अन्तर्यामिजगद्रूप सर्वज्ञ परमेश्वर । अज्ञातं किं तव श्रीश किं मामीहयसि प्रभो ॥४२
तथापि तव वक्ष्यामि यन्मे मनसि रोचते । बृथा पुत्रास्मि देवेश दैतेयैः परिपीडताः ॥४३

भगवान् की वन्दना करती हूँ। जिनके चरणकमल-रज द्वारा अपने मस्तक की रक्षा कर प्राणी परम सिद्धि को प्राप्त करते हैं, उन कमलापति की मैं वन्दना करती हूँ। जिसकी महिमा को ब्रह्मादिक देवतागण नहीं जानते, उन भक्त-संगी, भक्त के समीप में सर्वदा रहने वाले भगवान की मैं वन्दना करती हूँ। जो संसार-त्यागी, शान्तचित्त वालों के लिए करुणासागर रूप धारणकर उन्हें आत्म-सायुज्ज (मोक्ष) देते हैं उन संगशून्य देव को मैं नमस्कार करती हूँ। जो यज्ञाधीश, यज्ञ-कर्म रूप, यज्ञ कर्म में सर्वदा सन्निहित, यज्ञ-फल-दाता, यज्ञ कर्म का प्रबोधन करने वाले हैं, उन्हें मैं नमस्कार करती हूँ ॥१९-२८॥

जिनके नामोच्चारण मात्र से महान् पापी अजामिल ने भी परम-धाम प्राप्त किया उन लोक-साक्षी रूप भगवान् की मैं वन्दना करती हूँ। महादेव विष्णु-रूप हैं और जनार्दन शिवरूप हैं, इस प्रकार लोक के उपदेष्टा जगद्गुरु भगवान् को मैं नमस्कार करती हूँ। जिनके माया-फाँस में बद्ध होकर ब्रह्मादिक देवेश लोग भी परम तत्त्व को नहीं जानते हैं उन समस्त ब्रह्माण्ड-नायक की मैं वन्दना करती हूँ। हृदय-कमल में स्थित रहते हुए भी विमूढ़ प्राणियों को दूर ही मालूम पड़ने वाले अनुमान आदि प्रमाणों से अगोचर, ज्ञान-साक्षी रूप भगवान् की मैं वन्दना करती हूँ। जिनके मुख द्वारा ब्राह्मण, बाहू द्वारा क्षत्रिय, ऊरू से वैश्य एवं चरण से शूद्र, मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, मुख से अग्नि और इन्द्र, तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुए हैं उन ऋक् यजु, सामवेद स्वरूप, सातों स्वरों में व्याप्त तथा षडंग (व्याकरण आदि) रूपी आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ। तुम्हीं इन्द्र, वायु, सोम, ईशान, काल, अग्नि, निॠत, वरुण, दिवाकर; देवता, स्थावर, पिशाच, राक्षस, गिरि, सिद्ध, गन्धर्व, नदी, भूमि, सागर रूप हो। तुम्ही जगत् के ईश हो, तथा जहाँ कहीं रहते हो, सर्वोत्तम ही रहते हो। देव ! यह समस्त जगत् तुम्हारा ही रूप है। इसीलिए मैं सर्वदा तुम्हें नमस्कार करती हूँ ॥ अनाथ-नाथ सर्वज्ञ ! भूत, देवता, इन्द्र रूपधारी ! जनार्दन ! दैत्यों द्वारा पीड़ित मेरे पुत्रों की रक्षा करो। इस प्रकार देवताओं की माता ने भगवान् को बार-बार नमस्कार पूर्वक हाथ जोड़कर हर्ष के आँसुओं से स्तनों को भिगोती

तान्नहिंसितुमिच्छामि यतस्तेऽपि सुता मम । तानहत्वा श्रियं देहि मत्सुतेभ्यः सुरेश्वर ॥४४
इत्युक्तो देवदेवेशः पुनः प्रीतिमुपागतः । उवाच हर्षयन्विप्र देवमातरमादरात् ॥४५

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽस्मि देवि भद्रं ते भविष्यामि सुतोह्यहम् । यतःसपत्निपुत्रेषुवात्सल्यं देवि दुर्लभम् ॥४६
त्वया तु यत्कृतं स्तोत्रं तत्पठन्ति नरास्तु ये । तेषां संपद्वरा पुत्रा न हीयंते कदाचन ॥४७
स्वात्मजे वान्यपुत्रे वा यः समत्वेन वर्तते । न तस्य पुत्र शोकःस्यादेष धर्मः सनातनः ॥४८

अदितिरुवाच

नाहं वोढं क्षमा देव त्वामद्यं पुरुषं परम् । असंख्याताण्डरोमाणं सर्वेशं सर्वकारणम् ॥४९
यत्प्रभावं न जानंति श्रुतयः सर्वदेवताः । तमहं देवदेवेशं प्रधास्यामि कथं प्रभो ॥५०
अणोरणीयांसमजं परात्परतरं प्रभुम् । धारयामि कथ देव त्वामहं पुरुषोत्तमम् ॥५१
महापातकयुक्तोऽपि यन्नामस्मृतिमात्रतः । मुच्यते स कथं देवो ग्राम्येषु जनिमर्हति ॥५२
तथा सूकरमत्स्याद्या अवतारास्तव प्रभो । तथायमपि को वेद तव विश्वेश चेष्टितम् ॥५३
त्वत्पादपद्मप्रणता त्वन्नामस्मृतितत्परा । त्वामेव चिंतये देव यथेच्छसि तथा कुरु ॥५४

सनक उवाच

तयोक्त वचनं श्रुत्वा देवदेवो जनार्दनः । दत्त्वाभयं देवमातुरिदं वचनमब्रवीत् ॥५५

हुई निवेदन किया—देवेश ! सर्वादिकारण ! यदि मुझे आपने अनुग्रहीत किया तो मेरे पुत्रों को विघ्न-बाधा रहित लक्ष्मी प्रदान कीजिए। अन्तर्यामिन् ! जगद्रूप ! सर्वज्ञ ! परमेश्वर ! लक्ष्मीपते ! आपसे जगत् में क्या छिपा है ? प्रभो! मुझे कहने की आवश्यकता ही क्या है ? तथापि मेरी जो इच्छा है, वह मैं आपसे निवेदन करूँगी। देवाधीश ! मैं व्यर्थ ही पुत्रवती कहलाती हूँ। मेरे पुत्र दैत्यों द्वारा बहुत दुःखी हो रहे हैं। दैत्य भी मेरे पुत्र हैं, अतः मैं उन्हें मरवाना नहीं चाहती हूँ। सुरेश्वर ! उनका संहार किये बिना आप मेरे पुत्रों को राज्यलक्ष्मी दीजिए। विप्र ! इस प्रकार कहने पर अत्यन्त प्रसन्न हो देवाधिदेव भगवान् ने देव-माता को प्रसन्न करते हुए सादर कहा ॥२९-४५

श्री भगवान् ने कहा—देवि ! मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो। देवि ! सौत के पुत्रों पर तुम्हारी तरह वत्सलता प्रकट करना अति कठिन है। अतः मैं तुम्हारा पुत्र बनूंगा। जो लोग तुम्हारे किए हुए स्तोत्र का पाठ करेंगे उनके उत्तम धन और पुत्र का नाश कभी नहीं होगा। जो अपने पुत्रों के समान अन्य के पुत्रों में सम व्यवहार करता है उसे पुत्र-शोक नहीं होता यह सनातनधर्म है ॥४६-४८॥

अदिति ने कहा—देव ! मैं गर्भरूप में आपके भार को वहन करने में असमर्थ हूँ; क्योंकि आप परम आदिपुरुष असंख्य ब्रह्मांड को रोम-रोम में लिए हुए, समस्त चराचर के स्वामी और आदि कारण हैं। जिनके अतुलित प्रभाव को श्रुति तथा समस्त देवगण भी नहीं जानते हैं। प्रभो ! उन देवाधिदेव को मैं कैसे धारण कर सकती हूँ ? देव ! आप तो अणु से भी सूक्ष्म, उत्पत्ति रहित, परात्पर प्रभु पुरुषोत्तम हैं। मैं आपको कैसे धारण कर सकती हूँ ? जिनके नाम-स्मरण मात्र से महापातकी का भी उद्धार हो जाता है वह क्या ग्रामीण-जनों में उत्पन्न हो सकता है ? जिस प्रकार वराह, मत्स्य आदि अवतार आपके हुए हैं यह भी शायद उसी प्रकार का एक अवतार हो। विश्वेश ! आपकी इस चेष्टा को कौन जान सकता है ? मैं एकमात्र आपके चरण कमल की वन्दना, आपका नाम-स्मरण और आपका ध्यान करती रहती हूँ। आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करें ॥४९-५४॥

सनक ने कहा—देवाधीश भगवान् जनार्दन ने ऐसी बातें सुनकर देवताओं की माता को अभय प्रदान कर कहना प्रारम्भ किया ॥५५॥

श्रीभगवानुवाच

सत्यमुक्तं महाभागे त्वया नास्त्यत्र संशयः । तथापि श्रृणु वक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं शुभे ॥५६
रागद्वेषविहीना ये मद्भक्ता मत्परायणाः । वहंति सततं ते मां गतासूया अदांभिकाः ॥५७
परोपतापविमुखाः शिवभक्तिपरायणाः । मत्कथाश्रवणासक्ता वहंति सततं हि माम् ॥५८
पतिव्रताः पतिप्राणाः पतिभक्तिपरायणाः । वहंति सततं देवि स्त्रियोऽपित्यक्तमत्सराः ॥५९
मातापित्रोश्च शुश्रूषुः गुरुर्भक्तोऽतिथिप्रियः । हितकृद्ब्राह्मणानां यः स मां वहति सर्वदा ॥६०
पुण्यतीर्थरता नित्यं सत्संगनिरतास्तथा । लोकानुग्रहशीलाश्च सततं ते वहंति माम् ॥६१
परोपकारनिरताः परद्रव्यपराङ्मुखाः । नपुंसकाःपरस्त्रीषु ते वहंति च मां सदा ॥६२
तुलस्युपासनरताः सदा नामपरायणाः । गोरक्षणपरा येच सततं मां वहंति ते ॥६३
प्रतिग्रहनिवृत्ता ये परान्नविमुखास्तथा । अन्नोदकप्रदातारो वहंति सततं हि माम् ॥६४
त्वं तु देवि पतिप्राणा साध्वी भूतहितेरता । संप्राप्य पुत्रभावं ते साधयिष्यामि मनोरथम् ॥६५
इत्युक्त्वा देवदेवेशो ह्यदितिं देवमातरम् । दत्वा कण्ठगतां मालामभय च तिरोदधे ॥६६
सा तु संहृष्टमनसा देवसूर्दक्षनंदिनी । प्रणम्य कमलाकांतं पुनः स्वस्थानमाव्रजत् ॥६७

इति श्री वृहन्नारदीय पुराणतो गङ्गोत्पत्तौ द्वितीयोऽध्याय : ॥२

श्री भगवान् ने कहा—सौभाग्यवति ! तुमने सत्य कहा, इसमें कोई संशय नहीं है । तथापि हे कल्याणि ! मैं तुमसे अत्यन्त गुप्त रहस्य बता रहा हूँ, सुनो । राग-द्वेष हीन होकर जो मेरा भक्त मुझमें लीन रहता है, असूया और दम्भ से रहित होता है वह मुझे भली-भाँति धारण करने में समर्थ है । जो किसी प्रकार से औरों को सन्तप्त नहीं करता तथा भगवान् शंकर की भक्ति में परायण रहता है, मेरी कथाओं के सुनने में निमग्न रहता है, वह सर्वदा मुझे धारण कर सकता है । देवि ! पतिव्रता, पति-प्राणा, पति-भक्ति-परायणा स्त्री भी मत्सर रहित हो सर्वकाल मुझे धारण कर सकती है । जो माता-पिता की शुश्रूषा करने वाला, गुरु-भक्त, अतिथि-सेवी, ब्राह्मणों का हितैषी है, वह सर्वदा मुझे धारण करता है । जो प्राणी पवित्र-तीर्थ-निवास, संतसंग तथा जीवों पर अनुग्रह करते हैं, वे निरंतर मुझे धारण करते हैं । जो परोपकार में अनुरक्त, परद्रव्य से विमुख और पर-स्त्री के साथ नपुंसक के समान व्यवहार करते हैं, वे सदा मुझे धारण करते हैं । जो प्राणी तुलसी की उपासना में निरत, सदा मेरे नाम-परायण और गो-रक्षा में तत्पर रहते हैं, वे सर्वदा मुझे धारण करते हैं । जो दान-ग्रहण नहीं करते, दूसरे का अन्न नहीं खाते हैं किन्तु अन्न-जल का दान करते है वे सब काल मुझे धारण करते हैं । देवि ! तुम पति-प्राणा, पतिव्रता और जीवों को कल्याण देने वाली हो । अतः पुत्र होकर मैं तुम्हारे मनोरथ को सफल करूँगा । देवाधीश भगवान् इस प्रकार कहकर देव-माता अदिति को अभयदान और अपने कंठ की माला देकर अन्तर्हित हो गये । तदनन्तर देव-माता दक्षनन्दिनी ने प्रसन्नता से लक्ष्मीपति भगवान् को बार-बार नमस्कार कर अपने स्थान को प्रस्थान किया । ॥५६-६७॥

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गंगोत्पत्ति के प्रसंग में द्वितीय अध्याय समाप्त ॥२॥

तृतीयोऽध्याय

सनक उवाच

ततोऽदितिर्महाभागा सुप्रीता लोकवंदिता। असूत समये पुत्रं सर्वलोकनमस्कृतम् ।।१
शंखचक्रधरं शांतं चन्द्रमण्डलमध्यगम्। सुधाकलशदध्यन्नकरं वामनसंज्ञितम् ।।२
सहस्रादित्यसंकाशं व्याकोशकमलेक्षणाम्। सर्वाभरणसंयक्तं पीताम्बरधरं हरिम् ।।३
स्तुत्यं मुनिगणैर्युक्तं सर्वलोकैकनायकम्। आविर्भूतं हरिः ज्ञात्वा कश्यपो हर्षविह्वलः ।।४
प्रणम्य प्रांजलिर्भूत्वा स्तोतुं समुपचक्रमे ।।४

कश्यप उवाच

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमो नमस्तेऽखिलपालकाय।
नमोनमस्तेऽमरनायकाय नमो नमो दैत्यविनाशनाय ।।
नमो नमो भक्तजनप्रियाय नमोनमः सज्जनरंजिताय।
नमो नमो दुर्जननाशनाय नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय ।।६
नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय।
सशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ।।७
नमः पयोराशिनिवासनाय नमोऽस्तु सद्धृत्कमलस्थिताय ।।८
नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमोनमः पुण्यकथागताय।
नमो नमोऽर्केंदुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय ।।९
नमोऽस्तु यज्ञांगविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय।
नमो जगत्कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय ।।१०

सनक ने कहा—तदनन्तर सौभाग्यवती, लोक-पूज्या अदिति ने प्रेम-मग्न हो पूर्ण समय पर शंखचक्रधारी, शांत, चन्द्रमंडल के मध्य में विराजमान, हाथ में सुधा-कलश लिये, वामन नामक पुत्र को उत्पन्न किया। हजारों सूर्य के समान प्रकाशित, खिले हुए कमल के समान नेत्र वाले, सर्वाभूषण-विभूषित, पीताम्बर धारण किए, मुनि-गण-वन्दित, समस्त लोकाधिपति भगवान् को प्रगट समझकर कश्यप ने हर्ष-विह्वल हो हाथ जोड़कर नमस्कार पूर्वक स्तुति करना आरम्भ किया ।।१-४।।

कश्यप ने कहा—समस्त ब्रह्माण्ड के कारण! निखिल ब्रह्म-पालक! आपको नमस्कार है, देवाधीश, दैत्य-संहारकारी आपके लिए नमस्कार है। भक्तजनों के एकमात्र प्रिय, सज्जनों को अनुरंजित करने वाले आपको नमस्कार है। दुष्टों का विनाश करने वाले, समस्त जगत् के अधिष्ठातृ-देव आपको नमस्कार है। कारणवश वामन रूप धारण करने वाले, अतुलित पराक्रमशाली, नारायण भगवान् को नमस्कार है, धनुष, चक्र, खड्ग, गदाधारी पुरुषोत्तम भगवान् को नमस्कार है। क्षीर-सागर वासी, सज्जनों के हृदय-कमल में स्थित ईश्वर को नमस्कार है। सूर्य आदि प्रकाशक ज्योतिष्पुञ्जों के समान अमित प्रभा वाले पुण्य-चरित्र शाली आपको नमस्कार है। सूर्य-चन्द्र रूपी नेत्र वाले, यज्ञ-फलदाता आपको नमस्कार है। यज्ञरूपी अंगों से सुशोभित, सज्जन-वल्लभ आपको नमस्कार है। समस्त जगत् रूप

नमोऽस्तु ते दिव्यसुखप्रदाय नमो नमो भक्तमनोगताय ।
नमोऽस्तु ते ध्वांतविनाशकाय नमोऽस्तु ते मंदरधारकाय ॥११॥
नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय ।
नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलांतकाय ।
नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोस्तु ते नंदसुताग्रजाय ॥१२॥
नमस्ते कमलाकांत नमस्ते सुखदायिने । स्मृतार्ति नाशिने तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः ॥१३॥
यज्ञेश यज्ञविन्यास यज्ञविघ्नविनाशन ॥१४॥
यज्ञरूपयजद्रूप यज्ञांग त्वां यजाम्यहम् । इति स्तुतः स देवेशो वामनो लोकपावनः ॥१५॥
उवाच प्रहसन्हर्षं वर्धयन्कश्यपस्य सः ।

श्री भगवानुवाच

तात तुष्टोऽस्मि भद्रं ते भविष्यति सुरार्चित ॥१६॥
अजिरात्साधयिष्यामि निखिलं त्वन्मनोरथम् । अहं जन्मद्वये त्वयोः पुत्रतां गतः ॥१७॥
अस्मिन्जन्यपि तथा साधयाम्युत्तमं सुखम् । अत्रांतरे बलिर्दैत्यो दीर्घसत्रं महामखम् ॥१८॥
आरभे गुरुणा युक्तः काव्येन च मुनीश्वरैः । तस्मिन्मखे समाहूतो विष्णुर्लक्ष्मीसमन्वितः ॥२०॥
हविः स्वीकरणार्थाय ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः । प्रवृद्धैश्वर्यदैत्यस्य वर्तमाने समांकृतौ ॥२१॥
आमंत्र्य मातापितरौ स वटुर्वामनो ययौ । स्मितेन मोहयँल्लोकं वामनोभक्तवत्सलः ॥२२॥
हविर्भोक्तमिवायातो बलेः प्रत्यक्षतो हरिः । दुर्वृत्तो वा जडो वायं हितोऽपि वा ॥२३॥

कारण; शब्द आदि गुण से कारण, शब्द आदि गुण से रहित आपको नमस्कार है। मोक्ष-सुखप्रदाता, भक्तों के चित्त में सर्वदा वर्तमान आपको नमस्कार है। अज्ञान-विनाशक मंदराचलधारी भगवान् को नमस्कार है। यज्ञ-वराह, हिरण्याक्ष-विदारक आपको नमस्कार है। वामन-रूपधारी, परशुराम रूप धारणकर क्षत्रिय-कुल-विध्वंसक आपको नमस्कार है। रावण-मर्दनकारी नन्दसुत (बलभद्र) के अनुज आपको नमस्कार है। कमलापते! सुखदाता आपको नमस्कार है। स्मरणमात्र से दुःख नाश करने वाले आपको बार-बार नमस्कार है। यज्ञाधीश! यज्ञ-साधन-रूप! यज्ञ-विघ्न-विनाशकारी, यज्ञ रूप! यज्ञ-क्रियारूप! यज्ञांग रूप! आपकी मैं पूजा करता हूँ। इसप्रकार स्तुति करने पर देवाधीश लोक-पावनकारी भगवान् वामन मन्द-मन्द मुस्कराते एवं कश्यप का हर्ष बढ़ाते हुए बोले ॥५-१५॥

श्री भगवान् ने कहा—तात! मैं प्रसन्न हूँ, सुरवन्दित! तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारे संपूर्ण मनोरथों को मैं शीघ्र सफल करूँगा। इसी भाँति पिछले और दो जन्मों में भी मैं तुम दोनों का पुत्र हुआ था। उसी प्रकार इस जन्म में भी मैं उत्तम सुख प्रदान करूँगा। उधर ठीक उसी समय बलि नामक दैत्य ने अपने गुरु शुक्राचार्य और मुनियों के साथ सत्र नामक महान् यज्ञ का आरंभ किया। उस यज्ञ में ब्रह्मवादी ऋषियों ने हवि स्वीकार करने के लिए लक्ष्मी समेत विष्णु भगवान् का आवाहन किया। सर्वसाधनसमृद्ध एवं ऐश्वर्यशाली बलि के उस यज्ञ में भक्त-वत्सल भगवान् वामनरूप धारणकर अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्तकर मंद मुसुकान द्वारा जनों को मुग्ध करते हुए गए। बलि के दिये हुए हवि को प्रत्यक्ष खाने के लिए आये हुए विष्णु भगवान् के समान वामन का आगमन हुआ। दुराचरी, सदाचारी, जड़, परोपकारी कोई भी प्राणी भक्त हो तो भगवान् सर्वदा उसके अन्तःकरण में सन्निहित रहते हैं। ज्ञानरूपी नेत्र वाले ऋषियों ने आये हुए वामन भगवान् को देखते ही उन्हें

यो भक्तियुक्तः तस्यांतः सदा सन्निहितो हरिः। आयातं वामनं दृष्ट्वा ऋषयो ज्ञानचक्षुषः ॥२४
ज्ञात्वा नारायणं देवमुद्ययुः सभ्यसंयुताः। एतज्ज्ञात्वा दैत्यगुरुरेकांते बलिमब्रवीत् ॥२५
स्वसारमविचार्यैव खलाः कार्याणि कुर्वते।

शुक्र उवाच

भो भो दैत्यपते सौम्य ह्यपहर्ता तव श्रियम् ॥२६
विष्णुर्वामनरूपेण ह्यदितेः पुत्रतां गतः। तवाध्वरं स आयाति त्वया तस्यासुरेश्वर ॥२७
नकिंचिदपि दातव्यं मन्मतं श्रृणु पंडित। आत्मबुद्धिः सुखकरी गुरुबुद्धिर्विशेषतः ॥२८
परबुद्धिर्विनाशाय स्त्रीबुद्धिः प्रलयंकरी। शत्रूणां हितकृद्यस्तु स हन्तव्यो विशेषतः ॥२९

बलिरुवाच

एवं गुरो न वक्तव्यं धर्ममार्गविरोधतः। यदादत्ते स्वयं विष्णुः किमस्मादधिकं वरम् ॥३०
कुर्वंति विदुषो यज्ञान्विष्णुप्रीणनकारणात्। सचेत्साक्षाद्धविर्भोगी मत्तःकोऽप्यधिकोभुवि ॥३१
दरिद्रेणापि यत्किंचिद्दीयते विष्णवे गुरो। तदेव परमं दानं दत्तं भवति चाक्षयम् ॥३२
स्मृतोऽपि परया भक्त्या पुनाति पुरुषोत्तमः। येन केनाप्यर्चितश्चेद्ददाति परमां गतिम् ॥३३
हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपिस्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥३४
जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्। स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्ति दुर्लभम् ॥३५
गोविंदेति सदा ध्यायेद्यस्तु रागादिवर्जितः। स याति विष्णुभवनमिति प्राहुर्मनीषिणः ॥३६
अग्नौ वा ब्राह्मणे वापि हूयते यद्धविर्गुरो। हरिभक्त्या महाभाग तेन विष्णुः प्रसीदति ॥३७

नारायण-देव समझ कर सभासदों के साथ सादर खड़े होकर सत्कार किया। दुष्ट लोग अपनी शक्ति का विचार न कर के कार्य आरंभ करने को उद्यत हो जाते हैं। अतः दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ने एकांत में बलि से कहा—॥१६-२५॥

शुक्राचार्य ने कहाः---सरल स्वभाव वाले दैत्य-राज ! तुम्हारी राज्य-लक्ष्मी का अपहरण करने के लिए विष्णु वामनरूप धारणकर दिति के पुत्र हुए है और असुरराज ! वही तुम्हारे यज्ञ में आ रहे हैं। विद्वन् ! अतः मेरी बातें सुनो, उन्हें कुछ न देना। कारण कि अपनी बुद्धि से गुरु-बुद्धि विशेष सुखदायिनी होती है। शत्रु की अथवा दूसरे किसी तटस्थ व्यक्ति की बुद्धि विनाशकारी होती है। स्त्री-बुद्धि प्रलय करनेवाली होती है। शत्रु के हितैषी को तो अवश्य मारना चाहिए ।२६–२९॥

बलि ने कहा---गुरो ! इस प्रकार धर्म मार्ग विरोधी बातें न कहिए, क्योंकि यदि विष्णु भगवान् स्वयं मुझसे दान लेने के लिए आरहे हैं तो इससे सुन्दर और क्या हो सकता है। भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए विद्वान् लोग यज्ञ करते है, साक्षात् हवि भोक्ता भगवान् आ रहे हैं तो इस पृथ्वी पर मुझसे बढ़कर और कौन भाग्यवान् हो सकता है ? जो व्यक्ति गुरु रूप भगवान् विष्णु के निमित्त दरिद्रावस्था में भी जो कुछ अर्पण करता है, वही परमदान तथा अक्षय रहता है। उत्तम भक्त को स्मरण मात्र से पुरुषोत्तम भगवान् पवित्र करते हैं। यदि कोई अर्चना-वन्दना करता है तो परमगति प्रदान करते हैं। बुरी भावना द्वारा स्मृत होने पर भी भगवान पापों को नष्ट कर देते हैं। जिस प्रकार अनिच्छावस स्पर्श की हुई अग्नि भी जला देती है उसी प्रकार हरि नाम भी पापो का विनाशक है। जिसके जिह्वा के अग्रभाग पर सर्वदा 'हरि' यह दो अक्षर वर्तमान रहता है वह अन्त में विष्णु-भवन को जाता है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। गुरो ! अग्नि में या ब्राह्मण को जो हवि भक्तिपूर्वक

अहं तु हरितुष्ट्यर्थं करोम्यध्वरमुत्तमम् । स्वयमायाति चेद्विष्णुः कृतार्थोऽस्मि न संशयः ॥३८
एवं वदति दैत्येन्द्रे विष्णुर्वामनरूपधृक् । प्रविवेशाध्वरस्थानं हुतवन्हि मनोरमम् ॥३९
तं दृष्ट्वा कोटिसूर्याभं योग्यावयवसुंदरम् । वामनं सहसोत्थाय प्रत्यगृह्णात्कृतांजलिः ॥४०
दत्वासनं च प्रक्षाल्य पादौ वामनरूपिणम् । सकुटुम्बो वहन्मूर्ध्ना परमां मुदमाप्तवान् ॥४१
विष्णवेऽस्मै जगद्धाम्ने दत्वार्घ्यं विधिवद्बलिः । रोमांचिततनुर्भूत्वा हर्षाश्रुनयनोऽब्रवीत् ॥४२

बलिरुवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलो मखः । जीवितं सफलं मेऽद्य कृतार्थोऽस्मि न संशयः ॥४३
अमोघामृतवृष्टिर्मे समायातातिदुर्लभा । त्वदागमनमात्रेण ह्यनायासो महोत्सवः ॥४४
एते च ऋषयः सर्वे कृतार्था नात्र संशयः । यैः पूर्वं हि तपस्तप्तं तदद्य सफलं प्रभो ॥४५
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि न संशयः । तस्मात्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः ॥४६
त्वदाज्ञया त्वन्नियोगं साधयामीतिमन्मनः । अत्युत्साह समायुक्तं समाज्ञापय मां प्रभो ॥४७
एवमुक्तो दीक्षितेन प्रहसन्वामनोऽब्रवीत् । देहि मे तपसि स्थातुं भूमिं त्रिपदसंमिताम् ॥४८
एतच्छ्रुत्वा बलिः प्राह राज्यं याचितवान्नहि । ग्रामं वा नगरं चापि धनं वा किं कृतं त्वया ॥४९
तन्निशम्य बलिं प्राह विष्णुः सर्वशरीरभृत् । आसन्नभ्रष्टराज्यस्य वैराग्यं जनयन्निव ॥५०

श्रीभगवानुवाच

श्रृणु दैत्येन्द्र वक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतमं परम् । सर्वसंगविहीनानां किमर्थैः साध्यते वद ॥५१
अहं तु सर्वभूतानामंतर्यामीति भावय । मयि सर्वमिदं दैत्य किमन्यैः साध्यते वद ॥५२

दी जाती है, महाभाग ! उससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं । भगवान् विष्णु के प्रसन्नार्थ मैंने इस महान् यज्ञ का आयोजन किया है। यदि स्वयं विष्णु आ रहे हैं तो निस्संदेह मैं कृतार्थ हो गया । इस प्रकार दैत्य-राज बलि कह ही रहा था कि उसी समय वामन रूपधारी विष्णु ने हवन द्वारा प्रचलित अग्नि से सुशोभित उस यज्ञ मण्डप में प्रवेश किया । करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशवाले, उन योग्य अवयवों द्वारा अधिक सुन्दर वामन को देखकर सहसा खड़े होकर बलि ने हाथ जोड़कर स्वागत किया । आसन देकर वामन रूपी भगवान का चरण धोकर सपरिवार सिरपर उसे रखकर परम आनन्द प्राप्त किया । इस प्रकार राजा बलि ने जगद्धाम, भगवान् विष्णु की विविध पूजा कर अर्घ्य देकर रोमांचित शरीर हो नेत्र में हर्ष के आँसू भरकर उनसे कहा ॥३०-४२॥

बलि ने कहा—आज मेरा जन्म, यज्ञ और जीवन सफल हुआ, मैं कृतार्थ हुआ, इसमें सन्देह नहीं है । मेरे लिए अत्यन्त दुर्लभ अमृत की अमोघ वर्षा हुई है । एक मात्र आपके आने ही से महान् आनन्द हुआ । समस्त ऋषि लोग भी आज कृतार्थ हो गये । प्रभो ! जो मैंने पहले तप किया था वह आज सफल हो गया । मैं अवश्य कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया । इसलिए आपको बार-बार नमस्कार है, नमस्कार है । मेरे मन में यही भावना है कि आपके आज्ञानुसार ही मैं आपका कार्य करूँ । प्रभो ! अत्यंत उत्साहित देखकर मुझे निःसंकोच आज्ञा दीजिए । यज्ञ में दीक्षित बलि के इस प्रकार कहने पर हंसते हुए वामन भगवान ने कहा कि तप करने के लिए मुझे तीन पैर भूमि दान कीजिए । यह सुनकर बलि ने कहा—राज्य, ग्राम, नगर और धन आदि न माँगकर आपने यह क्या किया ? ऐसा सुनकर समस्तप्राणियों के शरीर में विद्यमान् रहनेवाले भगवान् विष्णु शीघ्र ही राज्यपद से च्युत होने वाले बलि को वैराग्य उत्पन्न करते हुए बोले ॥४३-५०॥

श्री भगवान् ने कहा—दैत्यराज ! अत्यंत गोपनीय बात मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो । जो समस्त (राग-द्वेष जनक) संग से रहित है, तुम्हीं कहो भला उसे धन आदि की क्या आवश्यकता है ? मुझे सर्वभूतों के अन्तर्यामी

रागद्वेषविहीनानां शांतानां त्यक्तमायिनाम् । नित्यानन्दस्वरूपाणां किमन्यैः साध्यते धनैः ॥५३
आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यतां शांतचेतसाम् । अभिन्नमात्मनः सर्वं को दाता दीयते च किम् ॥५४
पृथ्वीयं क्षत्रियवशा इति शास्त्रेषु निश्चितम् । तदाज्ञायां स्थिताः सर्वे लभंते परमं सुखम् ॥५५
दातव्यो मुनिभिश्चापि षष्ठांशो भूभुजे बले । महीयं ब्राह्मणानां तु दातव्या सर्वपालतः ॥५६
भूमिदानस्य महात्म्यं न भूतं न भविष्यति । परं निर्वाणमाप्नोति भूमिदो नात्र संशयः ॥५७
स्वल्पामपि महीं दत्वा श्रोत्रियायाहिताग्नये । ब्रह्मलोकमवाप्नोति पुनरावृत्ति दुर्लभम् ॥५८
भूमिदः सर्वदः प्रोक्तो भूमिदो मोक्षभाग्भवेत् । अतिदानं तु तज्ज्ञेयं सर्वपापप्रणाशनम् ॥५९
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः । दशहस्तां महीं दत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६०
सत्पात्रे भूमिदाता यः सर्वदानफलं लभेत् । भूमिदानसमं नान्यत्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥६१
द्विजाय वृत्तिहीनाय यः प्रदद्यान्महीं बले । तस्य पुण्यफलं वक्तुं न क्षमोऽब्दशतैरहम् ॥६२
सक्ताय देवपूजासु वृत्तिहीनाय दैत्यप । स्वल्पामपि महींदद्याद्यस्यविष्णुर्न संशयः ॥६३
इक्षुगोधूमतुवरीपूगवृक्षादिसंयुता । पृथिवी प्रदीयते येन स विष्णुर्नात्र संशयः ॥६४
वृत्तिहीनाय विप्राय दरिद्राय कुटुम्बिने । स्वल्पामपि महीं दत्वा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥६५
सक्ताय देवपूजासु विप्रायाढ़किकां महीम् । दत्वालभेत गंगायां त्रिरात्रस्नानजं फलम् ॥६६
विप्राय वृत्तिहीनाय सदाचाररताय च । द्रोणिकां पृथिवीं दत्वा यत्फलं लभते शृणु ॥६७
गंगातीर्थाश्वमेधानां शतानि विधिवन्नरः । कृत्वा यत्फल माप्नोति तदाप्नोति स पुष्कलम् ॥६८
ददाति खारिकां भूमिं दरिद्राय द्विजाय यः । तस्य पुण्यं प्रवक्ष्यामिवदतो मे निशामय ॥६९

जानो । दैत्य ! यह सब कुछ मुझमें है । अतः अन्य चीजों की क्या आवश्यकता है ? जो राग-द्वेषहीन शांत, निष्कपट और नित्यानन्द स्वरूप हैं, उन्हें इन धनों का क्या प्रयोजन है ? समस्त जीवों को आत्मवत् देखनेवाले, शांतचित्त, सबको अपने से अभिन्न समझनेवाले को दाता कौन है ? और भी, यह पृथ्वी तो क्षत्रिय के अधीन रहती है, ऐसा शास्त्रों का सिद्धांत है । इसलिए उसकी आज्ञा में स्थित रहकर सभी लोग परमसुख प्राप्त करते हैं । बलि ! महर्षियों को भी राजा के लिए छठवाँ भाग देना उचित है । अतः तुम्हें प्रयत्नपूर्वक ब्राह्मण के निमित्त पृथ्वी का दान करना चाहिए । भूमिदान का महत्त्व भूत और भविष्यत् काल में अपनी समता नहीं रखता । भूमि-दानी निःसंदेह परम सुख प्राप्त करते हैं । श्रोत्रिय अग्निहोत्री ब्राह्मण के लिए स्वल्पमात्र भूमिदान करने से जन्म-मरण रहित ब्रह्मलोक मिलता है । भूमि दानी सर्वदानी कहा गया है और वह मोक्ष का भागी होता है समस्त पापों के विनाश करने वाला महादान उसे जानना चाहिए । महापातकी अथवा समस्त पापों से युक्त हो वह दश हाथ पृथ्वी का दान करने से मुक्त हो जाता है । भूमिदानी सत्पात्र में भूमिदान कर समस्त दानों का फलभागी होता है । भूमिदान के तुल्य तीनों लोकों में कोई दान नहीं है । बलि ! वृत्तिहीन ब्राह्मण के निमित्त जो पृथ्वी दान करता है उसके पुण्य-फल का वर्णन मैं सैकड़ों वर्षों में नहीं कर सकता हूँ दैत्यपाल ! देवपूजा में निमग्न वृत्तिहीन ब्राह्मण को जो अल्पमात्र पृथ्वी दान करता है । उसके लिए वह लेनेवाला विष्णु के समान ही है ॥५१–६३॥

ईख, गेहूँ; अरहर, सुपारी आदि वृक्षों से पूर्ण पृथ्वी का दान जो करता है, वह निःसंदेह विष्णु रूप है । वृत्तिहीन, दरिद्र और कुटुम्बी ब्राह्मण को अल्पमात्र भी पृथ्वीदान करनेवाला विष्णु-सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है । देवपूजा में आसक्त ब्राह्मण के निमित्त आढ़क (१ अढ़ैया) अन्न उत्पन्न करने वाली मात्र पृथ्वी दान करने से गंगा में तीन दिन स्नान का फल प्राप्त होता है । वृत्तिहीन और सदाचारी ब्राह्मण को द्रोणमात्र (२० सेर अन्न उपजाने

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । विधाय जान्हवीतीरे यत्फलं तल्लभेद्ध्रुवम् ॥७०
भूमिदानं महादानमतिदानं प्रकीर्तितम् । सर्वपापप्रशमनमपवर्गफलप्रदम् ॥७१

इति श्री बृहन्नारदीयपुराणतो गंगोत्पत्तौ तृतीयोऽध्यायः ॥३

वाली) भूमि का दान देने से जो फल मिलता है, उसे सुनो । गंगातीर्थ में सौ अश्वमेध यज्ञ करने का जो फल प्राप्त होता है वह उसे मिलता है । दरिद्र ब्राह्मण को एक खारीमात्र (५१२ सेर अन्न उत्पन्न करनेवाली) भूमि दान करने से जो फल होता है उसे मैं कहता हूँ, सुनो। गंगाजी के किनारे हजार अश्वमेध सौ वाजपेय यज्ञ करने से जो फल मिलता है, वह उसे निश्चय प्राप्त होता है । भूमिदान महादान और अतिदान कहा गया है । कारण कि वह समस्त पापों का विनाशक और मोक्ष फल देनेवाला है ॥६४–७१॥

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गंगोत्पत्ति के प्रसंग में तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

⊙

चतुर्थोऽध्यायः

श्री भगवानुवाच

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि शृणु दैत्यकुलेश्वर । यच्छ्रुत्वा श्रद्धया युक्तो भूमिदानफलं लभेत् ॥१
आसीत्पुरा द्विजवरो ब्राह्मकल्पे महामतिः । दरिद्रोवृत्तिहीनश्च नाम्ना भद्रमतिर्बले ॥२
श्रुतानि सर्वशास्त्राणि तेन वेदविदानिशम् । श्रुतानि च पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥३
अभवंस्तस्य षट् पत्न्यःश्रुतिः सिंधुर्यशोवति । कामिनी मालिनी चैव शोभा चेति प्रकीर्तिताः ॥४
आसु पत्नीसु तस्यासन्चत्वारिंशच्छतद्वयम् । पुत्राणामसुरश्रेष्ठ सर्वेनित्यं बुभुक्षिताः ॥५
अकिंचनो भद्रमतिः क्षुधार्तानात्मजान्प्रियाः । पश्यन्स्वयं क्षुधार्तश्च विललापाकुलेंद्रियः ॥६
धिग्जन्म भाग्यरहितं धिग्जन्म धनवर्जितम् । धिग्जन्म धर्मरहितं धिग्जन्म ख्यातिवर्जितम् ॥७
नरस्य बह्वपत्यस्य धिग्जन्मैश्वर्यवर्जितम् । अहो गुणाः सौम्यता च विद्वत्ता जन्म सत्कुले ॥८
दारिद्र्याम्बुधिमग्नस्य सर्वमेतन्न शोभते । प्रियः पुत्राश्च पौत्राश्च बांधवा भ्रातरस्तथाः ॥९
शिष्याश्च सर्वमनुजास्त्यजन्त्यैश्वर्यवर्जितम् । चांडालो वा द्विजो वापि भाग्यवानेव पूज्यते ॥१०
दरिद्रः पुरुषो लोके शववल्लोकनिंदितः । अहो संपत्समायुक्तो निष्ठुरोवाप्यनिष्ठुरः ॥११
गुणहीनोऽपि गुणवान्मूर्खो वाप्यथ पंडितः । ऐश्वर्यगुणयुक्तश्चेत्पूज्य एव न संशयः ॥१२
अहो दरिद्रतादुःखं तत्राप्याशातिदुःखदा । आशाभिभूता पुरुषाः दुःखमश्नुवतेऽक्षयम् ॥१३
आशाया दासा ये दासास्ते सर्वलोकस्य । आशा दासी येषां तेषां दासायते लोकः ॥१४
माना हि महतां लोके धनमक्षयमुच्यते । तस्मिन्नाशाख्यरिपुणा माने नष्टे दरिद्रता ॥१५

दैत्य-कुलाधीश ! इसी विषय का एक इतिहास मैं कहता हूँ जिसे श्रद्धापूर्वक कहने से भूमि-दान का फल होता है । बलि ! पूर्वकाल में ब्रह्मकल्प में दरिद्र, वृत्तिहीन और महान् बुद्धिमान् भद्रमति नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था । उस वेदवेत्ता ने समस्त शास्त्र पुराण तथा धर्मशास्त्र का अध्ययन कर उसी के श्रवण-मननमें दिन-रात व्यतीत किया । उसके श्रुति, सिन्धु, यशोवती, कामिनी, मालिनी, और शोभा नाम की छः स्त्रियाँ थीं । असुरश्रेष्ठ ! उन स्त्रियों से उसे दो सौ चालीस पुत्र हुए वे सर्वदा भूखे रहते थे । अकिंचन भद्रमति अपने पुत्रों और स्त्रियों को क्षुधा-पीड़ित देखकर स्वयं भी बुभुक्षित रह व्याकुल हो एक दिन विलाप करने लगा कि भाग्य-हीन का जन्म व्यर्थ है । धर्मरहित के जन्म को धिक्कार है । प्रशंसाहीन का जन्म व्यर्थ है । अधिक सन्तानवाले मनुष्य के ऐश्वर्यहीन जन्म को धिक्कार है । अहो ! आश्चर्य है कि दरिद्रता रूपी सागर में निमग्न प्राणी का गुण सरलता, विद्वत्ता, उत्तम कुल में जन्म आदि सब कुछ सुशोभित नहीं होता । उसे ऐश्वर्यहीन समझकर उसकी स्त्रियाँ, लड़के, पौत्र, बन्धुगण, भाई लोग, शिष्य लोग और समस्त मनुष्य छोड़ देते हैं । चांडाल या द्विज कोई भी हो भाग्यवान ही पूज्य होता है । दरिद्र पुरुष मृतक की भाँति संसार में त्याज्य होता है। आश्चर्य की बात है कि ऐश्वर्यशाली पुरुष निष्ठुर होते हुए भी सौम्य ही कहे जाते हैं । ऐश्वर्ययुक्त होने पर गुणहीन गुणवान एवं मूर्ख पंडित होकर पूज्य होता है, इसमें सन्देह नहीं । अहो ! दरिद्रता महान् दुःख है । पर यहाँ आशा और भी अधिक दुःखदायी कही गई है । क्योंकि आशाबद्ध पुरुष अमित दुःख भोगते हैं । आशा का दास संसार का दास कहा गया है, किन्तु जिसकी आशा ही दासी होती है, उसका सारा संसार सेवक होता है । संसार में एकमात्र मान ही बड़े लोगों का अक्षय धन कहा गया है । आशा रूपी शत्रु द्वारा मान नष्ट होने पर प्राणी दरिद्रता के अधीन हो जाता है ।'१–१५॥

सर्वशास्त्रास्त्रवेत्तापि दरिद्रो भाति मूर्खवत् । नैष्किचन्यमहाग्राहग्रस्तानां को विमोचकः ॥१६
अहो दुःखमहो दुःखमहो दुःखदरिद्रता । तत्रापि पुत्रभार्याणां बाहुल्यमतिदुःखदम् ॥१७
एवमुक्त्वा भद्रमतिः सर्वशास्त्रार्थपारगः । अन्यैश्वर्यप्रदं धर्मं मनसाचिन्तयत्तदा ॥१८
भूमिदानं विनिश्चित्य सर्वदानोत्तमोत्तमम् । दानेन योऽनुमंताति सएव कृतवान्पुरा ॥१६
प्रापकं परमं धर्मं सर्वकामफलप्रदम् । दानानामुत्तमं दानं भूदानं परिकीर्तितम् ॥२०
यद्दत्वा समवाप्नोति यद्यदिष्टतमं नरः । इति निश्चित्य मतिमान्धीरोभद्रमतिर्बले ॥२१
कौशाम्बीनामनगरीं कलत्रापत्ययुग्ययौ । सुघोषनामविप्रेन्द्रं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥२२
गत्वा याचितवान्भूमिं पंचहस्तायतां बले । सुघोषो धर्मनिरतस्तं निरीक्ष्य कुटुम्बिनम् ॥२३
मनसा प्रीयमाणेन समभ्यर्च्येदमब्रवीत् । कृतार्थोऽहं भद्रमते सफलं मम जन्म च ॥२४
मत्कुलं पावनं जातं त्वदनुग्रहतो द्विज । इत्युक्त्वा तं समभ्यर्च्य सुघोषो धर्मतत्परः ॥२५
पंचहस्तमितां भूमिं ददौ तस्मै महामतिः । पृथिवी वैष्णवी पुण्या पृथिवी विष्णुपालिता ॥२६
पृथिव्यास्तु प्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः । मंत्रेणानेन दैत्येन्द्र सुघोषस्तं द्विजोत्तमम् ॥२७
विष्णुबुद्ध्या समभ्यर्च्य तावतीं पृथिवीं ददौ । सोऽपि भद्रमतिविप्रो धीमता याचितां भुवम् ॥२८
दत्तवान्हारभक्ताय श्रोत्रियाय कुटुंबिने । सुघोषो भूमिदानेन कोटिवंशसमन्वितः ॥२६
प्रपेदे विष्णुभवनं यत्र गत्वा न शोचति । बले भद्रमतिश्चापि यतः प्रार्थितवाञ्छ्रियम् ॥३०
स्थितवान्विष्णुभवने सकुटुम्बोयुगायुतम् । तत्रैव ब्रह्मसदने स्थित्वा कोटियुगायुतम् ॥३१
ऐंद्रं पदं समासाद्य स्थितवान्पंचकल्पकम् । ततो भुवं समासाद्य सर्वैश्वर्यसमन्वितः ॥३२
जातिस्मरो महाभागो बुभुजे भोगमुत्तमम् । ततो भद्रमतिर्वैत्य निष्कामो विष्णुतत्परः ॥३३
पृथिवीं वृत्तिहीनेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः प्रदत्तवान् । तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा तस्वैश्वर्यमनुत्तमम् ॥३४

संपूर्ण शास्त्र-वेत्ता होकर भी प्राणी दरिद्र होने पर मूर्ख के तुल्य हो जाता है । दरिद्र रूपी महाग्राह ग्रस्त प्राणी को मुक्त करने वाला कौन है ? अहो दरिद्रता का दुःख महान दुःख है, महान् दुःख है । किन्तु यदि उस अवस्था में पुत्र और स्त्री की अधिकता हुई तो वह महान् दुःख और भी अकथनीय हो जाता है। इस प्रकार कहकर सर्व-शास्त्र-कुशल भद्रमति अपने मन में ऐश्वर्यदायक किसी अन्यधर्म का चिंतन करने लगा । भूमिदान को सर्वदान से उत्तम निश्चय कर अनुमोदन किया और उसी ने सर्वप्रथम भूमिदान किया भी है । यह दान अन्यधर्मजनित फलों को देने वाला तथा समस्त मनोरथों को सफल करता है । इसीलिये भूमिदान संपूर्णदानों में श्रेष्ठ कहा गया है । मनुष्य इसी दान के बल से अपने अभीष्ट को प्राप्त करता है : बलि ! धीर बुद्धिमान भद्रमति ने ऐसा निश्चय कर अपने पुत्र, स्त्रियों समेत कौशाम्बी नामक नगरी को प्रस्थित हुआ और वहाँ जाकर परम ऐश्वर्यशाली सुघोष नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण से पांच हाथ भूमि की याचना की। बलि ! धर्मशील सुघोष ने उसे कुटुम्बी देखकर प्रसन्नचित्त हो यथोचित पूजन किया और कहा––भद्रमति ! मैं कृतार्थ हो गया, मेरा जन्म आज सफल हुआ। द्विज ! तुम्हारे अनुग्रह से मेरा कुल पवित्र हो गया। इस प्रकार कहकर धार्मिक विद्वान सुघोष ने यथोचित सत्कार के अनन्तर उसे पांच हाथ भूमि का दान दिया । "यह पृथिवी विष्णु भगवान् की है, पवित्र है और उनसे पालित है। अतः इस भूमिदान से जनार्दन भगवान मेरे लिये प्रसन्न हों ।" इस मंत्र को पढ़ते हुये सुघोष ने विष्णु-बुद्धि से उस श्रेष्ठ ब्राह्मण की पूजाकर उतनी पृथिवी का दान किया । भद्रमति ने भी किसी हरि भक्त, कुटुम्बी, वैदिक ब्राह्मण के याचना करने पर उस भूमि को उसे दे दिया । उस भूमि-दान द्वारा सुघोष ने अपने

कोटिवंशसमेतस्य ददौ मोक्षमनुत्तमम् । तस्माद्दैत्यपते मह्य सर्वधर्मपरायणः ।।३५
तपश्चरिष्ये मोक्षाय देहि मे त्रिपदां महीम् । वैरोचनस्ततो हृष्टः कलशं जलपूरितम् ।।३६
आददे पृथिवीं दातुं वर्णिने वामनाय सः । विष्णुः सर्वगतो ज्ञाता जलधाराविरोधिनम् ।।३७
काव्यं हस्तस्थदर्भाग्रं तच्छरे संन्यवेशयत् । दर्भाग्रेऽभून्महाशस्त्रं कोटिसूर्यसमप्रभम् ।।३८
अमोघं ब्राह्ममत्युग्रं काव्याक्षिग्रासलोलुपम् । आयाय भार्गवसुरानसुरानेकचक्षुषा ।।३९
पश्येति वांदिदेशे च दर्भाग्रं शस्त्रसन्निभम् । बलिर्ददौ महाविष्णोर्महीं प्रपदसंमिताम् ।।४०
ववृधे सोऽपि विश्वात्मा आब्रह्मभुवनं तदा । अमिमीत महीं द्वाभ्यां पद्भ्यां विश्वतनुर्हरिः ।।४१
स आब्रह्मकटाहांतपदान्येतानि सप्रभः । पादांगुष्ठाग्रनिर्भिन्नंब्रह्मांडबिभिदे द्विधा ।।४२
तद्वारा वाह्यसलिलं बहुधारं समागतम् । धौतविष्णुपदं तोयं निर्मलं लोकपावनम् ।।४३
अजांडवाह्यनिलयं धारारूपमवर्तत । तज्जलं पावनं श्रेष्ठं ब्रह्मादीन्पावयत्सुरान् ।।४४
सप्तर्षिसेवितं चैव न्यपतन्मेरुमूर्द्धनि । एतद्दृष्टव दद्भुतं कर्म ब्रह्माद्या देवतागणः ।।४५
ऋषयो मनवश्चैव ह्यस्तुवन्हर्षविह्वलाः ।

देवा ऊचुः

नमः परेशाय परात्मरूपिणे परात्परयापररूपधारिणे ।।४६

करोड़ों वशों समेत जहाँ जाने पर कोई शोक नहीं होता उस विष्णु-भवन को प्राप्त किया। बलि ! भद्रमति उस लक्ष्मी-याचना द्वारा अपने समस्त परिवार समेत दश हजार युग विष्णुलोक और करोड़ों युग तक ब्रह्म-लोक में रहकर अनन्तर पांच कल्प इन्द्र-पद पर स्थित रहकर पुनः समस्त ऐश्वर्य सहित पृथिवी में आकर जातिस्मर[1] एवं कल्याण युक्त होकर उत्तम भोग का अनुभव किया । तदनन्तर दैत्य ! उस भद्रमति ने निष्काम विष्णु की आराधना करते हुये किसी वृत्ति-हीन ब्राह्मण के निमित्त उस पृथिवी का दान किया ; जिससे विष्णु भगवान ने प्रसन्न होकर करोड़ों वंशों समेत उसे अलभ्य मोक्षसुख को प्रदान किया। अतः दैत्यराज ! सर्वधर्मपरायण। तप करने के लिये मुझे तीन पैर भूमि दो। अनन्तर विरोचनपुत्र बलि ने प्रसन्न हो ब्रह्मचारी वामन भगवान के निमित्त पृथिवी दान के लिये जल-पूर्ण कलश को हाथों में ग्रहण किया । सर्वव्यापक भगवान ने कलश की जलधारा का अवरोध करने वाले शुक्राचार्य को देखकर हाथ में लिये हुये कुश के अग्रभाग को उस कलश में प्रविष्ट कर दिया ।।१६-३८।।

करोड़ों सूर्य के समान कान्ति वाले, अमोघ, प्रचण्ड, शुक्राचार्य के एक नेत्र के विनाशक उस महान शस्त्र के निमित्त शुक्राचार्य एक नेत्र (काना) हो जाने पर देव-राक्षसों से कहने लगे कि शस्त्र के समान प्रभावशाली कुशाग्र को तो देखो, कितना तीक्ष्ण है। ऐसा कह ही रहे थे कि इसी बीच उधर बलि ने विष्णु भगवान को पृथिवी दान कर दिया । विश्वात्मा भगवान यहाँ से ब्रह्मलोक के समान बढ़ गये और विराट् रूप धारणकर उस दी हुई समस्त पृथिवी को अपने दो पैरों से नाप लिया। उनके उठाये हुये चरणअंगुष्ठ द्वारा स्पर्श होते ही ब्रह्माण्ड विदीर्ण होकर दो भागों में विभक्त हो गया और विष्णु भगवान के चरण को प्रक्षालित करता हुआ लोकपावनकारी वह जल अनेक धाराओं में बाहर बह निकला और ब्रह्मलोक में आकर ब्रह्मादिक देवताओं को पवित्र करते हुये सप्तर्षि के निवास भूत मेरु के शिखर पर गिरा। इस अद्भुत कर्म को देखकर देवता लोग, ऋषि, मनु आदि सभी हर्षनिर्भर-चित्त हो स्तुति करने लगे ।।३९-४५।।

देवताओं ने कहा उस परमाधीश, परात्मरूपी, परात्पर, अपररूपधारी को नमस्कार है। गुह्य बह्मविचार शील, अव्याहत-कर्मशील को नमस्कार है, पराधीश ! परमानंद। परात्पर ! परमात्मन् ! सर्वात्मा, जगन्मूर्त्ति, अनुमानादि समस्त प्रमाणों से परे आपको नमस्कार है। विश्व-द्रष्टा विश्व-बाहु भगवान् को नमस्कार है। विश्व-शिर, विश्व

---

१ पूर्व जन्म का स्मरण करने वाला है ।

ब्रह्मात्मने ब्रह्मरतात्मबुद्धये नमोऽस्तुतेऽव्याहतकर्मशालिने ।
परेश परमानंद परमात्मन्परात्पर ।।४७
सर्वात्मने जगन्मूर्ते प्रमाणातीत ते नमः । विश्वतश्चक्षुषे तुभ्यं विश्वतोबाहवे नमः ।।४८
विश्वतः शिरसे चैव विश्वतो गतये नमः । एवं स्तुतो महाविष्णुर्ब्रह्माद्यैः स्वर्दिवौकसाम् ।।४९
दत्त्वाभयं च मुमुदे देवदेवः सनातनः । विरोचनात्मजं दैत्यं पदैकार्थे बबंध ह ।।५०
ततः प्रपन्नं तु बलिं ज्ञात्वा चास्मै रसातलम् । ददौ तद्द्वारपालश्च भक्तवश्यो बभूव ह ।।५१

नारद उवाच

रसातले महाविष्णुर्विरोचनसुतस्य वै । किं भोज्यं कल्पयामास घोरे सर्पभयाकुले ।।५२

सनक उवाच

अमंत्रितं हविर्यत्तु हूयते जातवेदसि । अपात्रे दीयते यच्च तद्घोरं भोगसाधनम् ।।५३
हुतं हविरशुचिना दत्तं सत्कर्म यत्कृतम् । तत्सर्वं तव भोगार्हमधःपातफलप्रदम् ।।५४
एवं रसातलं विष्णुर्बलये सासुराय तु । दत्त्वाभयं च सर्वेषां सुराणां त्रिदिवं ददौ ।।५५
पूज्यमानोऽमरगणैः स्तूयमानो महर्षिभिः । गंधर्वैर्गीयमानश्च पुनर्वामनतां गतः ।।५६
एतद्दृष्ट्वा महत्कर्म मुनयो ब्रह्मवादिनः । परस्परं स्मितमुखाः प्रणेमुः पुरुषोत्तमम् ।।५७
सर्वभूतात्मको विष्णुर्वामनत्वमुपागतः । मोहयन्निखिलं लोकं प्रपेदे तपसे-वनम् ।।५८
एवं प्रभावा सा देवी गंगा विष्णुपदोद्भवा । यस्याः स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ।।५९
इदं तु गंगामाहात्म्यं यः पठेच्छृणुयादपि । देवालये नदीतीरे सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।।६०

इति श्री वृहन्नारदीयपुराणतो गंगोत्पत्तौ चतुर्थोऽध्यायः ।।४

व्यापक आप को नमस्कार है। इस प्रकार ब्रह्मादिक देवताओं द्वारा स्तुति करने पर महाविष्णु भगवान् ने देवताओं को स्वर्ग प्रदान किया। इस प्रकार देव-देवाधीश, सनातन भगवान् ने देवताओं को अभयदान कर विरोचन-पुत्र बलि को एक पैर भूमि के कारण बांध लिया। अनन्तर भक्तों के अधीन रहने वाले भगवान् ने प्रणत देखकर बलि को रसातल का राज्य प्रदानकर स्वयं उसके द्वारपाल हुए ।।४६-५१।।

नारद ने कहा—घोर, सर्प-भय भीषण उस रसातल में महाविष्णु ने विरोचन-सुत बलि के लिये भोजन-विधान की क्या कल्पना की ?

सनक ने कहा—जो हवि बिना मंत्र पढ़े ही अग्नि में छोड़ी जाती है और जो दान अपात्र को दिया जाता है, यही उसे भोजन रूप में मिलता है। अपवित्र होकर जो प्राणी हवन करता है, उसके किये हुए समस्त सत्कर्म उसके भोग के लिये पाताल पहुँचते हैं। इस प्रकार विष्णुभगवान् ने निखिल राक्षसों समेत बलि को रसातल तथा देवताओं को अभय प्रदानकर स्वर्ग को प्रस्थान किया। तदनन्तर देवताओं के पूजा करने पर, महर्षियों के स्तुति करने पर गंधर्वों के गान करने पर भगवान् ने पुनः वामन रूप धारण किया। ब्रह्मवादी मुनिगण इस महान् कर्म को देखकर परस्पर मन्द-हास करते हुये पूरुषोत्तम को नमस्कार करने लगे। सर्वभूतात्मा विष्णु ने वामन रूप धारणकर समस्त लोकों को मुग्ध करते हुये तप के लिये वन में प्रस्थान किया। विष्णु के चरण से उत्पन्न प्रभावशाली गंगा की उत्पत्ति इस प्रकार हुई जिसके स्मरणमात्र से प्राणी सर्व-पातक मुक्त हो जाते हैं। इस गंगा-माहात्म को देवालय या नदी के किनारे जो पढते या सुनते हैं, उन्हें अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ।।५०-६०।।

श्री बृहन्नारदीय पुराण से गंगोत्पत्ति के प्रसंग में चतुर्थ अध्याय समाप्त ।।४।।

पञ्चमोऽध्यायः

सनक उवाच

गंगाजलकणेनापि यः सिक्तो मनुजोत्तमः । सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम् ॥१
यद्बिन्दुसेवनादेव सगरान्वयसंभवः । विसृज्य राक्षसं भावं संप्राप्तः परमं पदम् ॥२

नारद उवाच

कोऽसौ राक्षसभावाद्धि मोचितः सगरान्वये । सगरः को मुनिश्रेष्ठ तन्ममाख्यातुर्हसि ॥३

सनक उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल गंगामाहात्म्यमुत्तमम् । यज्जलस्पर्शमात्रेण पावितं सागरं कुलम् ॥४
गतं विष्णुपदं विप्र सर्वलोकोत्तमोत्तमम् । आसीद्रविकुले जातो बाहुर्नामवृकात्मजः ॥५
बुभुजे पृथिवीं सर्वां धर्मतो धर्मतत्परः । ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चान्ये च जंतवः ॥६
स्थापिताः स्वस्वधर्मेषु तेन बाहुर्विशांपतिः । अश्वमेधैरियाजासौ सप्तद्वीपेषु सप्तभिः ॥७
अतर्पयद्भूमिदेवान् गोभूस्वर्णांशुकादिभिः । अशासन्नीतिशास्त्रेण यथेष्टं परिपन्थिनः ॥८
मेने कृतार्थमात्मानमन्यातपनिवारणम् । चन्दनानि मनोज्ञानि वलिं यत्सर्वदा जनाः ॥९
भूषिता भूषणैर्दिव्यैस्तद्राष्ट्रे सुखिनोमुने । अकृष्टपच्या पृथिवी फलपुष्पसमन्विता ॥१०
ववर्ष भूमौ देवेन्द्रः काले काले मुनीश्वर । अधर्मनिरता पापे प्रजा धर्मेण रक्षिता ॥११
एकदा तस्य भूपस्य सर्वसंपद्विनाशकृत । अहंकारो महाञ्जज्ञे सासूयो लोपहेतुकः ॥१२
अहं राजा समस्तानां लोकानां पालको बली । कर्त्ता महाक्रतूनां च मत्तः पूज्योऽस्ति कोऽपरः ॥१३
अहं विचक्षणः श्रीमाञ्जिताः सर्वे मयारयः । वेदवेदांगतत्वज्ञो नीतिशास्त्रविशारदः ॥१४

सनक ने कहा—गंगाजल के एक बिन्दु मात्र से जो मनुष्य अभिषिक्त होता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर परमपद प्राप्त करता है । जिसके बिन्दु मात्र के सेवन करने पर सगरवंश के लोगो ने राक्षस शरीर का त्यागकर परमपद प्राप्त किया ॥१-२॥

नारद ने कहा—सगर के कुल में राक्षस शरीर से कौन मुक्त हुआ था ? मुनिश्रेष्ठ ? वे सगर कौन थे, यह सब मुझे सुनाइये ।

सनक ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! जिसके जल-स्पर्श मात्र से सगर का कुल पवित्र हो गया था उस गंगा के माहात्म्य को मैं कह रहा हूँ, सुनो । विप्र ! राजा वृक के समस्तलोकोत्तम, विष्णुपद को प्राप्त होने पर बाहु नामक राजा सूर्य-कुल में उत्पन्न हुये । धर्म में तत्पर रहकर उन्होंने समस्त पृथ्वी का भोग करते हुए ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों तथा अन्य प्राणियों को भी अपने-अपने धर्म में स्थित रखा और उन्हीं राजा बाहु ने सातों द्वीपों में सात अश्वमेघ यज्ञों का अनुष्ठान भी किया । गौ, भूमि, सुवर्ण और उत्तम वस्त्रों द्वारा ब्राह्मणों को प्रसन्न करते हुये नीतिशास्त्रा-नुसार शत्रुओं के ऊपर शासन किया । शत्रु-मान को नष्ट करने वाले अपने आत्मा को उन्होंने कृतार्थ समझा । वे मनोज्ञ चन्दन ही कर रूप में लेते थे । मुनीश ! उनकी प्रजायें दिव्य-भूषणों से भूषित होकर सर्वदा सुखी रहती थी । बिना जोते बोये पृथिवी सर्वकाल फल-पुष्पों से पूर्ण रहती थी । मुनीश्वर ! समय-समय पर देवराज भूमि पर वर्षा करते थे, अधम-शून्य प्रजायें धर्म से रक्षित थीं । एक बार सर्वसम्पत्ति-विनाशकारी, लोपहेतु निन्दासमेत महान् अभिमान उस राजा के उत्पन्न हुआ । समस्त लोकों का

अजेयोऽव्याहृतैश्वर्यो मत्तः कोऽन्योऽधिकोभुवि । अहंकारपरस्यैवं जातासूया परेष्वपि ।।१५
असूयातोऽभवत्कामस्तस्य राज्ञो मुनीश्वर । एषु स्थितेषु तु नरोविनाशं यात्यसंशयम् ।।१६
यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता । एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ।।१७
तस्यासूया तु महती जाता लोकविरोधिनी । स्वदेहनाशिनी विप्र सर्वसंपद्विनाशिनी ।।१८
असूयाविष्टमनसि यदि संपत्प्रवर्तते । तुषाग्नि वायुसंयोगमिव जानीहि सुव्रत ।।१९
असूयोपेतमनसां दंभाचारवतां तथा । परुषोक्तिरतानां च सुखं नेह परत्र च ।।२०
असूयाविष्टचित्तानां सदानिष्ठुरभाषिणाम् । प्रिया वा तनया वापि बांधवा अप्यरातयः ।।२१
मनोऽभिलाषं कुरुते यः समीक्ष्य परस्त्रियम् । स स्वसंपद्विनाशाय कुठारो नात्र संशयः ।।२२
यः स्वश्रेयोविनाशाय कुर्याद्यत्नंनरो मुने । सर्वेषां श्रेयसं दृष्ट्वा स कुर्यान्मत्सरं कुधी ।।२३
मित्रापत्यगृहक्षेत्रधनधान्यपशुष्वपि । हानिमिच्छन्नरः कुर्यादसूयां सततं द्विज ।।२४
अथ तस्याविनीतस्य ह्यसूयाविष्टचेतसः । हैहयास्तालजंघाश्च बलिनोऽरातयोऽभवन् ।।२५
यस्यानुकुलोलक्ष्मीशः सौभाग्यं तस्य बर्द्धते । स एव विमुखो यस्य सौभाग्यं तस्य हीयते ।।२६
तावत्पुत्राश्च पौत्राश्च धनधान्यगृहादयः । यावदीक्षेत लक्ष्मीशः कृपापांगेन नारद ।।२७
अपि मूर्खोऽधबधिरजडाः शूरा विवेकिनः । श्लाघ्या भवंति विप्रेंद्र प्रेक्षिता माधवेन ये ।।२८
सौभाग्यं तस्य हीयेत यस्यासूयादिलांछनम् । जायते नात्र संदेहो जंतुद्वेषे विशेषतः ।।२९

राजा, पालक तथा महान् यज्ञों का कर्ता मैं ही हूँ। मेरे समान बली और पूज्य दूसरा कौन है ? विद्वान्, श्रीमान् मैं ही हूँ, समस्त शत्रुओं को मैंने ही जीता है, वेद-वेदांग का तत्त्व जानने वाला, नीतिशास्त्र कुशल मैं ही हूँ। मैं अजय हूँ, इस पृथिवी पर मेरे समान सुरक्षित समृद्धिशाली दूसरा कौन है ? इस प्रकार उस अभिमानी का अभिमान दूसरों के निमित्त उत्पन्न हुआ। मुनीश्वर ! उस राजा के हृदय में निन्दा-जनित काम उत्पन्न हुआ। ऐसी स्थिति में मनुष्य का निःसन्देह विनाश हो जाता है। युवावस्था, धन ऐश्वर्य और अज्ञान इनमें से एक एक ही महान् अनर्थकारी हैं और जहाँ ये सभी वर्तमान है वहाँ की दुरवस्था का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? विप्र ! इस प्रकार प्रजाओं के प्रतिकूल, स्वदेहनाशकारिणी और समस्त संपत्तिविनाशिनी ईर्ष्या उस राजा के मन में उत्पन्न हुई। कल्याण मूर्ति ! ब्रह्मचारिन् । यदि परनिन्दक को धन मिल जाता है तो उसे भूसी के अग्नि वायु के साथ के समान जानो। पर निन्दक, दम्भी और कठोर भाषण करने वाले लोगों को इस लोक में तथा परलोक में सुख कहीं नहीं मिलता है। ईर्ष्यालु, निष्ठुरभाषी प्राणियों के स्त्री, पुत्र, बांधव सभी शत्रु हो जाते हैं। जो परस्त्री को देखकर अपने मन में अभिलाषा प्रगट करते हैं वे अपनी संपत्ति के नाश होने में निःसन्देह कुठार के समान हैं ।।३-२२।।

जो प्राणी दूसरों के कल्याण को देखकर द्वेष करते हैं मुने ! वे अपने कल्याण के नाश करने के लिए महान् प्रयत्न करते हैं और मूर्ख हैं—ऐसा समझना चाहिए। ब्राह्मण ! जो परनिन्दक हैं, वह अपने मित्र, पुत्र, गृह, खेत, धन धान्य और पशुओं की निःसन्देह हानि चाहता है। तदनन्तर उस परनिन्दक, तथा उद्दण्ड राजा के हैहय और तालजंघ नामक दो महान शत्रु उत्पन्न हुए। लक्ष्मीपति भगवान् जिसके अनुकूल होते हैं उसका सौभाग्य बढ़ता है, और जिसके प्रतिकुल होते हैं उसका सौभाग्य क्षीण होता है। नारद ! लक्ष्मीपति भगवान् अपनी कृपाकोर से जब तक देखते हैं पुत्र, पौत्र,, धन, धान्य और गृहादिक की स्थिति तथा उनके द्वारा सुख तभी तक प्राप्त होता है। ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मूर्ख, अंधा, बधिर, जड़, शूर' विवेकी कोई भी हो लक्ष्मीपति के देखने से ही प्रशंशापात्र होता है। परनिन्दक पुरुष का सौभाग्य प्रतिदिन क्षीण होता है, जीवों से द्वेष करने वाले का तो निःसन्देह विशेष हानि होती है। मुनिश्रेष्ठ ! जो पुरुष निरन्तर

सततं यस्य कस्यापि यो द्वेषं कुरुते नरः। तस्य सर्वाणि नश्यंति श्रेयांसि मुनिसत्तम ॥३०
असूया वर्तते यस्य तस्य विष्णुः पराङ्मुखः। धनधान्यमहीसंपद्विनश्यति ततो ध्रुवम् ॥३१
विवेकं हंत्यहंकारस्त्वविवेकात्तु जीविनाम्। आपदः संभवंत्येवेत्यहंकारं त्यजेत्ततः ॥३२
अहंकारो भवेद्यस्य तस्य नाशोऽतिवेगतः। असूयाविष्टमनसस्तस्य राज्ञः परैः सह ॥३३
आयोधनमभूद्घोरं मासमेकं निरंतरम्। हैहयैस्तालजंघैश्च रिपुभिः स पराजितः ॥३४
स तु बाहुस्ततो दुःखी अंतर्वत्न्या स्वभार्यया। अवाप परमां तुष्टिं तत्र दृष्ट्वा महत्सरः ॥३५
असूयोपेतमनसस्तस्य भावं निरीक्ष्य च। सरोगता विहंगास्ते लीनाश्चित्रमिदं महत् ॥३६
अहो कष्टमहोरूपं घोरमत्र समागतम्। विशन्तस्त्वरया वासमित्यूचुस्ते विहंगमाः ॥३७
सोऽवगाह्य सरो भूयः पत्नीभ्यां सहितोमुदा। पीत्वा जलं च सुखदं वृक्षमूलमुपाश्रितः ॥३८
तस्मिन्बाहौ वनं याते तेनैव परिरक्षिताः। दुर्गुणान्विगणय्यास्य धिग्धिगित्यब्रुवन्प्रजाः ॥३९
यो वा को वा गुणो मर्त्यः सर्वश्लाघ्यतरो द्विज। सर्वसंपत्समायुक्तोऽप्यगुणी निंदितो जनैः ॥४०
अपकीर्तिसमो मृत्युर्लोकेऽन्यो न विद्यते। यदा बाहुर्वनं यातस्तदा तद्राजगा जनाः ॥४१
संतुष्टिं परमां याता दवथौ विगते यथा। निंदितो बहुशो बाहुर्मृतवत्कानने स्थितः ॥४२
निहत्य कर्म च यशो लोके द्विजवरोत्तम। नास्त्यकीर्तिसमो मृत्युर्नास्ति क्रोधसमो रिपुः ॥४३
नास्तिनिंदासमं पापं नास्ति मोहसमासवः। नास्त्यसूयासमा कीर्तिर्नास्ति कामसमोऽनलः ॥४४
नास्तिरागसमः पाशो नास्ति संगसमं विषम्। एवं विलप्य बहुधा बाहुरत्यंतदुःखितः ॥४५

किसी से द्वेष करता है उसका समस्त कल्याण नष्ट हो जाता है। परनिन्दा करने वाले से विष्णु विमुख हो जाते हैं। इसलिए निश्चय धन, धान्य, भूमि आदि सभी नष्ट हो जाते हैं। जीवों के अभिमान उत्पन्न होने से विवेक नष्ट हो जाता है। अज्ञान द्वारा आपत्तियां उत्पन्न होती हैं। इसलिए अभिमानत्याग अवश्य करना चाहिए। अहंकारी पुरुष का नाश अल्पकाल में होता है, हैहय और तालजंघ नामक शत्रुओं के साथ एक मास तक निरंतर युद्ध करने के उपरान्त उस परनिन्दक राजा की पराजय हो गयी। अनन्तर वह बाहु नामक राजा दुःखी होकर अपनी गर्भिणी स्त्री के साथ इधर-उधर घूमता हुआ एक महान् तालाब को देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। यह महान् आश्चर्य है कि उस परनिन्दक राजा के भाव को जानकर तालाब के पक्षीगण भी छिप गये। 'महान् कष्ट है, भीषण रूपधारी वह यहाँ आया' ऐसा अपने निवास-स्थान (घोंसले) में प्रवेश करते हुए पक्षियों ने कहा। अपनी दोनों स्त्रियों के समेत प्रसन्न होकर राजा ने उस तालाब में स्नान कर जलपान किया और वहीं किसी सुखदायी वृक्ष के नीचे ठहरा। राजा बाहु के वन चले जाने पर उसकी प्रजायें स्मरण करके उसके दुर्गुणो को धिक्कारने लगीं। ब्राह्मण ! कोई भी गुणी मनुष्य प्रशंसनीय होता ही है, किन्तु निर्गुणी संपत्तिशाली होने पर भी मनुष्यों का निन्दा-पात्र बना रहता है। संसार में अपयश से बढ़कर मृत्यु नहीं है। बाहु के वन चले जाने पर उनकी राज्यवासी प्रजायें ग्रीष्म ऋतु के बीत जाने के समान परमसुखी हुईं। द्विज श्रेष्ठ ! बार-बार निन्दित होकर और अपने कर्म तथा कीर्ति का नाशकर राजा बाहु वन में मृतक के समान स्थित रहा ॥२३-४२॥

संसार में अयश के समान मृत्यु नहीं है, क्रोध के समान कोई शत्रु नहीं है, निंदा के समान कोई पाप नहीं है, मोह के समान कोई नशा नहीं है, परनिंदा के समान कोई अपयश नहीं है, काम के समान कोई जलाने वाला नहीं है, राग के समान कोई फांस नहीं है, कुसंगति के समान कोई विष नहीं हैं। इस प्रकार राजा बाहु बार-बार विलाप कर अत्यन्त दुःखी हुआ। उपरान्त बुढ़ापा और मानसिक ताप के कारण उसके अंग शिथिल हो गये। बहुत समय बीत जाने पर और्व ऋषि के आश्रम के समीप वह बाहु व्याधि-ग्रस्त होकर मर गया। मुनि सत्तम ! उस समय

जीर्णांगो मनसस्तापाद्धभावादभूदसौ । गते बहुतिथे काले औवाश्रिमसमीपत: ॥४६
स बाहुर्व्याधिना ग्रस्तो ममार मुनिसत्तम । तस्य भार्यातिदु:खार्ता कनिष्ठा गर्भिणी तदा ॥४७
चिरं विलप्य बहुधा सह गंतुं मनोदधे । समानीय च सैधांसि चितां कृत्वातिदु:खिता ॥४८
समारोप्य तमारूढं स्वयं समुपचक्रमे । एतस्मिन्नंतरे धीमानौर्वस्तेजोनिधिर्मुनि: ॥४९
एतद्विज्ञातवान्सर्वं परमेण समाधिना । भूतं भव्यं वर्तमानं त्रिकालज्ञा मुनीश्वरा: ॥५०
गतासूया महात्मान: पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा । तपोभिस्तेजसांराशिरौर्वपुण्यसमो मुनि: ॥५१
संप्राप्तस्तत्र साध्वी च यत्र बाहुप्रिया स्थिता । चितामारोढुमुद्युक्तां तां दृष्ट्वा मुनिसत्तम: ॥५२
प्रोवाच धर्ममूलानि वाक्यानि मुनिसत्तम: ।

और्वउवाच

राजवर्य प्रिये साध्वि मा कुरुष्वातिसाहसम् ॥५३
तवोदरे चक्रवर्ती शत्रुहंता हि तिष्ठति । बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा ॥५४
रजस्वला राजसुते नारोहंति चितां शुभे । ब्रह्महत्यादिपापानां प्रोक्ता नि कृतिरुत्तमै: ॥५५
दंभिनो निंदकस्यापि भ्रूणघ्नस्य न निश्रुति: । नास्तिकस्य कृतघ्नस्य धर्मोपेक्षाकरस्य च ॥५६
विश्वासपातकस्यापि नि: कृतिर्नास्ति सुव्रते । तस्मादेतन्महत्पापं कर्तुं नार्हसि शोभने ॥५७
यदेतद्दु:खमुत्पन्न तत्सर्वं शांतिमेष्यति । इत्युक्ता मुनिना साध्वी विश्वस्य तदनुग्रहम् ॥५८
विललापातिदु:खार्ता समहाधवयुक्तदा । और्वोऽपितां पुन: प्राह सर्वशास्त्रार्थकोविद: ॥५९
मारोदी राजतनये श्रियमग्र्ये गमिष्यसि । मामुंचास्त्रं महाभागे प्रेतोदाह्योऽद्य सज्जनै: ॥६०
तस्माच्छोकं परित्यज्य कुरुकालोचितां क्रियाम् । पंडितेवापि मूर्खे वा दरिद्रे वा श्रियान्विते ॥६१
दुर्वृत्ते वा सुवृत्ते वा मृत्यो: सर्वत्र तुल्यता । नगरे वा तथारण्ये दैवमत्रातिरिच्यते ॥६२

उसकी स्त्रियाँ बहुत दु:खी हुई । संयोगत: छोटी रानी गर्भवती थी । अत्यन्त दु:खी होकर उसकी रानियों ने बारम्बार विलाप कर साथ ही सती-हवन का निश्चय कर काष्ठ एकत्रकर चिता बनाई । चिता पर राजा को रखकर वे स्वयं भी बैठना चाहती थीं कि उसी समय बुद्धिमान् महान् तेजस्वी औवं नामक एक मुनि ने अपनी परम योग-समाधि द्वारा रानियों के समस्त वर्तमान एवं भूत, भविष्य वृत्तान्त को जान लिया; क्योंकि मुनिवर त्रिकाल के ज्ञाता होते हैं। दुर्गुण-रहित महात्मा लोग अपने ज्ञान-नेत्र से देखते हैं । तदनन्तर पुण्यमूर्ति, तेजस्वी, तपस्वी औवं ऋषि ने जहाँ बाहु की दोनों पतिव्रतायें थीं वहाँ प्रस्थान किया । मुनिश्रेष्ठ औवं ने उन्हें चितापर बैठने को तैयार देखकर धर्म-वाक्य कहना आरम्भ किया ॥४२-५२॥

औवं ने कहा—श्रेष्ठ राजपत्नी ! पतिव्रते ! ऐसा साहस न करो । तुम्हारे गर्भ में शत्रु-विशानकारी चक्रवर्ती पुत्र है । छोटे बच्चे वाली स्त्री, गर्भिणी, जो कभी रजस्वला न हुई हो तथा रजस्वला को सती नहीं होना चाहिए । राजपुत्रि ! कल्याणिनि ! ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त होने का उपाय बताया गया है, किन्तु सुव्रते ! दंभी; निंदक, गर्भघाती, नास्तिक, कृतघ्न, धर्म की उपेक्षा करने वाला और विश्वासघाती के उद्धार का कोई उपाय नहीं है; इसलिए सुंदरि ! ऐसा महान् पाप न करो । यह तुम्हारा सभी दु:ख शांत हो जायगा । इस प्रकार मुनि के कहने पर तथा उनकी कृपा पर विश्वास कर वे दोनों पतिव्रतायें अपने पति को लेकर अत्यन्त दु:खी हो विलाप करने लगीं । समस्त शास्त्रों में कुशल तथा विद्वान् औवं ने पुन: उनसे कहा—राजपुत्रि ! रुदन न करो, कालान्तर में तुम्हें लक्ष्मी मिलेगी । कल्याणिनि ! आँसू मत गिराओ । सज्जनों का जैसा कथन है, आज ही शव की दाह क्रिया होनी चाहिए । इसलिए शोक-त्यागकर समयोचित कर्तव्य करो । पंडित, मूर्ख, दरिद्र, धनी, दुराचारी, सदाचारी सभी की मृत्यु समान है; नगर और जंगल सभी स्थान में दैव ही प्रधान रहता है । पिछले जन्म के कर्मों का फल इस जन्म में भोगना पड़ता है । इसमें एकमात्र दैव ही प्रधान है । क्योंकि पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार प्राणी इस संसार में आता है । कमलानने !

यद्यत्पुरातनं कर्म तत्तदेवेह युज्यते। कारणं दैवमेवात्र मन्ये सोपाधिका जना: ॥६३
गर्भे वा बाल्यभावे वा यौवने वापि वार्द्धके। मृत्योर्वशं प्रयातव्यं जंतुभिः कमलानने ॥६४
हंतिपातिच गोविन्दो जंतून्कर्मवशे स्थितान्। प्रवादं रोपयंत्यज्ञा हेतुमात्रेषु जंतुषु ॥६५
तस्माद्दुःखं परित्यज्य सुखिनी भव सुव्रते। कुरु पत्युश्च कर्माणि विवेकेन स्थिराभव ॥६६
एतच्छरीरं दुःखानां व्याधीनामयुतैर्वृतम्। सुखाभासं बहुक्लेशं कर्मपाशेन यंत्रितम् ॥६७
इत्याश्वास्य महाबुद्धिस्तया कार्याण्यकारयत्। त्यक्तशोका च सा तन्वी नता प्राह मुनीश्वरम् ॥६८
किमत्र चित्रं यत्संतः परार्थफलकांक्षिणः। नहि द्रुमाश्च भोगार्थं फलंति जगतीतले ॥६९
योऽन्यदुःखानि विज्ञाय साधुवाक्यैः प्रबोधयेत्। स एव विष्णुसत्वस्थो यतः परहिते स्थितः ॥७०
अन्यदुःखेन यो दुःखी योऽन्यहर्षेण हर्षितः। स एव जगतामीशो नररूपधरो हरिः ॥७१
सद्भिः श्रुतानि शास्त्राणि परदुःखविमुक्तये। सर्वेषां दुःखनाशाय इति संतो वदंति हि ॥७२
यत्र संतःप्रवर्तंते तत्र दुःखं न बाधते। वर्तते यत्र मार्त्तंडः कथं तत्र तमो भवेत् ॥७३
इत्येवं वादिनी सा तु स्वपत्युश्चापराःक्रियाः। चकार तत्सरस्तीरे मुनिप्रोक्तविधानतः ॥७४
स्थिते तत्र मुनौ राजा देवराडिव संज्वलन्। चितामध्याद्विनिष्क्रम्य विमानवरमास्थितः ॥७५
प्रपेदे परमं धाम नत्वा चौर्वं मुनीश्वरम्। महापातकयुक्ता वा युक्ता वा चोपपातकैः ॥७६
परं पदं प्रयांत्येव महद्भिरवलोकिताः। कलेवरं वा तद्भस्म तद्धूमं वापि सत्तम ॥७७
यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परां गतिम्। पत्युः कृतक्रिया सा तु गत्वाश्रमपदं मुनेः ॥७८
चकार तस्य शुश्रूषां सपत्न्या सह नारद ॥७९

इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणतो गंगोत्पत्तौ पंचमोऽध्यायः ॥५

जीव गर्भ में, वालकाल में, युवावस्था में, बुढ़ापा में कभी न कभी मृत्यु के अधीन होता ही है। कर्मफलानुसार स्थित जीव का नाश, एवं रक्षा दोनों एकमात्र गोविन्द करते हैं, अज्ञानी जीव निमित्तमात्र बने हुए केवल प्राणियों में ही दोषारोपण करते हैं। इसलिए सुव्रते ! दुःख-त्यागकर सुखी हो पति की क्रिया करो और ज्ञान-दृढ़ बनो। यह शरीर अनेक दुःख एवं व्याधियों से घिरा हुआ है, सुख का केवल भासमात्र है। विविध क्लेशों का अधिष्ठान होकर यह कर्मपाश से बद्ध है। महान् बुद्धिमान् ऋषि ने इस प्रकार उन्हें धैर्य देकर उन्हीं द्वारा क्रिया का निष्पादन कराया; वे स्त्रियाँ भी शोक-त्यागकर मुनीश्वर से कहने लगीं। सन्त लोग परोपकार रूप फल की ही इच्छा करते हैं; इसमें क्या आश्चर्य है। क्योंकि समस्त पृथिवी में वृक्ष-गण स्वार्थ के लिए नहीं परमार्थ के लिए फूलते-फलते हैं। जो दूसरों के दुःखों को जानकर उन्हें उत्तम वाक्यों द्वारा ज्ञान देता है, परोपकार में तत्पर उस प्राणी को विष्णुतुल्य जानना चाहिए। जो दूसरों के दुःख से दुःखी तथा दूसरों के सुख से सुखी होता है मनुष्य शरीरधारी उस प्राणी को जगत का अधीश्वर जानना चाहिए।

दूसरों को दुःख-मुक्त करने के हेतु ही सज्जन लोग शास्त्र का अध्ययन करते हैं। इसीलिए समस्त प्राणी के दुःख नाश करने के लिए संत लोग उसे कहते फिरते हैं। जहाँ संत लोग रहते हैं वहाँ कोई दुःखी नहीं रह सकता है। भला जहाँ सूर्य है वहाँ अंधकार कैसे रह सकता है ? इस प्रकार कहकर रानी ने उसी तालाब के किनारे मुनि के बतलाये गये विधानों द्वारा अपने पति की समस्त क्रिया सम्पन्न की। यहाँ पर मुनि की विद्यमान दशा में ही राजा चिता के मध्य से निकलकर देवराज इन्द्र के समान तेज धारण किए हुए उत्तम विमान पर स्थित हो गया और मुनीश और्व ऋषि को नमस्कार कर परमधाम को प्रस्थान किया। महापातकी उपपातकी सभी लोगों के दर्शनमात्र से ही परमपद प्राप्त करते हैं। सत्तम ! शरीर, राख या धुआं आदि कोई भी पुण्यात्मा के दर्शन मात्र से उत्तम गति प्राप्त करता है। नारद ! पति की क्रिया करने के उपरान्त वे स्त्रियाँ उन्हीं मुनि के आश्रम में रहकर उन्हीं महर्षि की सेवा करने लगीं ॥५३-७९॥

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गंगोत्पत्ति के प्रसंग में पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

सनक उवाच

एवमौर्वाश्रमे ते द्वे बाहुभार्ये मुनीश्वर। चक्राते भक्तिभावेन शुश्रूषां प्रतिवासरम् ॥१
गते वर्षार्द्धके काले ज्येष्ठा राज्ञी तु या द्विज। तस्याः पापमतिर्जाता सपत्न्याः संपदं प्रति ॥२
ततस्तया गरो दत्तः कनिष्ठायै तु पापया। न स्वप्रभावं चक्रे वै गरो मुनिनिषेवया ॥३
भूलेपनादिभिः सम्यग्यतः सानुदिनं मुनेः। चकार सेवां तेनासौ जीर्णपुण्येन कर्मणा ॥४
ततो मासत्रयेऽतीते गरेण सहितं सुतम्। सुषाव सुशुभे काले शुश्रूषानष्टकिल्विषा ॥५
अहो सत्संगतिर्लोके किं पापं न विनाशयेत्। न तदातिसुखं किं वा नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥६
ज्ञानाज्ञानकृतं पापं यच्चान्यत्कारितं परैः। तत्सर्वं नाशयत्याशु परिचर्या महात्मनाम् ॥७
जडोऽपि याति पूज्यत्वं सत्संगाज्जगतीतले। कलामात्रोऽपि शीतांशु शंभुना स्वीकृतो यथा ॥८
सत्संगतिः परामृद्धि ददाति हि नृणां सदा। इहामुत्र च विप्रेंद संतः पूज्यतमास्तः ॥९
अहो महद्गुणान्वक्तुं कः समर्थो मुनीश्वरः। गर्भं प्राप्तो गरो जीर्णो मासत्रयमहोऽद्भुतम ॥१०
गरेण सहितं पुत्रं दृष्ट्वा तेजोनिधिर्मुनिः। जातकर्म चकारासौ तन्नाम सगरेति च ।११
पुपोष सगरं बालं तन्माता प्रीतिपूर्वकम। चौलोपवीतकर्माणि तथा चक्रे मुनीश वरः ॥१२
शास्त्राण्यध्यापयामास राजयोग्यानि मंत्रवित्। समर्थं सगरं दृष्ट्वा किंचिदुद्भिन्नशैशवम् ॥१३
मंत्रवत्सर्वशस्त्रास्त्रं दत्तवान्स मुनीश्वरः। सगरः शिक्षितस्तेन सम्यगौर्वर्षिणा मुने ॥१४

सनक ने कहा--मुनीश्वर! इस प्रकार उस आश्रम में रहकर वे बाहु की दोनों स्त्रियाँ भक्ति-प्रेमपूर्वक प्रतिदिन महर्षि की सेवा करने लगीं। द्विज! छः मास व्यतीत होने पर बड़ी रानी के मन में अपनी पत्नी के गर्भ के निमित्त पाप-बुद्धि उत्पन्न हुई। फलतः उस पापिनी ने छोटी रानी को विष दे दिया। किन्तु महर्षि की सेवा के कारण वह विष अपना कुछ प्रभाव न दिखा सका। महर्षि की पूजा के लिए वह प्रतिदिन भूमि लीप-पोतकर स्वच्छ रखती थी, पूजा की सामग्रियाँ संजोकर रखती थी। इन्हीं सब पुण्यकर्मों के कारण वह विषप्रभाव नष्ट हो गया। इसके उपरान्त तीन मास बीतने पर महर्षि-सेवा-परायण, प्रसन्नचित्त उस रानी ने शुभ मुहूर्त्त में गर (विष) समेत पुत्र उत्पन्न किया। लोक में सत्संगति आश्चर्य उत्पन्न करने वाली कही गई है तो वह पाप का नाश क्यों न करे? और पुण्यशील मनुष्यों को अत्यन्त सुखदायिनी क्यों न हो? ज्ञान या अज्ञान द्वारा किये गये अथवा दूसरों द्वारा कराये हुए सभी पापों को महात्माओं की सेवा शीघ्र नष्ट करती है। सत्संगति के कारण जड़ भी संसार में पूज्य होता है, भगवान् शंकर ने कलामात्रशेष चन्द्रमा को धारण किया है, उनकी संगति से वह भी पूजनीय हुआ। विप्रेन्द्र! निश्चय ही सत्संगति मनुष्यों को लोक-परलोक में सर्वदा उत्तम समृद्धि प्रदान करने वाली है। अतः संत लोग अत्यन्त पूजनीय हैं। मुनीश्वर! महात्माओं का गुण-वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है? वह विष तीन मास तक गर्भ में रहकर जीर्ण हुआ यह कितने आश्चर्य की बात है। तेजस्वी मुनि ने गर (विष) समेत उत्पन्न पुत्र को देखकर जातकर्म किया और उसका सगर नाम रखा। उसकी माता ने प्रेममग्न हो अपने उस सगर नामक पुत्र का पालन-पोषण किया। मुनीश्वर ने उपयुक्त समय आने पर उसे मुण्डन, यज्ञोपवीत आदि संस्कार से संपन्न किया। तदनन्तर मंत्र-वेत्ता उस मुनीश्वर ने राजनीति आदि शास्त्रों का अध्ययन कराकर शिशु अवस्था में ही सगर को योग्य देखकर मन्त्रों समेत शस्त्रास्त्रों की शिक्षा दी। मुनिवर! इस प्रकार और्व ऋषि ने सगर को शिक्षित किया। इस प्रकार बलवान्, धार्मिक कृतज्ञ, गुणवान् एवं विद्वान् होकर सगर प्रतिदिन समिध, कुशा, जल, पुष्प आदि लाकर अतुल तेजस्वी उस महर्षि की सेवा करने लगा। कभी एक बार उस गुणशाली सगर ने प्रणामकर हाथजोड़ विनयपूर्वक कहा ॥१५-१६॥

बभूव बलवान्धर्मी कृतज्ञो गुणवान्सुधीः । धर्मज्ञ सोऽपि सगरो मुनेरमिततेजसः ॥१५
समित्कुशांपुष्पादि प्रत्यहं समुपानयत् । स कदाचिद्गुणनिधिः प्रणिपत्य स्वमातरम् ॥१६
उवाच प्रांजलिर्भूत्वा सगरो विनयान्वितः ।

सगर उवाच

मातर्गतः पिता कुत्र किं नामा कस्य वंशजः ॥१७
तत्सर्वं मे समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम । पित्रा विहीना ये लोके जीवंतोऽपि मृतोपमः ॥१८
दरिद्रोऽपि पिता यस्यह्यास्ते स धनदोपमः । यस्य माता पिता नास्ति सुखं तस्य न विद्यते ॥१६
धर्महीनो यथा मूर्खः परत्रेह च निंदितः । माता पितृविहीनस्य अज्ञस्याप्यविवेकिनः ॥२०
अपुत्रस्य वृथा जन्म ऋणग्रस्तस्य चैव हि । चन्द्रहीना यथा रात्रिः पद्महीनं यथा सरः ॥२१
पतिहीना यथा नारी पितृहीनस्तथा शिशुः । धर्महीनो यथा जंतुः कर्महीनो यथा गृही ॥२२
पशुहीनो यथा वैश्यस्तथा पित्रा विनार्भकः । सत्यहीनं यथा वाक्यं साधुहीना यथा सभा ॥२३
तपो यथा दयाहीनं तथा पित्रा विनार्भकः । वृक्षहीनं यथारण्यं जलहीना यथा नदी ॥२४
वेगहीनो यथा वाजी तथा पित्रा विनार्भकः । यथा लघुतरो लोके मातर्याञ्चपरो नरः ॥२५
तथा पित्रा विहीनस्तु बहुदुःखान्वितः सुतः । इतीरितं सुतेनैषा श्रुत्वा निःश्वस्य दुःखिता ॥२६
संपृष्टं तथा वृत्तं सर्वं तस्मै न्यवेदयेत् । तच्छ्रुत्वा सागरः क्रुद्धः कोपसंरक्तलोचनः ॥२७
हनिष्यामीत्यरातीन्स प्रतिज्ञामकरोत्तदा । प्रदक्षिणीकृत्य मुनिं जननीं च प्रणम्य सः ॥२८
प्रस्थापितः प्रतस्थे च तेनैव मुनिना तदा । और्वाश्रमाद्विनिष्क्रांत सगरः सत्यवाक् शुचि ॥२६
वशिष्ठं स्वकुलाचार्यं प्राप्तः प्रीतिसमन्वितः ।प्रणम्य गुरवे तस्मै वशिष्ठाय महात्मने ॥३०
सर्वं विज्ञापयास ज्ञानदृष्टया विजानते । ऐंद्रास्त्रं वारुणं ब्राह्ममाग्नेयं सगरो नृपः ॥३१

सगर ने कहा—मातः ! मेरे पिता कहाँ गये हैं ? उनका नाम क्या है ? और उनका कुल कौन सा है ? यह समस्त वृत्तान्त मुझसे कहो, मुझे सुनन का कुतुहल है, क्योंकि पितृ-हीन प्राणी जीवित भी मृतक के समान है । दरिद्र भी पिता जिसका हो वह कुबेर के समान है । क्योंकि जिसके माता-पिता न हों वह सुखी नहीं हो सकता है और धर्म-हीन मूर्ख के समान लोक-परलोक में निन्दा पात्र बना रहता है ! मातृ-पितृ-हीन, मूर्ख, अज्ञानी पुत्र-हीन एवं ऋणी इन सबका जन्म संसार में व्यर्थ है; चन्द्र-हीन रात्रि, कमल-हीन तालाब और पति-हीन स्त्री, जिस प्रकार शोभा नहीं पाती, पितृ-हीन बालक भी उसी प्रकार शोभा विहीन है । धर्म-हीन प्राणी, कर्म-हीन गृहस्थ, पशु-हीन वैश्य, और पितृ-हीन बालक ये समान हैं; सत्य-हीन वाक्य, सत्पुरुष-हीन सभा, दया-हीन तप, पितृ-हीन बालक ये समान हैं । वृक्ष-हीन वन, जल-हीन नदी, वेग-हीन अश्व और पितृ-हीन बालक ये समान हैं, माता ! जिस प्रकार याचक-मनुष्य संसार में अत्यन्त छोटा समझा जाता है, पितृ-हीन अत्यन्त दुःखी पुत्र भी उसी प्रकार है । पुत्र की ऐसी बातें सुनकर दुःखी हो दीर्घ-निःश्वास लेकर रानी ने समस्त वृत्तान्त सगर से कहा, उसे सुनकर सगर ने क्रुद्ध हो रक्त-नेत्रकर उसी समय 'शत्रुओं का नाश करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा की । तदनन्तर मुनि और जननी को प्रदक्षिणापूर्वक प्रणामकर युद्धार्थ प्रस्थान करते हुए उस सगर को देख मुनि ने विदा किया ॥१७-२६॥

पवित्राचरण, सत्य-वक्ता उस सगर ने ऋषि के आश्रम से निकलकर ज्ञान-नेत्र द्वारा सभी वृत्तान्तों को जानने वाले अपने कुल-गुरु वसिष्ठ के पास प्रेम-पूर्वक उपस्थित होकर प्रणामपूर्वक समस्त वृत्तान्त निवेदन किया ।

तेनैव मुनिनावाप खङ्गं वज्रोपम धनुः। ततस्तेनाभ्यनुज्ञातः सगरः सौमनस्यवान् ।।३२
आशीर्भिरर्चितः सद्यः प्रतस्थे प्रणिपत्य तम्। एकेनैव तु चापेन स शूरः परिपन्थिनः ।।३३
सपुत्रपौत्रान्सगणानकरोत्स स्वर्गवासिनः। तच्चापमुक्तवाणाग्निसंतप्तास्तदरातयः ।।३४
किंचिद्विनष्टा संत्रस्तास्तथा चान्ये प्रदुद्रुवुः। केचिद्विशीर्ण केशाश्च वन्मीकोपरिसंस्थिता ।।३५
तृणान्यभक्षयन्केचिन्नग्नाश्च विविशुर्जलम्। शकाश्च यवनाश्चैव तथा चान्ये महीभृतः ।।३६
सत्वरं शरणं जग्मुर्वशिष्ठं प्राणलोलुपाः। जितक्षितिर्बाहुपुत्रो रिपून्गुरुसमीपगान् ।।३७
चारैर्विज्ञातवान्सद्यः प्राप्तश्चाचार्यसन्निधिम्।
तमागतं बाहुसुतं निशम्य मुनिर्वशिष्ठः शरणागतस्तान्।
त्रातुं च शिष्याभिहितं च कर्तुं विचारयामा तदा क्षणेन ।।३८
चकार मुंडाञ्छवरान्यवनाँल्लम्बमूर्धजान्। अंधांश्च स्मश्रुलान्सर्वान्मुंडान्वेदवहिष्कृतान् ।।३९
वशिष्ठमुनिना तेन हतप्रायान्निरीक्ष्य सः। प्रहसन्प्राह सगरः स्वगुरुं तपसोनिधिम् ।।४०

सगर उवाच

भो भो गुरो दुराचारानेतान्नक्षसि तान्वृथा। सर्वथाहं हनिष्यामि मत्पितुर्देशहारकान् ।।४१
उपेक्षेत समर्थं सन्धर्मस्य परिपंथिनः। स एव सर्वनाशाय हेतुभूतो न संशयः ।।४२
बाधन्ते प्रथमं मत्ता दुर्जनाः सकलं जगत्। त एव बलहीनाश्चेद्भजंतेऽत्यंतसाधुताम् ।।४३
अहो मायाकृतं कर्म खलाः कश्मलचेतस। तावत्कुर्वंति कार्याणि यावत्स्यात्प्रबलं बलम् ।।४४
दासभावं च शत्रूणां वारस्त्रीणां च सौहृदम्। साधुभावं च सर्पाणां श्रेयस्कामो न विश्वसेत् ।।४५
प्रहासं कुर्वते नित्यं यान्दन्तान्दर्शयन्खलाः। तानेव दर्शयंत्याशु स्वसामर्थ्यविपर्यये ।।४६
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणतो गंगोत्पत्तौ षष्ठोऽध्यायः ।।६

महर्षि द्वारा राजा सगर ने ऐंद्र, वारुण, ब्राह्म, आग्नेय, तथा वज्र के समान तलवार और धनुष प्राप्त किया और उन्हीं की आज्ञा आशिष ग्रहणकर शीघ्र ही युद्धार्थ प्रस्थान किया। शूर-वीर सगर ने एक ही धनुष द्वारा पुत्र-पौत्र समेत उन शत्रुओं को स्वर्गवासी बनाया। उसके धनुष द्वारा छोड़े गये वाणों की अग्नि से संतप्त होकर शत्रु लोग इधर-उधर भागने लगे, कोई भयभीत होकर मर गया, कोई भाग निकला, किसी का केश नष्ट हुआ, किसी ने विमौत मर अपनी स्थिति की, कोई तृण खाकर रहने लगे, कोई नग्न होकर जल में प्रविष्ट हो गए, शक, आदि अन्य राजा लोग अधीर होकर प्राण-रक्षा के निमित्त शीघ्र वशिष्ठ की शरण में गये। इस प्रकार समस्त पृथ्वी जीतकर बाहु-पुत्र सगर दूत द्वारा शत्रुओं के गुरु के समीप में गये हुए जानकर स्वयं आचार्य के समीप गया। मुनिश्वर वशिष्ठ ने आये हुए बाहु-पुत्र को सुनकर उसी समय शरणागतों की रक्षा एवं शिष्यहित का अविरोधी विचार निश्चय किया। वेद-बहिष्कृत शवर, यवन अन्य आदि को दाढ़ी-मूँछ समेत मुंडित देखकर सगर ने अपने तपोनिधि गुरु से हँसकर कहा—।।३०-४०।।

सगर ने कहा—गुरो! इन दुराचारियों की आप व्यर्थ रक्षा करते हैं, ये मेरे पिता के देश का अपहरण करने वाले हैं, अत; इन्हें मैं अवश्य मारना चाहता हूँ। समर्थ होकर धर्म-विरोधियों की उपेक्षा करना निःसन्देह सर्व-नाश का हेतु हैं। मतवाले होकर क्षुद्र लोग पहले समस्त संसार को दुःखी करते हैं और स्वयं निर्बल होने पर बड़ी साधुता प्रगट करते हैं। पापी दुर्जन लोग जब तक प्रबल रहते हैं तब तक अनेक छलछन्दपूर्वक अपना कार्य निष्पन्न करते हैं। शत्रुओं के दास्य-भाव, वेश्याओं की मित्रता, सर्पों की साधुता का विश्वास कोई भी कल्याण चाहने वाला प्राणी न करे। दुर्जन लोग हँसते हुए पहले अपने जिन दाँतों को दिखाते हैं, सामर्थ्य-दीन-हीन होने पर उन्हीं द्वारा दीनता भी प्रकाशित करते हैं ।।४१-४६।।

श्री बृहन्नारदीय पुराण के गंगोत्पत्ति के प्रसंग में छठा अध्याय समाप्त ।।

सप्तमोऽध्यायः

सगर उवाच

पिशुना जिह्वया पूर्वे परुषं प्रवदंति च । अतीव करुणं वाक्यं वदंत्येव तथाबला: ।।१
श्रेयष्कामो भवेद्यस्तु नीतिशास्त्रार्थकोविद: । साधुत्वं समभावं च खलानां नैव विश्वसेत् ।।२
दुर्जनं प्रणतिं यांतं मित्रं कैतवशीलिनम् । दुष्टां भार्यां च विश्वस्तो मृत एव न संशय: ।।३
मा रक्ष तस्मादेतान्वै गोरूपव्याघ्रकर्मिण: । हत्वैतानखिलान् दुष्टांस्त्वत्प्रसादान्महीं भजे ।।४
वशिष्ठस्तद्वच: श्रुत्वा सुप्रीतो मुनिसत्तम: । कराभ्यां सगरस्यांगं स्पृशन्निमुवाच ह ।।५

वशिष्ठ उवाच

साधु साधु महाभाग सत्यं वदसि सुव्रत । तथापि मद्वच: श्रुत्वा परां शांतिं लभिष्यसि ।।६
मयैते निहता: पूर्वे त्वत्प्रतिज्ञाविरोधिन: । हतानां हनने कीर्ति: का समुत्पद्यते वद ।।७
भूमीश जंतव: सर्वे कर्मपाशेन यंत्रिता: । तथापि पापैर्निहता: किमर्थं हंसि तान्पुन: ।।८
देहस्तु पापजनित: पूर्वमेवैनसा हत: । आत्माहभेद: पूर्णत्वाच्छास्त्राणामेष निश्चय: ।।९
स्वकर्मफलभोगानां हेतुमात्रा हि जंतव: । कर्माणि दैवमूलानि दैवाधीनमिदं जगत् ।।१०
यस्माद्दैवंहि साधूनां रक्षिता दुष्टशिक्षिता । ततो नरैस्वतंत्रै: किं कार्यं साध्यते वद ।।११
शरीरं पापसंभूतं पापेनैव प्रवर्तते । पापमूलमिदं ज्ञात्वा कथं हन्तुं समुद्यत: ।।१२
आत्मा शुद्धोऽपि देहस्थो देहीति प्रोच्यते बुधै । तस्मादिदं बपुर्भुप पापमूलं न संशय: ।।१३
पापमूलं वपुर्हन्तु: का कीर्तिस्तव बाहुज । भविष्यतीति निश्चित्य नैतान्हिंसीस्तत: सुत ।।१४

सगर ने कहा—पिशुन (चुगलखोर) लोग जिस जिह्वा द्वारा कठोर भाषण का व्यवहार करते हैं, निर्बल होने पर उसी द्वारा अत्यन्त करुण वाक्यों का प्रयोग करते हैं। कल्याण-इच्छुक नीति-शास्त्र का विद्वान् दुर्जनों के सम-भाव और साधु-भाव का विश्वास कभी न करे। नम्र दुर्जन, कपटी मित्र एवं दुष्टा स्त्री इन सबका विश्वास करने वाला प्राणी मरे हुए के समान है। अत: गौ-रूप धारणकर व्याघ्र-कर्म करने वाले इन दुष्टों की रक्षा आप न करें, आपके अनुग्रह द्वारा समस्त दुष्टों का संहार कर मैं इस पृथिवी का राज्य करना चाहता हूँ। मुनि-श्रेष्ठ वशिष्ठ ने सगर की ऐसी बातें सुनकर प्रसन्नता पूर्वक हाथों से सगर के अंग का स्पर्श करते हुए कहा ।।१-५।।

वशिष्ठ ने कहा—महाभाग ! सुव्रत ! यद्यपि तुम सत्य और उत्तम बातें कह रहे हो किन्तु मेरी बातें सुनकर तुम्हें अत्यन्त शांति प्राप्त होगी। तुम्हारे इन प्रतिज्ञा-बिरोधियों को मैंने पहले ही मार दिया है। अत: मृतक को मारने से कौन-सी कीर्ति होगी, तुम्हीं बताओ। पृथिवीपते ! समस्त प्राणी कर्म-पाश से बद्ध होकर अपने पापों द्वारा मरते हैं, फिर उन्हें क्यों मारते हो ? पाप-द्वारा उत्पन्न होकर देह उसी द्वारा नष्ट भी हो जाती है और आत्मा अभेद्य तथा पूर्ण है, ऐसा शास्त्रों का सिद्धान्त है। अपने कर्म-फल के भोग में प्राणी केवल हेतुमात्र है। क्योंकि कर्म दैवाधीन है। अत: यह समस्त संसार ही दैवाधीन है। साधु-रक्षक एवं दुष्ट-शिक्षक दोनों ही दैव हैं। फिर पराधीन मनुष्य क्या कर सकता है ? तुम्हीं बताओ ? पाप-द्वारा उत्पन्न शरीर पाप द्वारा ही कार्यों में प्रवृत्त होता है। अत: पाप-मूलक जानकर इन्हें मारने के लिए क्यों तैयार हो ? देह-धारण करने पर भी आत्मा शुद्ध है, विद्वान् लोग इसे देही कहते हैं। अत: राजन् ! इस शरीर को पाप-मूलक समझो। बाहु-पुत्र ! पाप-मूलक शरीर को मारकर

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं विरराम स कोपतः । स्पृशन्करेण सागरं नंदनं मुनयस्तदा ॥१५
अथाथर्वनिधिस्तस्य सगरस्य महात्मनः । राज्याभिषेकं कृतवान्मुनिभिः सह सुव्रतैः ॥१६
भार्याद्वयं च तस्यासीत्केशिनी सुमतिस्तथा । काश्यपस्य विदर्भस्य तनये मुनिसत्तम ॥१७
राज्ये प्रतिष्ठिते दृष्ट्वा मुनिरौर्वस्तपोनिधिः । वनादागत्य राजानं संभाष्य स्वाश्रमं ययौ ॥१८
कदाचित्तस्य भूपस्य भार्याभ्यां प्रार्थितो मुनिः । वरं ददावपत्यार्थमौर्वो भार्गवमंत्रवित् ॥१९
क्षणं घ्यानस्थितो भूत्वा त्रिकालज्ञो मुनीश्वरः । केशिनीं सुमतिं चैव इदमाह प्रहर्षयन् ॥२०

औंर्व उवाच

एका वंशधरं चैकमन्या षडयुतानि च । अपत्यार्थं महाभागे वृणुतां च यथेप्सितम् ॥२१
अथ श्रुत्वा तस्य मुने रौर्वस्य च नारद । केशिन्येकं सुतं वव्रे वंशसंतानकारणम् ॥२२
तथा षष्टिसहस्राणि सुमत्य ह्यभवन्सुताः । नाम्नासमंजाः केशिन्यास्तनयो मुनिसत्तम ॥२३
असमंजसः कर्माणि चकारोन्मत्तचेष्टिताः । तं दृष्ट्वा सागराः सर्वेह्यसन्दुर्वृत्तचेतसः ॥२४
तद्बालभावं संदुष्टं ज्ञात्वा बाहुसुतो नृपः । चिंतयामास विधिवत्पुत्रकर्मविर्गाहितम् ॥२५
अहो कष्टतरा लोके दुर्जनानां हि संगतिः । कारुकैस्ताड्यते वन्हिरयःसंयोगमात्रतः ॥२६
अंशुमान्नाम तनयो बभूव ह्यसमंजसः । शास्त्रज्ञोगुणवन्धर्मी पितामहहिते रतः ॥२७
दुर्वृत्ताः सागराः सर्वे लोकोपद्रवकारिणः । अनुष्ठानवतां नित्यमंतराया भवंति ते ॥२८
हुतानि यानि यज्ञेषु हवींषि विधिवद्द्विजैः । बुभुजे तानि सर्वाणि निराकृत्य दिवौकसः ॥२९
स्वर्गादाहृत्य सततं रंभाद्या देवयोषितः । भजंति सागरास्ते वै कचग्रहबलात्कृताः ॥३०

तुम्हें कौन यश प्राप्त होगा ? पुत्र ! ऐसा सोचकर इन्हें मत मारो । इस प्रकार गुरु के वाक्यों को सुनकर सगर ने अपना क्रोध त्याग किया । महर्षि ने भी अपने हाथों से आनन्दप्रद सगर का स्पर्श किया । तदुपरान्त अथर्व-वेत्ता वसिष्ठ ने व्रत एवं नियम में रत रहने वाले मुनियों के साथ महात्मा सगर का राज्याभिषेक किया । मुनिसत्तम ! विदर्भ देश के कश्यप नामक राजा की केशिनी और सुमति नामक दो कन्यायें राजा सगर की धर्मपत्नी थीं । तपोनिधि, महर्षि औंर्व राज्य प्रतिष्ठित सगर को देखने के लिए वन से आये और राजा से वार्तालाप कर पुनः अपने आश्रम को चले गये । एक बार राजा की उन दोनों स्त्रियों के सन्तान निमित्त प्रार्थना करने पर भृगु-मंत्र-वेत्ता मुनिवर औंर्व ने वरदान दिया । त्रिकाल-ज्ञाता मुनीश्वर ने क्षणमात्र ध्यानमग्न होकर हँसते हुए कहा ॥९-२०॥

औंर्व ने कहा—तुम दोनों में से एक को वंशधारी केवल एक और एक को साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे, महाभागे ! सन्तानवती होने के लिए अपनी-अपनी इच्छानुसार स्वीकार करो ।

नारद ! इसके उपरान्त जितेन्द्रिय औंर्व के कथन को सुनकर केशिनी ने वंश के निमित्त केवल एक सुत को स्वीकार किया । सुमति के भी साठ हजार पुत्र हुए । मुनिसत्तम ! केशिनी के पुत्र का नाम असमंजस हुआ । वह असमंजस उन्मत्तों के समान कर्म करने लगा । उसे देखकर सगर के सभी लड़के दुराचारी हो गये । बाहु-पुत्र सगर ने अपने पुत्रों की दुष्टता को जानकर उनके निन्दित कर्मों का विधिवत् विचार किया । संसार में दुर्जनों की संगति निश्चय ही कष्टदायिनी होती है । लोहे का संयोग होने के कारण अग्नि को भी लुहार पीटने लगता है । उस असमंजस के शास्त्र-ज्ञाता, गुणवान्, धार्मिक एवं पितामह का हितैषी अंशुमान् नामक पुत्र हुआ ।

संसार में उपद्रव करने वाले, दुराचारी वे सगर के सभी पुत्र यज्ञ करने वालों के अनुष्ठान में महान विघ्न करने लगे । यज्ञादिकों में देवताओं को भगा-भगाकर ब्राह्मण द्वारा विधिवत् हवन किये हुए हवि का भोजन करने लगे । इस प्रकार वे सगर के पुत्रगण रम्भा आदि देव-स्त्रियों का स्वर्ग से केश पकड़कर बलात्कारपूर्वक अपहरण कर विहार करने लगे ॥२१-३०॥

पारिजातादिवृक्षाणां पुष्पाण्याहृत्य ते खला: । भूषयंति स्वदेहानि मद्यपानपरायणा: ॥३१
साधुवृत्तीः समाजह्नु: सदाचारानननाशयन् । मित्रैश्च योद्धमारब्धा बलिनोऽत्यंतपापिनः ॥३२
एतद्दृष्ट्वातिदुःखार्ता देवा इंद्रपुरोगमाः । विचारं परमं चक्रुरेतेषां नाशहेतवे ॥३३
निश्चित्य विबुधाः सर्वेपातालांतरगोचरम् । कपिलं देवदेवेशं ययुः प्रच्छन्नरूपिणः ॥३४
ध्यायंतमात्मनात्मानं परानंदैकविग्रहम् । प्रणम्य दंडवद्भूमौ तुष्टुबुस्त्रिदशास्तः ॥३५

देवाऊचुः

नमस्ते योगिने तुभ्यं सांख्ययोगरताय च । नररूप मतिच्छन्नविष्णवे जिष्णवे नमः ॥३६
नमः परेशभक्ताय लोकानुग्रहहेतवे । संसारारण्यदावाग्ने धर्मपालनसेतवे ॥३७
महते वीतरागाय तुभ्यं भूयो नमोनमः । सागरैः पीडितानस्मांस्त्रायस्व शरणागतान् ॥३८

कपिल उवाच

ये तु नाशमिहेच्छंति यशोबलधनायुषाम् । त एव लोकान्बाधंते नात्राश्चर्यं सुरोत्तमा ॥३९
यस्तु बाधितुमिच्छेत जनान्निरपराधिनः । तं विद्यात्सर्वलोकेषु पापभोगरतं सुरा ॥४०
कर्मणा मनसा वाचा य स्तुत्यान्बाधते सदा । तं हंति दैवमेवाशु नात्र कार्या विचारणा ॥४१
अल्पैरहोभिरेवैते नाशमेष्यंति सागराः । इत्युक्ते मुनिना तेन कपिलेन महात्मना ॥४२
प्रणम्य तं यथान्यायं गता नाकं दिवौकसः । अत्रांतरे तु सगरो वशिष्ठाद्यैर्महर्षिभिः ॥४३
आरेभे हयमेधाख्यं यज्ञं कर्तुमनुत्तमम् । तद्यज्ञे योजितं सप्तिमहृत्य सुरेश्वरः ॥४४
पाताले स्थापयामास कपिलो यत्र तिष्ठति । गूढ़विग्रहशक्रेण हृतमश्वं तु सागरा ॥४५
अन्वेष्टुं बभ्रमुर्लोकान् भूरादींश्च सुविस्मिताः । अदृष्टसप्तयस्तेच पातालं गन्तुमुद्यताः ॥४६
चख्नुर्महीतलं सर्वमेकैको योजनं पृथक् । मृत्तिकां खनितां ते चोदधितीरे समाकिरन् ॥४७

वे दुष्ट-गण मद्य-पान कर नशे में पारिजात आदि वृक्षों के फूलों से अपने को सुशोभित करते थे। सज्जनों की आजीविका एवं सदाचरण का नाश करते हुए उन घोर पापियों ने अपनी शक्ति से मदांध होकर अपने मित्रों से भी युद्ध करना आरम्भ कर दिया। यह देखकर इन्द्र आदि देवता लोग अत्यन्त दुःखी हो इनके विनाश के हेतु का विचार किया। विचार को निश्चितकर देवलोग अपने स्वरूप को छिपाकर पाताल के भीतर रहने वाले देवाधिदेव कपिल के यहाँ गये। वहाँ जाकर एकमात्र आनन्दरूप शरीरधारी, आत्म-स्वरूप का ध्यान करते हुए पृथिवी में दण्डवत्कर स्तुति करना आरम्भ किया।

देवताओं ने कहा—सांख्य-योग-मग्न ! योगिन् ! तुम्हें नमस्कार है, मनुष्य रूप में दिये हुए जयशील विष्णु को नमस्कार है। संसार में कृपाकारण ! पराधीश होकर भी भक्तरूप ! तुम्हें नमस्कार है, संसाररूपी वन की दावाग्नि ! धर्म-पालन के मर्यादारूप, विरागी, महान ! तुम्हें बार-बार नमस्कार है, सगरपुत्रों द्वारा पीड़ित, शरण में आये हुए हम लोगों की रक्षा कीजिये।

कपिल ने कहा—सुरोत्तम ! जो अपने यश, बल, धन और आयु का नाश चाहते हैं निःसन्देह वही संसार को बाधा पहुँचाते हैं।।३१-३९॥

देव ! जो व्यक्ति निरपराध प्राणी को कष्ट देते हैं, उन्हें संसार में पाप भागी जानो। मनसा, वाचा, कर्मणा जो व्यक्ति भक्तों को किसी प्रकार की बाधा पहुँचाता है निःसन्देह वह अल्प-काल में दैव द्वारा नष्ट हो जाता है। अतः अल्प-काल में ही इन सगर-पुत्रों का नाश अवश्य होगा, महात्मा कपिल मुनि के इस प्रकार कहने पर देवताओं ने उन्हें प्रणामकर अपने-अपने स्थान को प्रस्थान किया। इन्हीं दिनों राजा सगर ने वशिष्ठ महर्षियों द्वारा अश्व-मेघ नामक उत्तम यज्ञ आरंभ किया था, उस यज्ञ में छोड़े गये घोड़े को चुराकर इन्द्र ने उसे पाताल में पहुँचा दिया जहाँ कपिल वर्तमान थे। इस प्रकार छिपे रूप में इन्द्र द्वारा चुराये हुए घोड़े को ढूंढ़ने के लिए उन सगरपुत्रों ने भू आदि सभी लोकों

तद्द्वारेण गताः सर्वे पातालं सागरात्मजाः । विचिन्वंतो हयं तत्र मत्तोन्मत्ता विचेतसः ।।४८
तत्रापश्यन् महात्मानं कोटिसूर्यसमप्रभम् । कपिलं ध्याननिरतं वाजिनं च तदं तिके ।।४९
ततः सर्वे तु संरब्धास्तं मुनिं पश्य वेगतः । हंतुमुद्युक्तमनसो विद्रवंतः समास दन् ।।५०
हन्यतांहन्यतामेष वध्यतां वध्यतामयम् । गृह्यतां गृह्यतामाशु इत्यूचुस्ते परस्परम् ।।५१
हृताश्वं साधुभावेन वकवध्यानतत्परम् । सन्ति चाहो खला लोके कुर्वंत्याडंवरं महत् ।।५२
इत्युच्चरंतो जहसुः कपिलं ते मुनीश्वरम् । समस्तेन्द्रियसंदोहं नियम्यात्मानमात्मनि ।।५३
आस्थित कपिलस्तेषां तत्कर्मं ज्ञातवान्नहि । आसन्नमृत्यवस्तेतु विनष्टमतयो मुनिम् ।।५४
पद्भि संताडयामासुर्बाहू च जगृहुः परे । ततस्त्यक्ता समाधिस्तु समुर्निविस्मितस्तदा ।।५५
उवाच भावगंभीरं लोकोपद्रवकारिणः । ऐश्वर्यमदमत्तानां क्षुधितानां च कामिनाम् ।।५६
अहंकारविमूढ़ानां विवेको नैव जायते ।।५७

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणतो गंगोत्पत्तौ सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

को देखा; पर न पाकर अति विस्मित हुए और पाताल को प्रस्थान किया । चार-चार कोस की दूरी पर अलग-अलग स्थित होकर उन लोगों ने पृथिवी को खोदना आरंभ किया और मिट्टी को समुद्र-तीर पर फेंकते गये । संयोगतः उसी द्वार से वे अज्ञानी, मतवाले सगर-पुत्र घोड़े को खोजते हुये पाताललोक को पहुँचे वहाँ जाकर उन्होंने करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशित, ध्यानमग्न महात्मा कपिल को और उनके समीप अपने घोड़े को देखा । तदनन्तर उन आततायियों ने बड़े वेग से मुनि को मारने के लिए धावा किया !

वे कहने लगे—मारो मारो, यह वध के ही योग्य है, शीघ्र पकड़ लो, पकड़ो घोड़े को चुराकर यह बक की तरह ध्यान लगाकर बैठा है आश्चर्य है कि दुर्जन लोग भी इस संसार में महान आडंबर करते हैं । समस्त इन्द्रियों का नियमन कर परमात्मा के ध्यान में निमग्न महात्मा कपिल को इस प्रकार की बातें कहते हुए उन लोगों ने महान् अट्टहास किया । पर इस प्रकार उन्होंने उन दुष्टों की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया; किन्तु उन मरणासन्न, भ्रष्टबुद्धि वालों ने मुनि के ऊपर पाद-प्रहार किया । किसी ने हाथ भी पकड़ लिया । ऐसा करते देख विस्मित होकर मुनि ने समाधि-त्यागकर उन संसारी दुष्टों से कहा ! ऐश्वर्य के मद से मतवाले क्षुधा-पीड़ित, कामी, अहंकार-विमूढ प्राणी का ज्ञान लुप्त हो जाता है ।।४०-५७।।

श्री वृहन्नारदीयपुराण से गंगोत्पत्ति के प्रसंग में सातवाँ अध्याय समाप्त ।।७।।

अष्टमोऽध्यायः

कपिल उवाच

निधेराधारमात्रेण मही ज्वलति सर्वदा । तदेव मानवा भुक्त्वा ज्वलंतीति किमद्भुतम् ।।१
किमत्र चित्रं स्वजनं बाधते यदि दुर्जनाः । महीरुहांश्चानुतटे पातयंति नदीरया ।।२
यत्र श्रीर्यौवनं वापि शारदा वापि तिष्ठति । तत्राश्रीर्वृद्धतानित्यं मूर्खत्वं चापि जायते ।।३
अहो कनकमाहात्म्यमाख्यातुं केन शक्यते । नामसाम्यादतो चित्रं धत्तूरोऽपि मदप्रदः ।।४
भवेद्यदि खलस्य श्रीः सैव लोकविनाशिनी । यथा सखाग्नेः पवनः पन्नगस्य यथाविषम् ।।५
अहो धनमदांधस्तु पश्यन्नपि न पश्यति । यदि पश्यत्यात्महितं स पश्यति न संशयः ।।६
इत्युक्त्वा कपिलः क्रुद्धो नेत्राभ्यां ससृजेऽनलम् । स वन्हिः सागरान्सर्वान्भस्मसादकरोत्क्षणात् ।।७
यन्नेत्रजानलं दृष्ट्वा पातालतलवासिनः । अकालप्रलयं मत्वा चुक्रुशुः शोकलालसा ।।८
तदग्नितापिताः सर्वे दंदशूकाश्च राक्षसाः । सागरं विविशुः शीघ्रं सतां कोपो हि दुःसहः ।।९
अथ तस्य महीपस्य समागम्याध्वरं तदा । देवदूत उवाचेदं सर्वं वृत्तं हि यक्षते ।।१०
एतत्समाकर्ण्य वचः सगरः सर्ववित्प्रभुः । दैवेन शिक्षिता दुष्टा इत्युवाचातिहर्षितः ।।११
माता व जनको वापि भ्राता वा तनयोऽपि वा । अधर्मं कुरुते यस्तु स एव रिपुरिष्यते ।।१२
यस्त्वधर्मेषु निरतः सर्वलोकविरोधकृत् । तं रिपुं परमं विद्याच्छास्त्राणामेष निर्णयः ।।१३
सगरः पुत्रनाशेऽपि न शुशोच मुनीश्वर । दुर्वृत्तनिधनं यस्मात्सतामुत्साहकारणम् ।।१४
यज्ञेष्वनधिकारत्वादपुत्राणामितिस्मृतेः । पौत्रं तमंशुमन्तं हि पुत्रत्वे कृतवान्प्रभुः ।।१५
असमंजससुतं तं तु सुधियं वाग्विदांवर । युयोज सारविद्भूयो ह्यश्वानयनकर्मणि ।।१६

कपिल ने कहा—निधि का आधार होने से पृथिवी सर्वदा जलती रहती है, उसी (निधि) का भोगकर मनुष्य जले तो कौन सा आश्चर्य है । यदि दुर्जन स्वजन को बाधा पहुँचावें तो क्या आश्चर्य है ? क्योंकि नदी का वेग किनारे पर स्थित वृक्ष को ही गिराता है ।

जहाँ लक्ष्मी, युवावस्था, सरस्वती स्थित रहती हैं वहाँ अलक्ष्मी और मूर्खता की नित्य वृद्धि होती है । कनक के माहात्म्य का वर्णन कौन कर सकता है ? जिसके एकमात्र नाम की समानता के कारण धतूरा भी उन्मत्तता प्रदान करता है । यदि दुष्टों के अधीन श्री हो जाती है तो लोक-विनाश होने में वही कारण होती है, जैसे अग्नि-मित्र वायु को प्रचण्ड करता है, सर्प-विष बढ़ने पर स्पर्श करने वाले सभी को नष्ट करता है आश्चर्य है कि धन-सम्पन्न मदांध-प्राणी देखते हुए भी नहीं देखते हैं और यदि देखते हैं तो निःसन्देह अपना स्वार्थ ही देखते हैं । इस प्रकार कहकर कपिल ने क्रुद्ध होकर अपने नेत्र द्वारा अग्नि उत्पन्न किया उसी अग्नि ने क्षण-मात्र में सगर-पुत्रों को भस्मकर दिया । नेत्र द्वारा उत्पन्न उस विकराल अग्नि को देखकर पातालवासी अकालप्रलय समझ शोक प्रकट करते हुए करुण शब्द करने लगे ।

उस अग्नि से संतप्त होकर सर्प और राक्षसगण सागर में कूद पड़े, क्योंकि सज्जन का क्रोध दुःसह होता है ।। १-९ ।।

इसके उपरांत देवताओं के दूत ने यज्ञ में जाकर राजा से समस्त वृतान्त निवेदन किया । उसे सुनकर सर्ववेत्ता सगर ने "दैव ने दुष्टों को शिक्षा दी" ऐसा कहकर अत्यन्त हर्ष प्रकट किया ।

माता, पिता, भ्राता, पुत्र सभी अधर्म करने से शत्रु-समान होते हैं । समस्त लोकों के विरोधी अधर्म करने वाले प्राणी को शत्रु जानना चाहिए, ऐसा शास्त्र का सिद्धान्त है । मुनीश्वर ! पुत्र-नाश होने पर भी महाराज सगर को शोक नहीं हुआ; क्योंकि दुराचारी का मरण सज्जनों के उत्साह का हेतु होता है । पुत्र-हीन प्राणी को यज्ञ अधिकार नहीं है,

स गतस्तद्बिलद्वारे दृष्ट्वा तं मुनिपुंगवम् । कपिलं तेजसां राशिं साष्टांगं प्रणनाम ह ।।१७
कृतांजलिपुटो भूत्वा विनयेनाग्रतः स्थितः । उवाच शांतमनसै देवदेवं सनातनम् ।।१८

अंशुमानुवाच

दौःशील्यं यत्कृतं ब्रह्मन्मत्पितृव्यैः क्षमस्व तत् । परोपकारनिरताः क्षमासारा हि साधवः ।।१९
दुर्जनेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वंति साधवः । नहि संहरते ज्योत्स्नां चंद्रश्चांडालवेश्मनः ।।२०
बाध्यमानोऽपि सुजनः सर्वेषां सुखकृद्भवेत् । ददाति परमां तुष्टिं भक्ष्यमाणोऽमरैःशशी ।।२१
दारितश्छन्न एवापि ह्यामोदेनैव चंदनः । सौरभं कुरुते सर्वं तथैव सुजनो जनः ।।२२
क्षान्त्या च तपसाचारैस्तद्गुणज्ञा मुनीश्वराः । संजातं शासितंलोकांस्त्वां विदुः पुरुषोत्तम ।।२३
नमो ब्रह्मन् मुने तुभ्यं नमस्ते ब्रह्ममूर्तये । नमो ब्रह्मण्यशीलाय ब्रह्मध्यानपराय च ।।२४
इति स्तुतो मुनिस्तेन प्रसन्नवदनस्तदा । वरं वरय चेत्याहं प्रसन्नोऽस्मि तवानघ ।।२५
एवमुक्ते तु मुनिना ह्यंशुमान्प्रणिपत्य तम् । प्रापयास्मत्पितृन्ब्राम्हं लोकमित्यभ्यभाषत ।।२६
ततस्तम्यातिसंतुष्टो मुनि प्रोवाच सादरम् । गंगामानीय पौत्रस्ते नयिष्यति पितृन्दिवम् ।।२७
त्वत्पौत्त्रेण समानीता गंगा पुण्यजला नदी । कृत्वैतान्धूतपापान्वै नयिष्यति परं पदम् ।।२८
प्रापयैनं हयं वत्स यतः स्यात्पूर्णमध्वरम् । पितामहांतिकं प्राप्य साश्वं वृत्तं न्यवेदयत् ।।२९
सगरस्तेन पशुना तं यज्ञं ब्राह्मणैः सह । विधाय तपसा विष्णुमाराध्याय पदं हरेः ।।३०
जज्ञे ह्यंशुमतः पुत्रो दिलीप इति विश्रुतः । तस्माद्भगीरथो जातो यो गंगामानयद्दिवः ।।३१
भगीरथस्य तपसा तुष्टो ब्रह्मा ददौ मुने । गंगां भगीरथायाथ चिंतयामास धारणे ।।३२

इस स्मृति-वाक्य का स्मरण कर उन्होंने अपने पौत्र अंशुमान को पुत्र-स्थान पर नियुक्त किया। तदुपरान्त सार-वेत्ता उस सगर ने विद्वानों में श्रेष्ठ, असमंजस-पुत्र को घोड़ा ढूँढ़ लाने के लिए नियुक्त किया। उस बिल-द्वार से (पाताल जाकर) मुनि-श्रेष्ठ, तेजोराशि, कपिल मुनि को देखकर असमंजस ने साष्टांग प्रणाम किया और सामने स्थित होकर हाथजोड़ विनयपूर्वक शांत-चित्त, देवाधि-देव, सनातन भगवान् से निवेदन किया ।।१०-१८।।

अंशुमान ने कहा—ब्रह्मन् ! हमारे पितृव्यों ने जो कुछ दुर्व्यवहार किया हो उसे क्षमा कीजिये, क्योंकि महात्मा लोग परोपकारी और क्षमाशील होते हैं। साधु लोग दुर्जनप्राणी पर भी दया करते हैं, जैसे चन्द्रमा अपनी किरणों को चांडाल के घरों से अलग नहीं करता है। पीड़ित होने पर भी सज्जन लोग सभी प्राणी के लिए सुखदायी ही होते हैं, जैसे देवताओं द्वारा पान करने पर भी चन्द्रमा उन्हे परम सन्तोष-प्रदान ही करता है। जिस प्रकार छिन्न होने पर भी चन्दन अपने गन्ध द्वारा काटने वाले को सुगन्धित करता है, उसी प्रकार सज्जन लोग भी अपकारी का उपकार ही करते हैं। पुरुषोत्तम ! क्षमा और तप-आचरण के ज्ञाता महर्षियों ने आपको लोक-शासनकर्ता ही माना है। ब्रह्मन ! मुने ! ब्रह्ममूर्ते ! तुम्हें नमस्कार है, हे ब्रह्मनिष्ठ ! ब्रह्म-ध्यान-निमग्न ! तुम्हें हमारा नमस्कार है ।।१६-२४।।

मुनि के इस प्रकार कहने पर उन्हें प्रणामकर अंशुमान ने कहा—हमारे पितरों की स्थिति ब्रह्म-लोक में कीजिए। असमंजस का निवेदन सुन महर्षि कपिल ने अत्यन्त प्रसन्न हो प्रसन्तापूर्वक कहा कि तुम्हारा पौत्र गंगा-द्वारा इन्हें स्वर्ग में स्थित करायेगा। तुम्हारे पौत्र द्वारा आयी हुई पुण्यसलिला गंगा इन लोगों के समस्त पापों को नष्टकर परम-पद प्रदान करायेंगी। वत्स ! यज्ञ-पूर्ण होने के लिए इस घोड़े को ले जाओ, अपने पितामह के समीप पहुँचकर असमंजस ने समस्त वृत्तान्त सुनाया। ब्राह्मणों के साथ सगर ने उस घोड़े के द्वारा अपना यज्ञ सम्पन्न किया और तप द्वारा भगवान् विष्णु की आराधना कर उत्तमलोक प्राप्त किया। राजा अंशुमान के दिलीप नामक पुत्र हुआ, दिलीप के स्वर्ग से गंगा लाने वाला भगीरथ नामक पुत्र हुआ।

ततश्च शिवमाराध्य तद्वारा स्वर्णदीं भुवम् । आनीय तज्जलैः स्पृष्ट्वा पूतान्निन्ये दिवं पितॄन् ॥३३
भगीरथान्वये जातः सुदासो नाम भूपतिः । तस्य पुत्रो मित्रसह सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥३४
वशिष्ठशापात्प्राप्तः स सौदासो राक्षसी तनूम् । गंगाविन्दु निषेकेण पुनर्मुक्तो नृपोऽभवत् ॥३५
इति श्रीबृहन्नारदीय पुराणतो गंगोत्पत्तौ अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

मुने ! भगीरथ के तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने भगीरथ को गंगा प्रदान किया । पुनः गंगा को धारण करने के लिए भगीरथ ने विचार किया । शिव की आराधना कर उनके द्वारा प्राप्त की हुई गंगा के जल का स्पर्श कराकर उसने अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्त कराया । उस राजा भगीरथ के सुदास नामक पुत्र हुआ, सुदास के समस्त संसार में विख्यात मित्रसह नामक पुत्र हुआ । वशिष्ठ-शाप द्वारा राक्षस शरीर धारण करने पर भी वह सुदास-पुत्र गंगा-बिन्दु से सेचन करने पर उस शरीर का त्यागकर फिर राजा हुआ ॥२५-३५॥

श्री बृहन्नारदीयपुराण से गंगोत्पत्ति के प्रसंग में आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

नवमोऽध्यायः

सनक उवाच

परकार्यं न ये मर्त्याः कायेनापि धनेन वा । मनसा वचसावापि ते ज्ञेयाः, पापकृत्तमाः ॥१
अत्रेतिहासं वक्ष्यामि श्रृणु नारद तत्त्वतः । यत्र दानादिकानां तु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥२
गंगामाहात्म्यसहितं सर्वपापप्रणाशनम् । भगीरथस्य धर्मस्य संवादं पुण्यकारणम् ॥३
आसीद्भगीरथो राजा सागरान्वयसंभवः । शशंस पृथिवीमेतां सप्तद्वीपां ससागराम् ॥४
सर्वधर्मरतो नित्यं सत्यसंधः प्रतापवान् । कंदर्पसदृशो रूपे यायजूको विचक्षणः ॥५
प्रालेयाद्रिसमा धैर्य धर्मे धर्मसमो नृपः । सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥६
सर्वसंपत्समायुक्तः सर्वानंदकरो मुने । आतिथ्यप्रयतो नित्यं वासुदेवार्चने रतः ॥७
पराक्रमी गुणनिधिर्मात्रः कारुणिकः सुधीः । एतादृशं तं राजानं ज्ञात्वा हृष्टे भगीरथम् ॥८
धर्मराजो द्विजश्रेष्ठः कदाचिद्द्रष्टुमागतः । समागतं धर्मराजमर्हयामास भूपतिः ॥९
शास्त्रदृष्टेन विधिना धर्मः प्रीत उवाच तम् ।

धर्मराज उवाच

राजन्धर्मविदां श्रेष्ठ प्रसिद्धोऽस्मि जगत्त्रये । धर्मराजोऽथ कीर्तिं ते श्रुत्वा त्वां द्रष्टुमागताः ॥१०
सन्मार्गनिरतं सत्यं सर्वभूतहिते रतम् । द्रष्टुमिच्छंति विबुधास्तवोत्कृष्टगुणप्रियाः ॥११
कीर्तिर्नीतिश्च संपत्तिर्वर्तते यत्र भूपते । वसंति तत्र नियतं गुणास्संतश्च देवताः ॥१२
अहो राजन्महाभाग शोभनं चरितं तव । सर्वभूतहितत्वादि मादृशामपि दुर्लभम् ॥१३
यदर्थमहमायातस्त्वत्समीपं जनाधिप । तत्ते वक्ष्यामि सुमते सावधानं निशामय ॥१४

सनक ने कहा—जो लोग मन, वाणी, शरीर और धन द्वारा परोपकार नहीं करते हैं उन्हें पापी जानना चाहिए । नारद ! दान आदि लक्षण विषयक एक इतिहास मैं तुमसे कह रहा हूँ, सुनो ! समस्त पाप-विनाशक गंगा माहात्म्य तथा भगीरथ-धर्म-संवाद भी उसी में संवद्ध है ।

सगर-कुल में भगीरथ नामक एक राजा थे, सातों सागर और सातों द्वीपों समेत समस्त पृथिवी पर उनका शासन था । मुने ! उन्हें निखिल धर्म-प्रेमी, सत्य-प्रतिज्ञ, प्रतापी काम के समान सुन्दर, याज्ञिक, बुद्धिमान, हिमालय के समान धैर्यशील, धर्मराज के समान धर्म-स्वरूप, समस्त लक्षण-सम्पन्न, अखिल शास्त्र के अर्थ-ज्ञाता, समस्त समृद्धिशाली, प्राणी मात्र को आनन्द-प्रदान करने वाले, नित्य अतिथि सेवी, भगवान् वासुदेव की अर्चना में निमग्न, पराक्रमी, गुण-निधि, कारुणिक, विद्वान् जानकर परम सन्तुष्ट हो एकबार धर्मराज ब्राह्मणरूप धारणकर दर्शन के निमित्त उनके यहाँ उपस्थित हुए । राजा ने धर्मराज की पूजा की । प्रसन्न होकर धर्मराज ने उनसे शास्त्र सम्मत वचन निवेदन किया ॥१-९॥

धर्मराज ने कहा—राजन् ! धार्मिकों में श्रेष्ठ ! तीनों लोको में आपकी ख्याति है, अतः कीर्ति सुनकर देखने के लिए धर्मराज का आगमन हुआ है । सन्मार्गगामी, सत्य-भाषी, समस्त जीवों के हितैषी तुम्हारे गुणों-द्वारा आकृष्ट हो-कर देवतालोग भी तुम्हारा दर्शन चाहते हैं । राजन् ! जिस स्थान पर कीर्ति, नीति तथा संपत्ति का वास रहता है वहाँ पर निश्चय ही देवता, समस्त गुण और महात्मा लोग रहते हैं । राजन् ! महाभाग ! आपका चरित्र अति सुन्दर है क्योंकि समस्त जीवों का हितैषीपन गुण तो हम लोगों में भी दुर्लभ है । नृप ! तुम्हारे यहाँ जिस प्रयोजन के लिए मैं आया हूँ, सुमते ! उसे कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो । राजन् ! आत्मघाती, पापी, कपिल के कोप से जले हुए

आत्मघातकपाप्मानो दग्धाः कपिलकोपतः। वसंति नरके ते तु राजस्तव पितामहाः ॥१५
तानुद्धर महाभाग गंगानयनकर्मणा। गंगा सर्वाणि पापानि नाशयत्येव भूपते ॥१६
केशास्थिनखदंताश्च भस्मापि नृपसत्तम। नयंति विष्णुसदनं स्पृष्ट्वा गांगेन वारिणा ॥१७
यस्यास्थि भस्म वा राजन् गंगायां क्षिप्यते नरैः। स सर्वपापनिर्मुक्तः प्रयाति भवनं हरेः ॥१८
यानि कानि च पापानि प्रोक्तानि तव भूपते। तानि सर्वाणि नश्यंति गंगाबिंद्वभिषेचनात् ॥१९

सनक उवाच

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूल महाराजं भगीरथम्। धर्मात्मानं धर्मराजः सद्यश्चांतर्दधे तदा ॥२०
स तु राजा महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रार्थपारगः। निक्षिप्य पृथवीं सर्वां सचिवेषु ययौ वनम् ॥२१
तुहिनाद्रौ ततो गत्वा नरनारायणाश्रमात्। पश्चिमे तुहिनाक्रांते शृंगे षोडशयोजने ॥२२
तपस्तप्त्वानयामास गंगां त्रैलोक्यपावनीम् ॥२३

नारद उवाच

हिमवद्गिरिमासाद्य किं चकार महीपतिः। कथमानीतवान्गंगामेतन्मे वक्तुमर्हसि ॥२४

सनक उवाच

भगीरथो महाराजो जटाचीरधरो मुने। गच्छन्हिमाद्रिं तपसे प्राप्तो गोदावरीतटम् ॥२५
तत्रापश्यन्महारण्ये भृगोराश्रममुत्तमम्। कृष्णसारसमाकीर्णं मातंगगणसेवितम् ॥२६
भ्रमद्भ्रमरसंपुष्टं कूजद्विहगसंकुलम्। व्रजद्वराहनिकरं चमरीपुच्छवीजितम् ॥२७
नृत्यन्मयूरनिकरं सारंगादिनिषेवितम्। प्रवर्द्धितमहावृक्षं मुनिकन्याभिरादरात् ॥२८
शालतालतमालाढ्यं नूर्नाहितालमंडितम्। मालती यूथिकाकुंदचंपकाश्वत्थभूषितम् ॥२९

तुम्हारे पितामह लोग नरकवास कर रहे हैं। महाभाग ! गंगा को लाकर उन्हीं द्वारा उनका उद्धार करो। राजन् ! गंगा समस्त पापों का नाश करती हैं। नृप सत्तम ! केश, नख, अस्थि, दाँत, भस्म आदि में से किसी का भी गंगा-जल के साथ स्पर्श होने से जीव विष्णु-भवन पहुँचता है। राजन् ! जिस प्राणी की अस्थि या भस्म गंगा में डाली जाती है वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णु-भवन को प्रस्थान करता है। भूपते ! मेरे कहे हुए ये समस्त पाप गंगा-जल विंदु से अभिषिक्त होने पर नष्ट हो जाते हैं।

सनक ने कहा---मुनि शार्दूल ! महाराज भगीरथ से इस प्रकार कहकर धर्मराज शीघ्र अन्तर्धान हो गये। समस्त शास्त्र-अर्थ-पारगामी, महाबुद्धिमान् राजा ने पृथिवी (राज्य) का समस्तभार मंत्रियों पर रखकर वन को प्रस्थान किया और हिमालय पर्वत पर जाकर नर-नारायण के पश्चिम सोलह योजन वाले हिमालय-शिखर पर तप करके तीनों लोकों को पवित्र करने वाली गंगा को प्राप्त किया। ॥१०-२३॥

नारद ने कहा---राजा भगीरथ ने हिमालय पर जाकर क्या किया ? और किस प्रकार गंगा को पृथ्वीतल पर अवतारित किया ? इसे बताइये !

सनक ने कहा---मुनिवर ! इस प्रकार जटा-चीर धारणकर राजा भगीरथ तपस्या के लिए हिमालय जाते हुए गोदावरी के तटपर पहुँचे और वहाँ पर उन्होंने एक अति घोर वन में मृग-गण और हाथियों द्वारा सेवित महर्षि भृगु का आश्रम देखा। उस आश्रम में चारों ओर भ्रमर गुंजार कर रहे थे, पक्षियों का मनोरम कलरव हो रहा था, सुअर दौड़ रहे थे; चमरी गायें पूँछ हिलाती हुई इधर-उधर घूम रही थीं। मोर-गण नाच रहे थे, सारंग आदि पक्षी बोल रहे थे, मुनि की कन्याओं द्वारा सादर सींचकर बढ़ाये हुए बड़े-बड़े वृक्ष स्थित थे, साखू, ताड़ और तमाल के वृक्षों की अधिकता थी, शहतूत, हिंताल, चमेली, जूही, कनेर, चम्पा और पीपल के वृक्षों से वह आश्रम अधिक सुशोभित हो रहा था, चारों ओर सुन्दर फूल खिले हुए थे, महर्षिगण विराजमान थे, उच्च स्वर से वेद-शास्त्र की ध्वनि हो रही थी,

उत्फुल्लकुसुमोपेतं ऋषिसंघनिषेवितम् । वेदशास्त्रमहोघोषमाश्रमं प्राविशद्भृगोः ।।३०
गृणंतं परमं ब्रह्म वृतं शिष्यगणैर्मुनिम् । तेजसा सूर्यसदृशं भृगुं तत्र ददर्श सः ।।३१
प्रणनामाथ विप्रेंद्रं पादसग्रहणादिना । आतिथ्यं भृगुरप्यस्य चक्रे सन्मानपूर्वकम् ।।३२
कृतातिथ्यक्रियो राजा भृगुणा परमर्षिणा । उवाच प्रांजलिर्भूत्वा विनयान्मुनिपुंगवम् ।।३३

भगीरथ उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । पृच्छामि भवभीतोऽहं नृणामुद्धारकारणम् ।।३४
भगवांस्तुष्यते येन कर्मणा मुनिसत्तम । तन्ममाख्याहि सर्वज्ञ अनुग्राह्योऽस्मि ते सदा ।।३५

भृगुरुवाच

राजंस्तवेप्सितं ज्ञातं त्वं हि पुण्यवतां वरः । अन्यथा स्वकुलं सर्वं कथमुद्धर्तुमर्हसि ।।३६
यो वा को वापि भूपाल स्वकुलं शुभकर्मणा । उद्धर्तुकामस्तं विद्यान्नतररूपधरं हरिम् ।।३७
कर्मणा येन देवेशो नृणामिष्टफलप्रदः । तत्प्रवक्ष्यामि राजेन्द्र श्रृणुष्व सुसमाहितः ।।३८
भव सत्यपरो राजन्नहिंसानिरतस्तथा । सर्वभूतहितो नित्यं मानृतं वद वै क्वचित् ।।३९
त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् । कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर विष्णुं सनातनम् ।।४०
कुरु पूजां महाविष्णोर्याहि शांतिमनुत्तमाम् । द्वादशाष्टाक्षरं मंत्रं जप श्रेयो भविष्यति ।।४१

भगीरथ उवाच

सत्यं तु कीदृशं प्रोक्तं सर्वभूतहितं मुने । अनृतं कीदृशं प्रोक्तं दुर्जनाश्चापि कीदृशाः ।।४२
साधवः कीदृशा प्रोक्तास्तथा पुण्यं च कीदृशम् । स्मर्तव्यश्च कथं विष्णुस्तस्य पूजा च कीदृशी ।।४३

महर्षिभृगु के ऐसे रमणीक आश्रम में राजा ने प्रवेश किया और वहाँ शिष्यगणों के साथ में परब्रह्म की चर्चा में निरत सूर्य के समान तेजस्वी महर्षि भृगु को देखा ।।२४-३१।।

वहाँ पहुँचकर राजा ने उन ब्राह्मण-श्रेष्ठ का चरण स्पर्शकर प्रणाम किया, भृगु ने भी सम्मानपूर्वक राजा का यथोचित अतिथि सत्कार किया । परमऋषि भृगु के अतिथि-सत्कार से सत्कृत होकर राजा ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक, मुनि-श्रेष्ठ भृगु से कहना आरम्भ किया ।

भगीरथ ने कहा—भगवन् ! समस्त धर्मों के जानने वाले ! समस्त शास्त्रों में कुशल ! संसार से डरा हुआ मैं मनुष्यों के उद्धार का कारण पूछ रहा हूँ । मुनिवर ! यदि आप मुझपर अनुग्रह करना चाहते हैं तो जिस कर्म द्वारा भगवान् सदा प्रसन्न रहते हैं उसे मुझसे कहिये ।

भृगु ने कहा—राजन् ! तुम्हारे मनोरथ को मैंने जान लिया, तुम पुण्यवान् लोगों में श्रेष्ठ हो, नहीं तो अपने कुल के उद्धार का विचार क्यों करते ? राजन् ! जो कोई शुभ-कर्म द्वारा अपने कुल के उद्धार की इच्छा करता है, मनुष्य-रूप धारण किए हुए उसे भगवान् समझना चाहिए । राजेन्द्र ! जिस कर्म द्वारा प्रसन्न होकर देवाधीश भगवान् मनुष्यों का मनोरथ सफल करते हैं, उसे मैं कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो ! सत्य-परायण हो, हिंसा की इच्छा कभी न करो, समस्त जीवों के हितैषी बनो, कहीं पर कभी भी झूठ न बोलो, दुष्टों का साथ मत करो, सज्जनों की संगति करो, पुण्य करो, दिन रात सनातन विष्णु भगवान् का स्मरण करो । महाविष्णु की पूजा करो, जिससे उत्तम शान्ति मिले, और द्वादशाक्षर या अष्टाक्षर मंत्र का जप करो अवश्य तुम्हारा कल्याण होगा ।।३२-४१।।

भगीरथ ने कहा—मुने ! सत्य किसे कहते हैं, समस्त जीवों का कल्याण किस प्रकार किया जाता है, असत्य का क्या लक्षण है, दुर्जन कौन हैं । महात्माओं का क्या लक्षण है, किसे पुण्य कहते हैं, विष्णु भगवान का स्मरण कैसे

शांतिश्च कीदृशी प्रोक्ता को मंत्रोऽष्टाक्षरो मुने। को वाद्वादशवर्णाश्च मुने तत्त्वार्थकोविद ॥४४
कृपां कृत्वा मयि परां सर्वे व्याख्यातुमर्हसि।

भृगुरुवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ तव बुद्धिरनुत्तमा ॥४५
यत्पृष्टोऽहं त्वया भूप तत्सवं प्रवदामि ते। यथाथकथनं यत्तत्सत्यमाहुर्विपश्चितः ॥४६
धर्माविरोधतो वाच्यं तद्धि धर्मपरायणैः। देशकालादिविज्ञाय स्वयमस्यविरोधतः ॥४७
यद्वचः प्रोच्यते सभ्दिस्तत्सत्यमभिधीयते। सर्वेषामेव जन्तूनामक्लेशजननं हि तत् ॥४८
अहिंसा सा नृप प्रोक्ता सर्वकामप्रदायिनी। कर्मकार्यसहायत्वमकार्यपरिपंथिता ॥४९
सर्वलोकहितत्वं वै प्रोच्यते धर्मकोविदैः। इच्छानुवृत्तकथनं धर्माधर्मविवेकिनः ॥५०
अनृतं तद्धि विज्ञेयं सर्वश्रेयोविरोधि तत्। ये लोके द्वेषिणो मूर्खाः कुमागरतबुद्धयः ॥५१
ते राजन् दुर्जना ज्ञेयाः सर्वधर्मवहिष्कृताः। धर्माधर्मविवेकेन वेदमार्गानुसारिणः ॥५२
सर्वलोकहितासक्ताः साधवः परिकीर्तिताः। हरिभक्तिकरं यत्तत्सभ्दिश्च परिरंजितम् ॥५३
आत्मनः प्रीतिजनकं तत्पुण्यं परिकीर्तितम्। सर्वं जगदिदं विष्णुः विष्णुः सर्वस्य कारणम् ॥५४
अहं च विष्णुर्यज्ज्ञानं तद्विष्णुस्मरणं विदुः। सर्वदेवमयो विष्णुर्विधिना पूजयामि तम् ॥५५
इति या भवति श्रद्धा सा तद्भक्तिः प्रकीर्तिता। सर्वभूतमयोविष्णुः परिपूर्णाः सनातनः ॥५६
इत्यभेदेन या बुद्धिः सा मता सा प्रकीर्तिता। समता शत्रुमित्रेषु वशित्वं च तथा नृप ॥५७
यदृच्छालाभसंतुष्टिः सा शान्तिः परिकीर्तिता। एते सर्वे समाख्यातास्तपःसिद्धिप्रदा नृणाम् ॥५८
समस्तपापराशीनां तरसा नाशहेतवः। अष्टाक्षरं महामंत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥५९
वक्ष्यामि तव राजेन्द्र पुरुषार्थैकसाधनम्। विष्णोः प्रियकरं चैव सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥६०
नमोनारायणायेति जपेत्प्रणवपूर्वकम्। नमो भगवते प्रोच्य वासुदेवाय तत्परम् ॥६१
प्रणवाद्यं महाराज द्वादशाणमुदाहृतम्। द्वयोः समं फलं राजन्नष्टद्वादशवर्णयोः ॥६२

किया जाता है और उनकी पूजा किस भाँति होती है, मुने! शांति का क्या स्वरूप है, अष्टाक्षर मंत्र कौन है, तत्त्व जानने वाले पंडित! मुने! द्वादशाक्षर मंत्र का वर्णन भी कृपाकर मुझसे कहिये ॥४२-४५॥

भृगु ने कहा—महा बुद्धिमान्! धन्य हो, धन्य हो! तुम्हारी बुद्धि अति उत्तम है। राजन्! जो कुछ तुमने पूछा है, मैं विस्तारपूर्वक सब कह रहा हूँ। विद्वानों ने यथार्थ कहने को सत्य कहा है, धर्म-परायण मनुष्य को धर्म के प्रतिकूल न कहना चाहिए, देश और काल का ज्ञान रखते हुए धर्म के अनुकूल जो वाणी विद्वानों ने कही है; उसे सत्य कहते हैं, वह समस्त जीवों को सुखी बनाती है। नृप! अच्छे कार्यों की सहायता, बुरे कार्यों के त्याग को अहिंसा कहते हैं, उससे समस्त कामनायें सफल होती हैं। धर्म और अधर्म का ज्ञान रखने वाले प्राणी के इच्छानुकूल कहने को धार्मिक पंडित लोग सभी जीवों का कल्याणकारी मानते हैं। समस्त कल्याण के विरोधी को असत्य जानो, संसार में अकारण द्वेष करने वाले मूर्ख, कुमार्गगामी को दुर्जन जानो। राजन्! उन्हें समस्त धर्मों से बहिष्कृत समझो। धर्म और अधर्म का ज्ञान रखते हुए वेद-मार्ग का अनुसरण करने वाले समस्त लोकों के हितैषी को साधु कहते हैं, जो भगवद्-भक्ति करने वाला हो, सज्जनों का मनोरंजन करने वाला हो, तथा आत्मा को प्रसन्न करने वाला हो उसे पुण्य कहते हैं। यह विष्णुस्वरूप है, भगवान् विष्णु ही एकमात्र समस्त चराचर जगत् के कारण हैं और मैं भी विष्णुस्वरूप हूँ, ऐसे निर्मल-ज्ञान को विष्णु स्मरण कहा गया है। विष्णु भगवान् सर्वदेव मय हैं। मैं उनकी विधिवत् पूजा करूँगा, इस प्रकार की उत्पन्न श्रद्धा को भक्ति कहते हैं। संसार के समस्त प्राणी विष्णुस्वरूप हैं, परिपूर्ण और सनातन हैं। ऐसी

प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च साम्यमुद्दिष्टमेतयोः । शंखचक्रधरं शांतं नारायणमनामयम् ॥६३
लक्ष्मीसंश्रितवामांकं तथा भयकरं प्रभुम् । किरीटकुंडलधरं नानामंडलशोभितम् ॥६४
भ्राजत्कौस्तुभमालाढ्यं श्रीवत्सांकितवक्षसम् । पीताम्बरधरं देवं सुरासुरनमस्कृतम् ॥६५
ध्यायेदनादिनिधनं सर्वकामफलप्रदम् । अंतर्यामी ज्ञानरूपी परिपूर्णः सनातनः ॥६६

इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणतो गंगोत्पत्तौ नवमोऽध्यायः ॥९

भेदरहित बुद्धि का नाम राजन् ! शत्रु और मित्र में समता समान होनी चाहिए सर्वदा इन्द्रियों को अपने अधीन रखो। जो कुछ मिल जाय, उसमें सन्तोष करो यही शांति कहलाती है; ये सभी मनुष्यों का तप सिद्ध करते हैं। अष्टाक्षर मंत्र महामंत्र है और समस्त पाप समूहों के नाश का कारण है। राजन् ! यह पुरुषार्थ का एकमात्र साधन है, भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाला तथा समस्त सिद्धि प्रदान करने वाला है। मैं तुमसे कह रहा हूँ 'नमो नारायणाय' यही उसका स्वरूप है। आदि में प्रणव (ओं) लगाकर जप करना चाहिए। 'नमो भगवते' कहकर 'वासुदेवाय' का उच्चारण करे। महाराज ! इसके आदि में भी प्रणव (ओं) का प्रयोग करने से यह 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' द्वादशाक्षर कहा जाता है। राजन् ! अष्टाक्षर और द्वादशाक्षर मंत्र का समान फल है। प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग में भी इसकी समानता है। शंख-चक्र-धारी, शांत, अनामय, वाम भाग में लक्ष्मी से सुशोभित, अभय करने वाले, व्यापक, किरीट और कुण्डल धारण किये और समस्त आभूषणों से विभूषित, कौस्तुभ मणि युक्त सुन्दर माला पहिने, वक्षःस्थल में श्रीवत्स धारण करने वाले, देवता और राक्षसों से वन्दित, जन्म-मरण रहित, समस्त कामनाओं को सफल करने वाले, अन्तर्यामी, ज्ञान-स्वरूप, परिपूर्ण, सनातन भगवान् के ऐसे मनोहर स्वरूप का ध्यान करना चाहिए ॥४६-६६॥

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गंगोत्पत्ति के प्रसंग में नवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

दशमोऽध्यायः

भृगुरुवाच

एतत्सर्वं समाख्यातं यत्तु पृष्टं त्वया नृप । स्वस्ति तेऽस्तु तपः सिद्धिं गच्छ लब्धुं यथासुखम् ॥१
एवमुक्तो महीपालो भृगुणा परमर्षिणा । परमां प्रीतिमापन्नः प्रपेदे तपसे वनम् ॥२
हिमवद्गिरिमासाद्य पुण्यदेशे मनोहरे । नादेश्वरे महाक्षेत्रे तपस्तेपेऽतिदुश्चरम् ॥३
राजा त्रिषवस्नायी कंदमूलफलाशनः । कृतातिथ्यर्हणश्चापि नित्यं होमपरायणः ॥४
सर्वभूतहितः शांतो नारायणपरायणः । पत्रैः पुष्पैः फलैः स्तोयैस्त्रिकालं हरिपूजक ॥५
एवं बहुतिथं कालं नीत्वा चात्यंतधैर्यवान् । ध्यायन्नारायणं देवं शीर्णपर्णाशनोऽभवत् ॥६
प्राणायामपरो भूत्वा राजा परमधार्मिकः । निरुच्छ्वासं तपस्तप्तुं ततः समुपचक्रमे ॥७
ध्यायन्नारायणं देवमनंतमपराजितम् । षष्टिवर्षसहस्राणि निरुच्छ्वासपरोऽभवत् ॥८
तस्य नासापुटाद्राज्ञो वह्निर्जज्ञे भयंकरः । तं दृष्ट्वा देवताः सर्वे वित्रस्ता वह्नितापिताः ॥९
अभिजग्मुर्महाविष्णुं यत्रास्ते जगतांपतिः । क्षीरोदस्योत्तरं तीरं संप्राप्य त्रिदशेश्वराः ॥१०
स्तुवन्देवदेवेशंशरणागत पालकम् ।

देवा ऊचुः

नताः स्म विष्णुं जगदेकनाथं स्मरत्समस्तार्तिहरं परेशम् ॥११
स्वभावशुद्धं परिपूर्णभावं वदंति यज्ज्ञानतनुं च तज्ज्ञाः ।
ध्येयः सदा योगिवरैर्महात्मा स्वेच्छाशरीरैः कृतदेवकार्यः ॥१२॥

भृगु ने कहा—राजन् ! तुमने जो कुछ पूछा था, मैंने उसका विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया, तुम्हारा कल्याण हो, अब जाकर तप-सिद्ध करो जिससे सर्वदा सुखी बने रहो। महर्षि भृगु के इस प्रकार कहने पर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और तप करने के लिए वन को प्रस्थान किया। हिमालय पर्वत पर पहुँचकर राजा ने पवित्र और सुन्दर नादेश्वर नामक अतिविशाल क्षेत्र में अत्यन्त घोर तप करना आरंभ किया। राजा तीनों काल स्नान करते थे, कंद-मूल-फल का भोजन करते थे, अतिथि-सत्कार और नित्य हवन करते थे, सर्व भक्तों के हितैषी तथा शात होकर एकमात्र नारायण में लीन हो पत्र, पुष्प, फल और जल द्वारा तीनों काल भगवान् की पूजा करते थे ॥१-५॥

इस प्रकार बहुत काल व्यतीत कर अत्यन्त धैर्यशाली राजा नारायण देव का ध्यान करते हुए केवल सूखे और पुराने पत्तों का भोजन करने लगे। तदुपरान्त धर्मधुरन्धर उस राजा ने प्राणायाम करते हुए निःश्वास को सर्वदा के लिए रोककर तप करना आरंभ किया। इस प्रकार अजेय, अनन्त भगवान् का ध्यान करते हुए साठ हजार वर्ष तक निःश्वास का अवरोध किया। तदनन्तर राजा के नासिका-छिद्र से भयंकर अग्नि निकली। उसे देखकर विस्मित तथा संतप्त देवता लोग जगत्पति महाविष्णु जहाँ विराजमान थे, वहाँ पहुँचे। क्षीर-सागर के उत्तर तट पर जाकर देवताओं ने शरणागतरक्षक और देवाधीश भगवान् की स्तुति करना आरंभ किया ॥६-१०॥

देवताओं ने कहा—संसार के एकमात्र स्वामी विष्णु भगवान् को हम नमस्कार करते हैं, जो स्मरणमात्र से समस्त दुःखों का अपहरण करते हैं, और पराधीश रूप है। ज्ञानी लोग आपको अत्यन्त शुद्ध और पूर्णस्वरूप कहते हैं;

जगत्स्वरूपो जगदादिनाथस्तस्मै नताः स्म पुरुषोत्तमाय ।
यन्नामसंकीर्त्तनतोऽखिलानि समस्तपापानि लयं प्रयान्ति ॥१३
तमीशमीड्यं पुरुषं पुराणं नताः स्म विष्णुं पुरुषार्थसिद्धयै ।
यत्तेजसा भांति दिवाकराद्या नातिक्रमंत्यस्य कदापि शिक्षा ॥१४
कालात्मकं तं त्रिदशाधिनाथं नमामहे वै पुरुषार्थरूपम् ।
जगत्करोत्यब्जभवोऽतिरुद्र पुनाति लोकाञ्छ्रुतिभिश्च विप्राः ॥१५
तमादिदेवं गुणसन्निधानं सर्वोपदेष्टारमिताः शरण्यम् ।
वरं वरेण्यं मधुकैटभारिं सुरासुराभ्यर्थितपादपीठम् ॥१६
सद्भक्तसंकल्पितसिद्धिहेतुं ज्ञानैकवेद्यं प्रणताः स्म देवम् ।
अनादिमध्यांतमजं परेशमनाद्यविद्याख्यतमोविनाशम् ॥१७
सच्चित्परानंदघनस्वरूपं रूपादिहीनं प्रणताः स्म देवम् ।
नारायणं विष्णुमनंतमीशं पीताम्बरं पद्मभवादिसेव्यम् ॥१८
यज्ञप्रियं यज्ञकरं विशुद्धं नताः स्म सर्वोत्तममव्ययं तम् ।
इति स्तुतो महाविष्णुर्देवैरिंद्रादिभिस्तदा ॥१९
चरितं तस्य राजर्षेर्देवानां संन्यवेदयत् । ततो देवान् समाश्वास्य दत्त्वाभयमनंजनः ॥२०
जगाम यत्र राजर्षिस्तपस्तपति नारद । शंखचक्रधरो देवः सच्चिदानंदविग्रहः ॥२१
प्रत्यक्षता मगात्तस्य राज्ञः सर्वजगद्गुरुः । तं दृष्ट्वा पुंडरीकाक्ष माभाषितदिगंतरम् ॥२२
अतसीपुष्पसंकाशं स्फुरत्कुंडलमंडितम् । स्निग्धकुंतलवक्त्राब्जं विभ्राजन्मुकुटोज्ज्वलम् ॥२३

बड़े-बड़े योगी आपका सर्वदा ध्यान करते हैं, आप अपनी इच्छा से शरीर धारणकर देवताओं का कार्य करते हैं। आप जगत्स्वरूप हैं और जगत् के आदि कारण हैं, ऐसे पुरुषोत्तम को हम नमस्कार करते हैं; जिनके नाम का संकीर्तन करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। जिनके तेज से सूर्य आदि प्रकाशित होते हैं, जिनके वाक्यों का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता है, उन पुराण-पुरुष भगवान् विष्णु को अपनी अर्थसिद्धि के लिए हम नमस्कार करते हैं। जो ब्रह्मा होकर जगत् का सर्जन करते हैं, रुद्र रूप से जगत् का संहार करते हैं और ब्राह्मण रूप से श्रुतियों द्वारा लोक को पवित्र करते हैं, ऐसे कालात्मक, देवाधीश तथा पुरुषार्थ रूप विष्णु को हम नमस्कार करते हैं। जो आदि देव हैं, गुण-निधि हैं, सर्वोपदेष्टा हैं, शरण लेने के योग्य हैं, सुन्दरों से सुन्दर हैं मधु कैटभ का संहार करने वाले हैं, देवता और राक्षस जिनके चरण-कमल की पूजा करते हैं, जो आदि, मध्य तथा अंत रहित हैं, अजन्मा हैं, पराधीश हैं, अविद्या रूपी अंधकार का नाश करते हैं, सच्चिदानन्द घनस्वरूप हैं और रूपादिहीन भी हैं, उन्हें हम प्रणाम करते हैं। जो नारायण, विष्णु, अनंत, सर्वेश्वर, पीताम्बरधारी हैं, ब्रह्मादिक देवता जिनकी सेवा करते हैं, उन यज्ञ-प्रिय यज्ञकर्त्ता, अत्यन्त विशुद्ध, सर्वोत्तम अव्यय भगवान् को हम नमस्कार करते हैं। इन्द्र आदि देवताओं ने इस प्रकार महाविष्णु की आराधना की ॥११-१९॥

तदुपरान्त निरंजन भगवान् ने राजर्षि भगीरथ का चरित्र देवताओं से कहकर उन्हें धैर्य और अभय प्रदान किया। नारद जी ! जहाँ राजर्षि भगीरथ तप कर रहे थे वहाँ शंख-चक्रधारी भगवान् सच्चिदानन्द जगद्गुरु पहुँचे।

कमल के समान नेत्र वाले, अपने प्रकाश से दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले, अलसी के पुष्प के समान श्यामल रंग तथा चीकने और कोमल केशों से शोभायमान थे, कमल के समान उनका मुख अति सुन्दर था, चमकते हुए मुकुट की किरणों द्वारा वे उज्ज्वल दिखाई पड़ रहे थे, श्रीवत्स और कौस्तुभ मणि से सुशोभित थे, वन-

श्रीवत्सकौस्तुभधरं वनमालाविभूषितम् । दीर्घबाहु मुदारांगं लोकेशार्चितपंकजम् ॥२४
ननाम दंडवद्भूमौ भूपतिर्नम्रकंधरः । अत्यंतहर्षसंपूर्णः सरोमांचः सगद्गदः ॥२५
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति श्रीकृष्णेति समुच्चरन् । तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा ह्यंतर्यामी जगद्गुरुः ॥२६
उवाच कृपयाविष्टोभगवान्भूतभावनः ।

श्रीभगवानुवाच

भगीरथ महाभाग तवाभीष्टं भविष्यति ॥२७
आगमिष्यंति मल्लोकं तव पूर्वपितामहाः । मम मूर्त्यन्तरं शम्भुं राजन्स्तोत्रैः स्वशक्तितः ॥२८
स्तुहि ते सकलं कामं स वै सद्यः करिष्यति । यस्तु जग्राह शशिनं शरणं समुपागतम् ॥२९
तस्मादाराधयेशान स्तोत्रैः स्तुत्यं सुखप्रदम् । अनादिनिधनो देवः सर्वकामफलप्रदः ॥३०
त्वया संपूजितो राजन् सद्यः श्रेयो विधास्यति । इत्युक्त्वा देवदेवेशो जगतां पतिरच्युतः ॥३१
अंतर्दधे मुनिश्रेष्ठ उत्तस्थौ सोऽपि भूपतिः । किमिदं स्वप्न आहोस्वित्सत्यं साक्षाद्द्विजोत्तम ॥३२
भूपतिर्विस्मयं प्राप्तः किं करोमीति विस्मितः । अथांतरिक्षे वागुच्चैः प्राह तं भ्रांतचेतसम् ॥३३
सत्यमेतदिति व्यक्तं न चिंतां कर्तुमर्हसि । तन्निशम्यावनीपाल ईशानं सर्वकारणम् ॥३४
समस्तदेवताराजमस्तौषीद्भक्तितत्परः । प्रणमामि जगन्नाथं प्रणतार्तिप्रणाशनम् ॥३५
प्रमाणागोचरं देवमीशानं प्रणयात्मकम् । जगद्रूपमजं नित्यं सर्गस्थित्यंतकारणम् ॥३६
विश्वरूपं विरूपाक्षं प्रणतोऽस्म्युग्ररेतसम् । आदिमध्यांतरहितमनंतमजमव्ययम् ॥३७

माला से विभूषित थे, विशाल भुजायें थीं, उदार मनोहर अंग था, लोकपति गण उनके चरण-कमलों की पूजा करते थे, ऐसे मनोहर रूपधारी भगवान् को देखकर राजा ने शिर को झुकाये भूमि में पड़कर दण्डवत् किया। और अत्यन्त हर्षित तथा रोमांचित गद्गद वाणी द्वारा श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण ! इस प्रकार उच्चस्वर से उच्चारण करने लगे। जगद्गुरु, अन्तर्यामी, जीवों को उत्पन्न करने वाले भगवान् ने प्रसन्नहोकर कृपालु-भाव से कहा ॥२०-२६॥

श्री भगवान् ने कहा—महाभाग भगीरथ ! तुम्हारा मनोरथ सफल होगा, तुम्हारे (पूर्वज) पितामह लोग मेरेलोक में निवास करेंगे, किन्तु राजन् ! अपनी शक्ति के अनुसार स्तोत्र द्वारा श्री शंकर जी की आराधना करो ? वे मेरी दूसरी मूर्ति हैं, तुम्हारे समस्त मनोरथ को वे शीघ्र सफल करेंगे, जिसने शरण में आये हुए चन्द्रमा को उत्तम स्थान प्रदान किया है, ऐसे शंकर देव की मनोहर स्तोत्रों द्वारा तुम आराधना करो। राजन् ! जन्म-मरण रहित तथा समस्त कामनाओं को सफल करने वाले (शिव) देव तुम्हारे द्वारा पूजित होने पर शीघ्र ही तुम्हारा कल्याण करेंगे। मुनिश्रेष्ठ ! देवाधीश्वर, जगन्नाथ, अच्युत भगवान् इस प्रकार कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। तदुपरान्त राजा भगीरथ पृथ्वी से उठे और विचार करने लगे कि यह स्वप्न है या वस्तुतः सत्य है।

ब्राह्मणश्रेष्ठ ! राजा को महान् आश्चर्य हुआ, विस्मित होकर कहने लगे कि मैं क्या करूँ ? उसी समय भ्रांतचित्त राजा से आकाशवाणी ने कहा—राजन् ! यह सब सत्य है इसमें किसी प्रकार की चिन्ता न करो इसे सुनकर राजा ने समस्त जगत् के एकमात्र कारण, देवाधीश शंकर देव की आराधना भक्तिपूर्वक करना आरम्भ किया ॥२७-३४॥

भगीरथ ने कहा—भक्तों के समस्त दुःखों का नाश करने वाले जगत्पति को मैं नमस्कार करता हूँ, अनुमानादि प्रमाणों से अगोचर, प्रणवरूप, जगत् रूप, सर्जन, पालन और विनाश करने वाले अजन्मा, ईशान देव, उग्र तेजधारी विश्व-रूप विरूपाक्ष को मैं नमस्कार करता हूँ। जो आदि, मध्य, अन्त रहित हैं, अनन्त हैं, अजन्मा हैं, अव्यय हैं, ऐसा जिन्हें महान योगी लोग समझते हैं उन पुष्टिवर्धन भगवान् की मैं वन्दना करता हूँ। लोकाधीश्वर, अपनी माया

समामनंति योगींद्रास्तं वन्दे सुष्टिवर्धनम् । नमोलोकाधिनाथाय वंचते परिवंचते ॥३८
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय पशूनां पतये नमः । नमश्चैतन्यरूपाय पुष्टानां पतये नमः ॥३६
नमः कल्पप्रकल्पाय भूतानां पतये नमः । नमः पिनाकहस्ताय शूलहस्ताय ते नमः ॥४०
नमः कपालहस्ताय पाशमुद्गरधारिणे । नमस्ते सर्वभूताय घंटहस्ताय ते नमः ॥४१
नमः पंचास्यदेवाय क्षेत्राणां पतये नमः । नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते ॥४२
अनेकरूपरूपाय निर्गुणाय परात्मने । नमोगणाधिदेवाय गणानां पतये नमः ॥४३
नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यपतये नमः । हिरण्यरेतसे तुभ्यं नमो हिरण्यबाहवे ॥४४
नमो ध्यानस्वरूपाय नमस्ते ध्यानसाक्षिणे । नमस्ते ध्यानसंस्थाय ध्यानगम्याय ते नमः ॥४५
येनेदं विश्वमखिलं चराचरविराजितम् । वर्षेवाभ्रेण जनितं प्रधानपुरुषात्मना ॥४६
स्वप्रकाशं महात्मानं परं ज्योतिः सनातनम् । यमामनंति तत्त्वज्ञाः सवितारं नृचक्षुषाम् ॥४७
उमाकांतं नन्दिकेश नीलकंठं सदाशिवम् । मृत्युजयं महादेवं परात्परतरं विभुम् ॥४८
परे शब्दे ब्रह्मरूपं त वंदेऽखिलकारणम् । कर्पादिने नमस्तुभ्यं सद्योजाताय वै नमः ॥४६
भवोद्भवाय शुद्धाय ज्येष्ठाय च कनीयसे । मन्यवे त इषे त्रय्यापतये यज्ञतंतवे ॥५०
ऊर्जे दिशां च पतये कालायाघोररूपिणे । कृशानुरेतसे तुभ्यं नमोऽस्तु सुमहात्मने ॥५१
यतः समुद्राः सरितोऽद्रयश्च गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः ।
स्थाणुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च असच्च सज्जीवमजीवमास ॥५२
नतोऽस्मि तं योगिनतांघ्रिपद्मं सर्वान्तिरात्मानमरूपमीशम् ।
स्वतंत्रमेकं गुणिनं गुणं च नमामि भूयः प्रणमामि भूयः ॥५३

द्वारा संसार को मोहित करने वाले (शंकर) को नमस्कार है, नीलकंठ को नमस्कार है, पशुओं (अज्ञ जीवों) को ज्ञान देने वाले को नमस्कार है, कल्पों की कल्पना करने वाले भूत-पति को नमस्कार है, धनुष हाथ में लिए हुए शूलपाणि को नमस्कार है । कपाल हाथ में लिए हुए फांस, मुद्गरधारी को नमस्कार है, घंटा हाथ में लिए हुए समस्त भूत में व्यापक रहने वाले को नमस्कार है । पाँच मुख वाले, क्षेत्र-पति शंकरदेव को नमस्कार है, समस्त भूतों में आदि भूत तथा पृथिवी का धारण-पोषण करने वाले को नमस्कार है। अनेक रूपधारी, गुण (सत्त्व, रज, तम) रहित, परमात्मा, गणाधीश्वर गणपति को हमारा नमस्कार है । हिरण्यगर्भ, हिरण्य-पति तथा हिरण्य (सुवर्ण) वीर्य वाले हिरण्यबाहु को नमस्कार है । ध्यान-स्वरूप, ध्यान के साक्षी, ध्यान में स्थित और ध्यानगम्य आपको नमस्कार है । जिस प्रधान पुरुष ने चर-अचरमय इस समस्त संसार को मेघ द्वारा वर्षा के समान उत्पन्न किया है, और तत्त्वज्ञों ने जिसे स्वप्रकाश, महात्मा, परप्रकाशक, सनातन तथा मनुष्यों के नेत्रों में प्रकाशप्रदान करने वाला माना है उन उमाकांत, नन्दिकेश्वर, नीलकंठ, सदाशिव, मृत्युञ्जय, महादेव, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर, व्यापक, शब्द-ब्रह्मस्वरूप निखिल-सृष्टि के कारण भूत को नमस्कार है, तत्काल प्रगट होने वाले कपर्दी भगवान् को हमारा नमस्कार है । संसार के उत्पत्तिस्थान, शुद्ध, सृष्टि के आदि में प्रगट होने के कारण ज्येष्ठ और छोटे भी, यज्ञ-स्वरूप, ऋक्, यजुः, सामरूप वेदत्रयी की रक्षा करने वाले, यज्ञतन्तु, बलवान्, दिशाओं के अधीश्वर, काल-स्वरूप, अघोर रूपधारी, अग्नि वीर्य वाले महात्मा शंकर को नमस्कार है । जिनके द्वारा समस्त समुद्र, नदियां, पर्वत, गंधर्व, यक्ष, असुर और सिद्धों के समूह, स्थावर, जंगम, छोटे, बड़े, असत् (अनित्य), सत् (नित्य), जड़ और चेतन उत्पन्न हुए हैं, जिनके चरण कमल की सेवा-वन्दना योगी लोग सर्वदा करते हैं, समस्त प्राणियों के आत्मा में स्थित रहने वाले रूपहीन उन ईश, स्वतंत्र, एक गुणी और गुण रूप वाले को नमस्कार करता हूँ, उन्हें हमारा बार-बार प्रणाम है ॥३५-५३॥

इत्थं स्तुतो महादेवो शंकरो लोकशंकरः । आविर्बभूव भूपस्य संतप्ततपसोग्रतः ॥५४
पंचवक्त्रं दशभुजं चंद्रार्द्धकृतशेखरम् । त्रिलोचनमुदारांगं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥५५
विशालवक्षसं देवं तुहिनाद्रिसमप्रभम् । गजचर्माम्बरधरं सुरार्चितपदांबुजम् ॥५६
दृष्ट्वा पपात पादाग्रे दंडवद्भुवि नारद । तत उत्थाय सहसा शिवाग्रे विहितांजलिः ॥५७
प्रणनाम् महादेवं कीर्तयञ्छंकराह्वयम् । विज्ञाय भक्ति भूपस्य शंकरः शशिशेखरः ॥५८
उवाच राज्ञे तुष्टोऽस्मि वरं वरय वांछितम् । तोषितोऽस्मि त्वया सम्यक् स्तोत्रेण तपसा तथा ॥५९
एवमुक्तः स देवेन राजा संतुष्टमानसः । उवाच प्रांजलिर्भूत्वा जगतामीश्वरेश्वरम् ॥६०

भगीरथ उवाच

अनुग्राह्योऽस्मि यदि ते वरदानान्महेश्वर । तदा गंगां प्रयच्छास्मत्पित्तॄणां मुक्तिहेतवे ॥६१

श्री शिव उवाच

दत्ता गंगामया तुभ्यं पितॄणां ते गतिः तरा । तुभ्यं मोक्षः परश्चेति तमुक्त्वान्तर्दधे शिवः ॥६२
कपर्दिनो जटास्त्रस्ता गंगा लोकैकपावनी । पावयंती जगत्सर्वमन्वगच्छद्भगीरथम् ॥६३
ततः प्रभृति सा देवी निर्मला मलहारिणी । भागीरथीतिविख्याता त्रिषु लोकेष्वभून्मुने ॥६४
सगरस्यात्मजाः पूर्वं यत्र दग्धा स्वपाप्मना । तं देशं प्लावयामास गंगा सर्वसरिद्वरा ॥६५
यदा संप्लावितं भस्म सागराणां तु गंगया । तदैव नरके मग्ना उद्धृताश्च गतैनसः ॥६६
पुरा संक्रुश्यमानेन ये यमेनातिपीडिताः । त एव पूजितास्तेन गंगाजलपरिप्लुताः ॥६७
गतपापान्स विज्ञाय यमः सगरसंभवान् । प्रणम्याभ्यर्च्य विधिवत्प्राह तान्प्रीतिमानसः ॥६८
भो भो राजसुता यूयं नरकाद्भृशदारुणात् । मुक्ता विमानमारुह्यगच्छध्वं विष्णुमंदिरम् ॥६९
इत्युक्तास्ते महात्मानो यमेन गतकल्मषाः । दिव्यदेहधरा भूत्वा विष्णुलोकं प्रपेदिरे ॥७०

इस प्रकार स्तुति करने पर लोक का कल्याण करने वाले शंकर, महादेव घोर तपस्या से संतप्त राजा भगीरथ के सामने प्रकट हुए । उनके पाँच मुख थे, दश भुजायें थीं, मस्तक में अर्धचन्द्र धारण किये थे, सर्प का यज्ञोपवीत धारण किये थे, सभी अंग उदार थे, विशाल वक्षस्थल था, हिमालय पर्वत के समान धवल कान्ति थी, गजचर्म पहिने थे, उनके चरण कमल की वन्दना देवता लोग कर रहे थे, ऐसे आशुतोष भगवान् को देखकर उनके चरण के समीप राजा ने पृथिवी में गिरकर दण्डवत् किया और फिर शीघ्र ही उठकर हाथ जोड़कर प्रणामकर 'शंकर' इस नाम का उच्चारण करते हुए उनका कीर्तन भी किया । शशिशेखर भगवान् शंकर ने राजा की इस भक्ति को देखकर उनसे कहा—मैं तुम्हारे स्तोत्र और तप से अच्छी तरह प्रसन्न हूँ । अतः अपना मनोरथ कहो, क्या चाहते हो ? शंकर भगवान् के इस प्रकार कहने पर राजा ने प्रसन्न होकर हाथजोड़ जगत् के अधीश्वर शिव से निवेदन किया ॥५४-६०॥

भगीरथ ने कहा––महेश्वर ! यदि मुझे आपने अनुग्रहीत किया है तो पूर्वजों की मुक्ति के लिए गंगा को प्रदान कीजिये ।

श्री शिव ने कहा––मैंने तुम्हें गंगा दे दी, तुम्हारे पूर्वजों को उत्तम गति प्राप्त होगी और तुम्हें भी उत्तम मुक्ति मिलेगी इस प्रकार कहकर भगवान् शिव अंतर्धान हो गये और उसी समय कपर्दी भगवान् की जटा से लोकपावनी गंगा जी निकलकर समस्त संसार को पवित्र करती हुई भगीरथ के पीछे-पीछे चलीं । मुने ! उसी समय से मल का नाश करने वाली उस निर्मल गंगा का भागीरथी यह नाम तीनों लोकों में प्रचलित हुआ । जिस स्थान पर सगर के वंश वाले अपने पापों से जलकर भस्म हो गये थे, समस्त नदियों में श्रेष्ठ गंगा ने उसे पवित्र किया। सगर की

एवं प्रभावा सा गंगा विष्णुपादाग्रसंभवा । सर्वलोकेषु विख्याता महापातकनाशिनी ॥७१
य इदं पुण्यमाख्यानं महापातकनाशनम् । पठेच्च श्रृणुयाद्वापि गंगास्नानफलं लभेत् ॥७२
यस्त्वेतत्पुण्यमाख्यानं कथयेद्ब्राह्मणाग्रतः । स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥७३
इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणतो गंगोत्पत्तौ दशमोऽध्यायः ॥१०

सन्तानों के भस्म को गंगा ने जिस समय (डुबाकर) पवित्र किया उसी समय नरक में पड़े हुए वे लोग निष्पाप हो मुक्त हो गये । जिन्हें यमराज धमकाकर बहुत पीड़ा दे रहे थे, गंगाजल द्वारा पवित्र होने के कारण उन्हीं लोगों की यमराज ने पूजा की । सगर की सन्तानों को निष्पाप समझकर यमराज ने प्रणामपूर्वक विधिवत् पूजा की और उन लोगों से कहा—राजपुत्र ! इस भयंकर नरक से आप लोग मुक्त हो गये, अत: विमानों पर बैठकर भगवान् विष्णु के मन्दिर में जाकर निवास कीजिये । यमराज के इस प्रकार कहने पर निष्पाप हो उन लोगों ने दिव्यदेह धारणकर विष्णु-लोक को प्रस्थान किया । इस प्रकार भगवान् विष्णु के अग्रभाग से निकलकर गंगा समस्त लोकों में 'महापातक का नाश करने वाली' विख्यात हुई । जो इस महापातक नाश करने वाले पवित्र चरित्र को पढ़ता या सुनता है, उसे गंगा-स्नान का फल प्राप्त होता है । जो इस पवित्र चरित्र को ब्राह्मण के सामने कहता है वह जन्म-मरण रहित विष्णु भगवान् के लोक को प्राप्त करता है ॥३१-७३॥

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गंगोत्पत्ति के प्रसंग में दशवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

वसुरुवाच

अथावगाहनादीनां कर्मणां फलमुच्यते । सावधाना शृणुष्व त्वं ब्रह्मपुत्रि नृपप्रिये ॥१
यैः पुण्यवाहिनी गंगा सकृद्भक्त्यावगाहिता । तेषां कुलानां लक्षं तु भवं तारयते शिवा ॥२
सामान्यस्थानतो देवि तत्र संध्या ह्युपासिता । पुण्यं लक्षगुणं कर्तुं समर्था द्विजपावनी ॥३
दत्ता पितृभ्यो यत्रापस्तनयैः श्रद्धयान्वितैः । अक्षयां तु प्रकुर्वन्ति तृप्तिं मोहिनि दुर्लभाम् ॥४
यावंतश्च तिला मर्त्यैर्गृहीता पितृकर्मणि । तावद्वर्षसहस्राणि पितरः स्वर्गवासिनः ॥५
पितृलोकेषु ये केचित्सर्वेषां पितरः स्थिताः । तर्प्यमाणाः परां तृप्तिं यांति गंगाजलैः शुभैः ॥६
य इच्छेत्सफलं जन्म संततिं वा शुभानने । स पितॄंस्तर्पयेद्गंगामभिगम्य सुरांस्तथा ॥७
ये मृता दुर्गता मर्त्यास्तर्पितास्तत्कुलोद्भवैः । कुशैस्तिलैर्गांगजलैस्ते प्रयांति हरेः पदम् ॥८
स्वर्गसंस्थाश्च ये केचित्पितरः पुण्यशीलिनः । ते तर्पिता गांगजलैर्मोक्षं यांति विधेर्वचः ॥९
मासं तर्पणमात्रेण पिंडसंपातनेन च । गंगायां पितरः सर्वे सुप्रीताः सूर्यवर्चसः ॥१०
अप्सरोगणसंयुक्तान्हेमरत्नविभूषितान् । मुक्ताजालपरिच्छन्नान्वेणुवीणानिनादितान् ॥११
भेरीशंखमृदंगादिनिर्घोषान्स्रग्विभूषितान् । गंधर्वदेहरुचिरान्दिव्यभोगसमन्वितान् ॥१२
आरुह्य तु विमानाग्र्यान्ब्रह्मलोकं प्रयांति हि । गंधर्वदेहरुचिरान्दिव्यभोगसमन्वितान् ॥१३

वसु ने कहा—ब्रह्मा की पुत्री, राजा की प्रिये मोहिनि ! अब मैं गंगा में स्नानादि करने का फल बतला रहा हूँ, सावधानीपूर्वक सुनो । जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक केवल एक बार गंगा में स्नानकर लेता है, उसके एक लाख कुलों को भवसागर से शिवप्रिया गंगा तारती हैं । देवि ! साधारण स्थान पर की गई सन्ध्या से गंगातट पर की गई द्विजाति को पवित्र करने वाली सन्ध्या लाख गुनी अधिक पुण्यप्रदान करने में समर्थ है । हे मोहिनि ! उस गंगातट पर श्रद्धापूर्वक पुत्रों द्वारा दी गई जलांजलि पितरों को अक्षय-तृप्ति प्रदान करती है, जो कि अत्यन्त दुर्लभ है । गंगातट पर मनुष्य पितृकर्म में जितना तिल ग्रहण करता है उतने सहस्र वर्ष उसके पितर स्वर्ग में निवास करते हैं । गंगाजल द्वारा तर्पण करने पर पितृ-लोक-निवासी सभी पितरों को अत्यन्त तृप्ति मिलती है, कारण कि वह (गंगाजल) अत्यन्त कल्याण-प्रद है ॥१-६॥

कल्याणमुखि ! जो अपने जन्म को सफल करना चाहे अथवा संतान की अभिलाषा करता हो उसे चाहिए कि गंगा में जाकर पितरों तथा देवताओं का तर्पण करे। जिन लोगों की अल्पमृत्यु हुई हो, उनके कुल के किसी भी प्राणी द्वारा कुश, तिल और गंगाजल से तर्पण करने पर वे लोग मुक्त होकर विष्णु-लोक पहुँच जाते हैं। जो पुण्यशाली पितर स्वर्ग में निवास करते हैं, गंगाजल द्वारा तर्पण किये जाने पर उनका मोक्ष निश्चय ही होता है, यह ब्रह्माजी का कथन है । एक मास तक गंगा में केवल तर्पण और पिंडदान करने से पितर लोग अत्यन्त प्रसन्न हो सूर्य के समान तेजस्वी स्वरूप धारणकर अप्सराओं के साथ सुवर्णों और रत्नों से अलंकृत तथा मोतियों के गुच्छों से सजे हुए वेणु, वीणा, भेरी, शंख और मृदंग से सुसज्जित, सुन्दर फूल-मालाओं से सुशोभित गन्धर्व-देह के समान सुन्दर, देवताओं की दिव्य-भोग सामग्रियों से परिपूर्ण, मनोहर विमानों में बैठकर ब्रह्मा-लोक को प्रस्थान करते हैं ।

जो पुरुष गंगा में स्नान कर नित्य शिव-लिंग का पूजन करता है, वह एक ही जन्म में निःसन्देह मुक्त हो जाता है । अन्यत्र स्थान में किये गये अग्निहोत्र, वेद-पाठ और अधिक दक्षिणा वाले यज्ञ आदि—ये सभी गंगा में किये गये लिंग

एकेन जन्मना मोक्षं परमाप्नोति स ध्रुवम् । अग्निहोत्राणि वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः ॥१४
गंगायां लिंगपूजायाः कोट्यंशेनापि नो समा । पितॄनुद्दिश्य वा देवान्गंगांभोभिः प्रसिंचयेत् ॥१५
तृप्ताः स्युस्तस्य पितरो नरकस्थाश्च तत्क्षणात् । मृत्कुंभात्ताम्रकुंभैस्तु स्नानं दशगुणं स्मृतम् ॥१६
रौप्यैः शतगुणं पुण्यं हैमैः कोटिगुणं स्मृतम् । एवमर्घे च नैवेद्ये वलिपूजादिषु क्रमात् ॥१७
पात्रांतरविशेषेण फलं चैवोत्तरोत्तरम् । विभवे सति यो मोहान्न कुर्याद्विधिविस्तरम् ॥१८
न स तत्कर्मफलभाग्देवद्रोही प्रकीर्त्यते । देवानां दर्शनं पुण्यं दर्शनात्स्पर्शनं वरम् ॥१९
स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठं घृतस्नानमतः परम् । प्राहुर्गंगाजलैः स्नानं घृतस्नानसमं बुधाः ॥२०
अर्घ्यं द्रव्यविशेषेण गंगातोयेन यः सकृत् । मागधप्रस्थमात्रेण ताम्रपात्रस्थितेन च ॥२१
देवताभ्यः प्रदद्यात्तु स्वकीयपितृभ्यः सह । पुत्रपौत्रैश्च संयुक्तः स च वै स्वर्गमाप्नुयात् ॥२२
विष्णोः शिवस्य सूर्यस्य दुर्गायाः ब्रह्मणस्तथा । गंगातीरे प्रतिष्ठां तु यः करोति नरोत्तमः ॥२३
तथैवायतनान्येषां कारयंत्यपि शक्तितः । अन्यतीर्थेषु करणात्कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥२४
गंगातीरसमुद्भूतमृदा लिंगानि शक्तितः । सलक्षणानि कृत्वा तु प्रतिष्ठाप्य दिने दिने ॥२५
मंत्रैश्च पत्रपुष्पाद्यैः पूजयित्वा च शक्तितः । गंगायां निःक्षिपेन्नित्यं तस्य पुण्यमनंतकम् ॥२६
सर्वानन्दप्रदायिन्यां गंगायां यो नरोत्तमः । अष्टाक्षरं जपेद्भक्त्या मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥२७
नमो नारायणायेति प्रणवाद्यं नियम्य च । षण्मासं जपतः सर्वा ह्युपतिष्ठंति सिद्धयः ॥२८

(पार्थिव) पूजन के कोटि अंश के भी समान नहीं है । जो लोग अपने पितरों के उद्देश्य से गंगाजल से देवताओं को स्नान कराते हैं, उनके नरक में भी रहते हुए पितर उसी समय तृप्त हो जाते हैं । मिट्टी के घड़े से ताम्र के घड़े में दस गुना पुण्य अधिक है ॥७-१६॥

चाँदी के घड़े में सौगुना और सुवर्ण के पात्र में कोटि गुना पुण्य कहा गया है। इसी प्रकार अर्घ, नैवेद्य और बलि पूजा आदि में क्रमशः उत्तरोत्तर पुण्य अधिक समझना चाहिए। जितने ही उत्तम धातु का पात्र रहेगा (स्नान, पूजन और भोजन के लिए) उतना ही अधिक पुण्य होगा। जो पुरुष धनी होते हुए भी लोभ वश अपनी शक्ति के अनुसार पुण्य विधि का विस्तार नहीं करता है, उसे उस कर्म का फल नहीं मिलता; प्रत्युत देवद्रोही कहा जाता है। देवताओं का दर्शन करने से पुण्य होता है। दर्शन से स्पर्श, स्पर्श से अर्चन और उससे घृतस्नान अधिक श्रेष्ठ कहा गया है। विद्वान् लोग घृतस्नान के समान गंगाजल के स्नान को मानते हैं। जो मनुष्य किसी उत्तम धातु के बने हुए पात्र से अथवा ताम्र-पात्र में ही गंगाजल रख कर देवता को अर्घ्य देता है, उसके पितर तथा वह स्वयम् और उसके पुत्र-पौत्र सभी स्वर्ग में निवास करते हैं ॥१७-२२॥

जो उत्तम पुरुष गंगाजी के तीर पर विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा तथा ब्रह्मा आदि देवताओं में किसी की प्रतिष्ठा करता है और अपनी संपत्ति के अनुसार इन देवताओं के लिए मन्दिर भी बनवाता है उसे अन्य तीर्थों में बनवाने के करोड़ों गुना फल से भी अधिक फल प्राप्त होता है। गंगा के किनारे की मिट्टी का अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिदिन सांगोपांग और लक्षणों से युक्त पार्थिव बना कर तथा प्राण-प्रतिष्ठा कर के मंत्रपूर्वक, विल्वपत्र और पुष्पों से पूजा करे फिर विसर्जन कर गंगा में छोड़ दे तो उसका पुण्य अनन्त है, जो कि कहा नहीं जा सकता। जो श्रेष्ठ मनुष्य भक्तिपूर्वक अष्टाक्षर मंत्र को सब प्रकार का आनन्द देने वाली गंगा में या तीर पर जपता है, उसके अधीन मुक्ति सर्वदा रहती है। प्रणव (ओंकार) सहित नमो नारायणाय इस मंत्र को नियमपूर्वक ६ मास तक जपने वाले को सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। जो ओं नमः शिवाय--इस मंत्र को विधिपूर्वक चौबीस लाख जप कर ले, वह साक्षात्

नमः शिवायेति मंत्रं सतारं विधिना तु यः । चतुर्विंशतिलक्षं वै जपेत्साक्षात्स शंकरः ।।२९
पंचाक्षरी सिद्धविद्या शिव एव न संशयः । अपवित्रः पवित्रो वा जपन्निष्पातको भवेत् ।।३०
पूजितायां तु गंगायां पूजिताः सर्वदेवताः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेदमरापगाम् ।।३१
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च सर्वावयवशोभिताम् । रत्नकुंभसितांभोजवराभयकरां शुभाम् ।।३२
श्वेतवस्त्रपरीधानां मुक्तामणिविभूषिताम् । सुप्रसन्नां सुवदनां करुणार्द्र हृदांबुजाम् ।।३३
सुधाप्लावितभूयिष्ठां त्रैलोक्यनमितां सदा । ध्यात्वा जलमयीं गंगां पूजयन्पुण्यभाग्भवेत् ।।३४
मासार्द्धमपि यस्त्वेवं नैरन्तर्येण पूजयेत् । स एव देव सदृशो बहुकालफलाधिकः ।।३५
वैशाखशुक्लसप्तम्यां जह्नुना जाह्नवी पुरा । क्रोधात्पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरंध्रात्तु दक्षिणात् ।।३६
ता तत्र पूजयेद्देवीं गंगां गगनमेखलाम् । अक्षयायां तु वैशाखे कार्तिकेऽपि शुभानने ।।३७
रात्रौ जागरणं कृत्वा यवान्नैश्च तिलैस्तथा । विष्णुं गंगां च शंभुं च पूजयेद्भक्तिभावतः ।।३८
तथा सुगंधैः कुसुमैः कुंकुमागरुचंदनैः । तुलसीविल्वपत्राद्यैर्मातुलुंगफलादिभिः ।।३९
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यं यथा विभवविस्तरैः । कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।।४०
दिव्यं विमानमास्थाय विष्णुलोके महीयते । ततो महीतलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः ।।४१
भुक्त्वा विविधसौख्यानि रूपशीलगुणान्वितः । देहांते ज्ञानवान्भूत्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।।४२
यज्ञो दानं तपो जप्यं श्राद्धं च सुरपूजनम् । गंगायां तु कृतं सर्वं कोटिकोटि गुणं भवेत् ।।४३

शिव के समान हो जाता है। (नमः शिवाय) यह पंचाक्षरी विद्या सिद्ध विद्या है। इसे सिद्ध कर लेने पर मनुष्य निःसन्देह शिव हो जाता है, और पवित्र या अपवित्र अवस्था में जपने से पाप-रहित होता है। एकमात्र गंगा की पूजा करने पर समस्त देवताओं की पूजा हो जाती है, इसलिए बड़े प्रयत्न के साथ श्री गंगाजी की पूजा करनी चाहिए ।।२३-३१।।

गंगा का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए। चार भुजाएँ हों, तीन नेत्र हों, समस्त सुन्दर अंगों से सुशोभित हों, रत्न जड़ित कुंभ और श्वेत कमल से युक्त होकर अभयदान देने वाली हों, श्वेत-वस्त्र पहिने, मोतियों और मणियों से अलंकृत हों, प्रसन्न-मुख हो, प्रसन्नता का भाव भलीभाँति विदित होता हो, अपने हृदय-कमल में करुणा भरे हों, सुधा-सागर में निमग्न हों और तीनों लोक वन्दना करते हों, इस प्रकार ध्यान कर जलमयी गंगा का पूजन करने से प्राणी पुण्य का भागी होता है। जो मनुष्य निरंतर इस प्रकार ध्यान कर केवल आधे मास तक पूजन करता है, वह देव समान होकर अनन्तकाल तक उत्तम फलों को भोगता है। पहले समय में राजा जह्नु ने वैशाख शुक्ल सप्तमी को क्रुद्ध होकर गंगा को पी लिया था, और फिर उसी दिन दाहिने कान के छिद्र के द्वारा छोड़ भी दिया था, अतः आकाशवाहिनी गंगा देवी का पूजन उस दिन भी करना चाहिए। सुन्दरि ! वैशाख शुक्ल तृतीया में और कार्तिकशुक्ल तृतीया में भी रात्रि में जागरण करे। यव और तिल से विष्णु, गंगा और शिव जी का भक्तिपूर्वक पूजन करे। सुगंध (इत्र आदि), सुगंधित पुष्प, कुंकुम, अगर, चंदन, तुलसी, विल्वपत्र समेत विविध फल, धूप दीप और नैवेद्य आदि पदार्थ अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार एकत्र कर अर्पण करे। ऐसा करने से प्राणी करोड़ों कल्प दिव्य-विमान पर बैठ कर विष्णु-लोक में सम्मानपूर्वक निवास करता है और तदुपरान्त मर्त्य-लोक में आकर धार्मिक राजा होता है यहाँ भी सुन्दर रूप, उत्तम स्वभाव और गुणों को प्राप्त कर अनेक प्रकार के सुखों का भोग कर शरीर-त्याग के पश्चात् अपने ज्ञान के प्रताप से भगवान् शंकर का सायुज्य प्राप्त करता है। यज्ञ, दान, तप, जप, श्राद्ध और देव-पूजन आदि

यस्त्वक्षयतृतीयायां गंगातीरे ददाति वै । घृतधेनुं विधानेन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥४४
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । सहस्रादित्यसंकाशः सर्वकामसमन्वितः ॥४५
हेमरत्नमये चित्रे विमाने हंसभूषिते । स्वकीयपितृभिः सार्द्धं ब्रह्मलोके महीयते ॥४६
ततस्तु जायते विप्रो गंगातीरे धनान्वितः । अंते तु ब्रह्मविद्भूत्वा मोक्षमाप्नोत्यसंशयः ॥४७
तीर्थे च गोप्रदानं च विधिना कुरुते तु यः । गोलोमसंख्यवर्षाणि स्वर्गलोके महीयते ॥४८
जायते च कुले पश्चाद्धनधान्यसमाकुले । रत्नकांचनभूपूर्णे शीलविद्यायशोऽन्विते ॥४९
स भुक्त्वा विपुलान्भोगान् पुत्रपौत्रसमन्वितः । मोक्षभागी भवेत्तत्र नात्र कार्या विचारणा ॥५०
कपिला यदि दत्ता स्याद्विधिना वेदपारगे । नरकस्थान्पितॄन्सर्वान्स्वर्गं नयति वै तदा ॥५१
भूमिं निवर्तनमितां गंगातीरे ददाति यः । भूमिरेणुप्रमाणाब्दं ब्रह्माविष्णुशिवातिगः ॥५२
जायते च पुनर्भूमौ सप्तद्वीपपतिर्भवेत् । भेरीशंखादिनिर्घोषैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥५३
स्तुतिभिर्मागधानां च सुप्तोऽसौ प्रतिबुध्यते । सर्वसौख्यान्यवाप्येह सर्वधर्मपरायणः ॥५४
नरकस्थान्पितॄन्सर्वान्प्रापयित्वा दिवं तथा । स्वर्गस्थितान्मोक्षयित्वा स्वयं ज्ञानी च मोहिनि ॥५५
अंते ज्ञानासिना छित्वा अविद्यां पंचपर्विकाम् । परं वैराग्यमापन्नः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥५६
सप्तहस्तेन दंडेन त्रिंशद्दंडानिवर्तनम् । त्रिभागहीनं गोचर्म मानमाह विधिः स्वयम् ॥५७
ग्रामं गंगातटे यो वै ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति । ब्रह्माविष्णुशिवप्रीत्यै दुर्गाया भास्करस्य च ॥५८
सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । तपोव्रतेषु पुण्येषु यत्फलं परिकीर्तितम् ॥५९

सभी गंगा तट पर करने से अन्य स्थानों की अपेक्षा करोड़ गुना अधिक फलदायक होते हैं । अक्षय-तृतीया में गंगा के तीर पर जो सविधि घृत-धेनु का दान करता है, उसके पुण्य-फल को सुनो ॥३२-४४॥

हजारों सूर्य के समान तेज धारण कर, समस्त कामनाओं को पूरा कर, रत्नजड़ित सुवर्ण के चित्र-विचित्र तथा हंस से विभूषित विमान पर बैठकर अपने पितर के साथ ब्रह्मलोक में जा करोड़ों कल्प तक वह निवास करता है । तदनन्तर गंगा के किनारे धनी ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होता है, और अंत में ब्रह्म-ज्ञानी होकर निस्संदेह मोक्ष प्राप्त करता है । जो तीर्थ में विधानपूर्वक गोदान करता है, वह उस गौ के जितने लोम होते हैं उतने वर्ष स्वर्ग में निवास करता है। तत्पश्चात् मर्त्यलोक में आकर धन-धान्य युक्त रत्नों और सुवर्णों से भरे हुए किसी सुशील, विद्वान् और चारों ओर विख्यात अच्छे भू-पति के कुल में जन्म लेता है। उस कुल में वह आजीवन अनेक प्रकार के अनन्त सुख भोगते हुए पुत्र और पौत्र समेत सुखी रहता है और उसी जन्म में मरण के बाद मोक्ष भी प्राप्त करता है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है । जो मनुष्य कपिला गौ का दान किसी वेदपाठी ब्राह्मण को देता है, वह उसी समय नरक में पड़े हुए अपने समस्त पितरों को स्वर्ग पहुँचा देता है ॥४५-५१॥

जो निवर्तनमात्र भूमि-दान गंगा के किनारे करता है, वह उस भूमि की रेणु-संख्या के समान उतने वर्ष ब्रह्मा, विष्णु और शिव से भी उत्तम लोक में निवास करता है । फिर इस लोक में आकर सातों द्वीप का अधीश्वर होता है, नगाड़े, शंख की ध्वनियां, मांगलिक गान और बन्दीगण की स्तुति करने पर वह शयनागार से उठता है, समस्त सौख्य को भोगते हुए सर्व-धर्मपरायण होता है । मोहिनि ! इस प्रकार वह दाता नरक में स्थित अपने पितरों को स्वर्ग पहुँचाता है, स्वर्ग में निवास करने वालों को मुक्त करा कर स्वयं ज्ञानी होता है और अन्त में अपने ज्ञानरूपी तलवार से पांच गांठ वाली अविद्या को काट कर महान् वैराग्य प्राप्त करता है । फिर शरीर-त्याग के उपरान्त सर्वदा के लिए विमुक्त हो जाता है। सात हाथ के दंडा द्वारा नपी हुई तीस दंडा भूमि को एक निवर्तन कहते हैं और

सहस्रगुणितं तत्तु विज्ञेयं ग्रामदायिनः । सूर्यकोटिप्रतीकाशे विमाने वैष्णवे पुरे ॥६०
क्रीडते शांकरे वापि स्तुतो देवादिभिर्मुदा । भूमिरेणोश्च संख्याकं कालं स्थित्वा च तत्र सः ।
अणिमादिगुणैर्युक्ते योगिनां जायते कुले ॥६१
अक्षयायां तु यो देवि स्वर्णं षोडशमासिकम् । ददाति द्विजमुख्याय सोऽपि लोकेषु पूज्यते ॥६२
अन्नदानाद्विष्णुलोकं शैवं वै तिलदानतः । ब्राह्मं रत्नप्रदानेन गोहिरण्येन वासवम् ॥६३
गांधर्वं स्वर्णवासोभिः कीर्तिं कन्याप्रदानतः । विद्यया मुक्तिदं ज्ञानं प्राप्य यायान्निरंजनम् ॥६४
गंगातीरे नरो यस्तु नानावृक्षैः समन्वितम् । आरामं कारयेद्भक्त्या गृहं चोपवनान्वितम् ॥६५
कदलीनारिकेरैश्च कपित्थाशोकचंपकैः । पनसैर्विल्ववृक्षैश्च कदंबाश्वत्थपाटलैः ॥६६
अम्रैस्तालैर्नागरंगैर्वृक्षैरन्यैश्च संयुतम् । जातीविजयसंयुक्तं तथा पाटलराजितम् ॥६७
निचितं कारयित्वैवमावासं पुष्पशोभितम् । शिवाय विष्णवेवापि दुर्गायै भास्कराय च ॥६८
प्रयच्छति तथा भक्त्या सर्वार्थं परिकल्प्य च । तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये संक्षेपान्नतु विस्तारात् ॥६९
यावंति तेषां वृक्षाणां पुष्पमूलफलानि च । बीजानि च विचित्राणि तेषां मूलानि वै तथा
तावत्कल्पसहस्राणि तेषां लोकेषु संस्थितिः ॥७०

इति श्री वृहन्नारदीयपुराणतो गंगोत्पत्तौ एकादशोऽध्यायः ॥११

उसके चतुर्थांश को गोचर्म कहते हैं, इस मानदण्ड को ब्रह्मा ने स्वयं बताया है । ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा और सूर्य इन देवताओं के प्रसन्नार्थ गंगा के तट पर जो ब्राह्मण को ग्राम-दान करता है, सर्व दान करने से जो पुण्य मिलता है, समस्त यज्ञों का जो फल कहा गया है, तप व्रत और पुण्य का जो फल कहा गया है, उसका हजार गुना फल उसे मिलता है । करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी विमान पर बैठकर विष्णुलोक या शिवलोक में जाकर देवताओं का सत्कार ग्रहण करते हुए वह विहार करता है और दान की हुई भूमि की रेणु-संख्या के बराबर समय तक वहाँ निवास कर पुनः अणिमा, गरिमा आदि सिद्धियों को जानने वाले योगी के कुल में उत्पन्न होता है ॥५२-६१॥

देवि ! अक्षय तृतीया में जो सोलह मासा सुवर्ण का दान ब्राह्मण को देता है वह भी लोक में पूज्य होता है । अन्नदान करने से विष्णुलोक प्राप्त होता है, तिल-दान करने से शिवलोक, रत्न-दान से ब्रह्मलोक और गौ तथा सुवर्ण-दान करने से इन्द्रलोक मिलता है । सुवर्ण तथा वस्त्र दान करने से गंधर्वलोक मिलता है, कन्यादान से कीर्ति मिलती है और विद्या से मोक्ष-ज्ञान प्राप्त होकर ब्रह्मा की प्राप्ति होती है । जो मनुष्य गंगा के किनारे भक्ति-पूर्वक बगीचा और उसमें घर बनाता है, और उस बगीचे में तरह-तरह के पेड़ जैसे केला, नारियल, कैथा, अशोक, चंपा, कटहल, बेल, कदम्ब, पीपल, पाटल, आम, ताड़, नारंगी और अन्य जातीय आदि वृक्षों को लगाता है, तथा पुनः लता पुष्पों से सुशोभित कर उस घर को शिव, विष्णु, दुर्गा या सूर्य को समस्त सामग्री समेत भक्तिपूर्वक अर्पित करता है उसके पुण्य-फल को विस्तार से न कहकर संक्षेप में ही सुनाता हूँ । जितने उन वृक्षों में फूल, फल, बीज और उनके मूल रहते हैं, उतने ही हजार कल्प तक वह दाता उन लोकों में निवास करता है ॥६२-७०॥

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गंगोत्पत्ति के प्रसंग में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

मोहिन्युवाच

धन्याहं कृतकृत्याहं सफलं जीवितं मम । यच्छ्रुतं त्वन्मुखांभोजाद्गंगामाहात्म्यमुत्तमम् ॥१
अहो गंगासमं तीर्थं नास्ति किंचिद्धरातले । यस्या संदर्शनादीनामीदृशं पुण्यमीरितम् ॥२
गुडधेन्वादिधेनूनां विधानं च यथाक्रमम् । तथा कथय विप्रेन्द्र भक्ताहं तव सर्वदा ॥३

वशिष्ठ उवाच

तच्छ्रुत्वा मोहिनीवाक्यं वसुस्तस्याःपुरोहितः । वेदागमानां तत्त्वज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥४

वसुरुवाच

शृणु मोहिनि वक्ष्यामि यत्पृष्टं हि त्वया मम । गुडधेनुविधानं च यथाशास्त्रे प्रकीर्तितम् ॥५
कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद्भुवि । गोमयेनोपलिप्तायां कुशानास्तीर्य यत्नतः ॥६
प्राङ्मुखीं कल्पयेद्धेनुमुदक्पादां सवत्सकाम् । उत्तमा गुडधेनुस्तु चतुर्भारैः प्रकीर्तिता ॥७
वत्सं भारेण कुर्वीत भाराभ्यां मध्यमा स्मृता । अर्द्धभारेण वत्सः स्यात्कनिष्ठा भारकेण तु ॥८
चतुर्थांशेन वत्सः स्याद्गृहवित्तानुसारतः । प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तयेत् ॥९
न सांपरायिकं तस्य दुर्मतेर्जायते फलम् । धेनुवत्सौ घृतस्येतौ सितश्लक्ष्णांबरावृतौ ॥१०
शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुद्धमुक्ताफलेक्षणौ । सितसूत्रसिरालौ च सितकंबलकंबलौ ॥११
ताम्रगंडूकपृष्ठौ तौ सितचामरलोमकौ । विद्रुमक्रमगोपेतौ नवनीतस्तनान्वितौ ॥१२
कांस्यदोहाविद्रनीलमणिकल्पिततारकौ । सुवर्णश्रृंगाभरणौ शुद्धरौप्यखुरान्वितौ ॥१३

मोहिनी ने कहा—आज मैं धन्य हो गई, कृतकृत्य हो गई, मेरा जीवन सफल हो गया जो तुम्हारे मुखारविन्द से गंगा का माहात्म्य सुनने का शुभावसर प्राप्त हुआ। इस भू-मण्डल में गंगा के समान कोई दूसरा तीर्थ नहीं है, जिसके दर्शन आदि से ऐसा पुण्य कहा गया है। अब इसके उपरान्त आप गुडधेनु आदि दानों का विधान यथार्थतः कहिये। विप्रेन्द्र ! मैं सर्वदा आपकी भक्त हूँ ॥१-३॥

वसिष्ठ ने कहा--मोहिनी की इस बात को सुनकर उसके पुरोहित, वेदज्ञाता वसु हँसते हुए बोले ॥४॥

वसु ने कहा--मोहिनि ! तुमने जो गुडधेनु का विधान मुझसे पूछा है, उसे मैं शास्त्र में जिस प्रकार बताया गया है, कह रहा हूँ सुनो। गोबर से लिपी हुई पवित्र भूमि में कुशा बिछाकर उसके ऊपर चार हाथ का काला मृगचर्म पूरब की ओर उसका मुख करके बिछा देवे। उसके ऊपर बछड़ा सहित पूरब मुख वाली गौ की कल्पना करे (बनावे)। बछड़े के सहित उसके पैर उत्तर की ओर हों। उत्तम गुडधेनु की कल्पना चार भार से कही गई है। उसके बछड़े की कल्पना एक भार की करनी चाहिए। दो भारों की मध्यम गौ कही गई है। उसका बछड़ा आधे भार का करना चाहिए। कनिष्ठा गौ एक भार की होनी चाहिए, उसका बछड़ा उसके चतुर्थांश का करना चाहिए। इसमें अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार जो चाहे बनावे। घृत की धेनु तथा बछड़े को स्वच्छ एवम् कोमल वस्त्र से ढाँक देना चाहिए। उनके कान सीप के, पैर ईख के, आँखें मोतियों की, भाल श्वेत सूत्र के, गल कंवरियाँ शुक्ल कंबल की, गड्डुक (डील) एवम् पीठ ताँबे के, लोम श्वेत चामर के, भौंहें विद्रुम (मूंगे) की, स्तन मक्खन के, पूंछें क्षौम वस्त्र की, थन काँसे के, आँखों की पुतलियाँ इन्द्रनीलमणि की, सींग सोने के, खुर शुद्ध चांदी के दाँत अनेक फलों के और

नानाफलसमायुक्तौ घ्राणगंधकरंडकौ । इत्येवं रचयित्वा तु धूपदीपैरथार्चयेत् ॥१४
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता । धेनुरूपेण सा देवी मम शांतिं प्रयच्छतु ॥१५
देहस्था या च रुद्राणां शंकरस्य सदा प्रिया । धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥१६
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहारूपा विभावसोः । चंद्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपा तु सा श्रिये ॥१७
चतुर्मुखस्य या लक्ष्मी र्लक्ष्मीर्या धनदस्य च । लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे ॥१८
स्वधा या पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां च या । सर्वपापहरा धेनुः सा मे शांतिं प्रयच्छतु ॥१९
एवमामंत्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । विधानमेतद्धेनूनां सर्वासामिह पठ्यते ॥२०
यास्तु पापविनाशिन्यः कीर्तिता दश धेनवः । तासां स्वरूपं वक्ष्यामि शास्त्रोक्तं शृणु मोहिनि ॥२१
प्रथमा गुडधेनुः स्याद्घृतधेनुरथापरा । तिलधेनुस्तृतीया च चतुर्थी जलसंज्ञिता ॥२२
पंचमी क्षीरधेनुश्च षष्ठी मधुमयी स्मृता । सप्तमी शर्कराधेनुर्दधिधेनुस्तथाष्टमी ॥२३
रत्नधेनुश्च नवमी दशमी तु स्वरूपतः । कुंभाःस्युर्द्रवधेनूनां चेतरासां तु राशयः ॥२४
सुवर्णधेनुमप्यत्र केचिदिच्छंति सूरयः । नवनीतेन तैलेन तथा केऽपि महर्षयः ॥२५
एतदेव विधानं स्यादेत एव उपस्कराः । मंत्रावाहनसंयुक्ताः सदा पर्वणि पर्वणि ॥२६
यथाश्रद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः । अनेकयज्ञफलदाः सर्वपापाहराः शुभाः ॥२७
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽथ वा पुनः । युगादौ चैव मन्वादौ चोपरागादिपर्वसु ॥२८
गुडधेन्वादयो देया भक्तिश्रद्धासमन्वितैः । तीर्थेषु स्वगृहे वापि गंगातीरे विशेषतः ॥२९
एवं दत्वा विधानेन धेनुं द्विजवराय च । प्रदक्षिणीकृत्य विप्रं दक्षिणाभिः प्रतोष्य च ॥३०

नाकें गंध (घिसे चन्दन आदि) की होनी चाहिए। इस प्रकार रचना कर धूप-दीप से धेनु की पूजा करते हुए प्रार्थना करे कि—जो समस्त भूतों की लक्ष्मी है और जो देवताओं में विराजमान है, वही देवी धेनुरूप होकर मुझे शांति प्रदान करे। रुद्रों के शरीर में जो सर्वदा स्थित रहती है और शंकर की जो प्रिया है, धेनुरूप होकर वह देवी मेरे पापों को नष्ट करे। विष्णु के वक्षःस्थल में जो लक्ष्मी स्थित हैं, अग्नि की स्वाहा रूप होकर प्रिया है, चन्द्रमा, सूर्य और इन्द्र की जो शक्ति रूप है वह धेनुरूप होकर मुझे कल्याण प्रदान करे। ब्रह्मा की जो लक्ष्मी है, कुबेर की जो लक्ष्मी है और लोकपालों की जो लक्ष्मी है वह धेनुरूप से मुझे वरदान देवे। पितरों की जो स्वधा है, यज्ञ में हवि आदि भक्षण करने वाले अग्नि की स्वाहा है, समस्त पाप को नष्ट करने वाली वही धेनु रूप हो मुझे शांति प्रदान करे। इस प्रकार प्रार्थना कर उस धेनु को ब्राह्मण के लिए अर्पित करे, समस्त धेनुओं के लिए यह विधान बताया गया है ॥५-२०॥

मोहिनि! पाप विनाश करने वाली दस धेनु का जो वर्णन किया गया है, उनके शास्त्र में कहे गये स्वरूप को कह रहा हूँ, तुम सुनो। पहली गुडधेनु हैं, दूसरी घृतधेनु है, तीसरी तिलधेनु है, चौथी जलधेनु है, पाँचवीं दुग्ध-धेनु है, छठवीं मधुधेनु है, सातवीं शर्कराधेनु है, आठवीं दधिधेनु है, नववीं रत्नधेनु है और दशवीं साक्षात् धेनु है। पिघलने वाली धेनुओं के लिए घड़े और इतर धेनुओं के लिए राशियाँ[1] होनी चाहिए। कोई विद्वान् सुवर्णधेनु को मानते हैं, और कोई महर्षि लोग मक्खनधेनु और तेलधेनु का भी संग्रह करते हैं। यही धेनु के बनाने तथा पूजन का विधान है। मंत्र द्वारा आवाहन-पूजन करके प्रत्येक पर्व दिनों में श्रद्धापूर्वक धेनु-दान करने से भुक्ति और मुक्ति रूप उत्तम फल प्राप्त होते हैं, अनेक यज्ञों का फल भी मिलता है और समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥२१-२८॥

भक्ति श्रद्धापूर्वक उपर्युक्त धेनु का दान तीर्थ में या अपने गृह में करे परन्तु विशेषकर गंगा के किनारे करना

(१) ग्रामीण भाषा में इसको रास, कठई, डामा आदि कहते हैं। इसमें दूध दुहा जाता है।

ऋत्विजः प्रीतिसंयुक्तो नमस्कृत्य विसर्जयेत् । ततः संपूजयेद्‌गंगां विधिना सुसमा
अष्टमूर्तिधरां देवीं दिव्यरूपां निरीक्ष्य च । शालितंदुलप्रस्थेन द्विप्रस्थपयसा
पायसं कारयित्वा च दत्त्वा मधु घृतं तथा । प्रत्येकं पलमात्रं च भक्तिभावेन स
तत्पायसमपूपाँश्च मोदका मंडलानि च । तथा गुंजार्द्धमात्रंच सुवर्णं रूप्यमेव
चंदनागरुकर्पूरकुंकुमानि च गुग्गुलम् । विल्वपत्राणि दूर्वा च रोचना सितचंदनम् ।।३५
नीलोत्पलानि चान्यानि पुष्पाणि सुरभीणि च । यथाशक्त्या महाभक्त्या गंगायां चैव निक्षिपेत् ।।३६
मंत्रेणानेन सुभगे पुराणोक्तेन चापि हि । गंगायै नारायण्यै शिवायै च नमोनमः ।।३७
एतदेव विधानं तु मासि मासि च मोहिनि । पौर्णमास्याममायां वा कार्यं प्रातः समाहितैः ।।३८
वर्षं यस्तुनरो भक्त्या यथाशक्त्यार्चयन्मुदा । हविष्याशी मिताहारो ब्रह्मचर्य्यसमन्वितः ।।३९
दिने वापि तथा रात्रौ नियमेन च मोहिनि । संवत्सरांते तस्यैषा गंगा दिव्यवपुर्द्धरा ।।४०
दिव्यमाल्यांबरा चैव दिव्यरत्नविभूषिता । प्रत्यक्षरूपा पुरतस्तिष्ठत्येव वरप्रदा ।।४१
एवं प्रत्यक्षरूपां तां गंगां दिव्यवपुर्धराम् । दृष्ट्वा स्वचक्षुषा मर्त्यः कृतकृत्योभवेच्छुभे ।।४२
यान्यान्कामयते मर्त्यः कामांस्तांस्तानवाप्नुयात् । निष्कामस्तु लभेन्मोक्षं विप्रस्तेनैव जन्मना ।।४३

एतद्विधानं च मयोदितं ते दृष्टं हि सर्वं गुडधेनुपूर्वम् ।
गंगार्चनं मुक्तिकरं व्रतं च सांवत्सरं श्रीपतितुष्टिदं हि ।।४४

इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणतो गंगोत्पत्तौ द्वादशोऽध्यायः ।।१२

चाहिए । इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मण को धेनु दान देकर प्रदक्षिणा करके दक्षिणा से उन्हें संतुष्ट करे; फिर हर्षित हो नमस्कार करके उन्हें विदा करे और इसके उपरान्त सावधान हो सविधि गंगा का पूजन करे ।।२९-३१।।

अष्टमूर्त्ति धारण करने वाली दिव्य रूप देवी का दर्शन करके शालि चावल तथा दूध का खीर बनावे । उसमें घी और मधु भी डाले पुनः भक्तिपूर्वक उस खीर, मालपूआ और मोदक (लड्डू), आधी रत्ती सोना तथा चांदी, चन्दन, अगर कपूर, कुंकुम, गुग्गुल, वेलपत्र, दूर्वा, रोचन, सफेद चंदन, नील कमल और अनेक सुगंधित पुष्पों को अपनी शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक गंगा में छोड़े । सुभगे ! पुराण में कहे हुए 'गंगायै नारायण्यै शिवायै च नमोनमः' इस मंत्र को साथ-साथ पढ़ता रहे । मोहिनि ! इस विधान को प्रत्येक मास की पूर्णिमा या अमावस्या में प्रातः-काल एकाग्रचित होकर करना चाहिए ।।३२-३८।।

जो मनुष्य इस क्रम से एक वर्ष तक अपनी शक्त्यानुसार प्रसन्नचित्त हो गंगा पूजन करता है और हविष का अल्पाहार करते हुए ब्रह्मचारी रह कर दिन-रात नियमपूर्वक व्यतीत करता है मोहिनि ! उसे वर्ष के अन्त में दिव्य शरीर धारण कर दिव्य माला तथा वस्त्र और दिव्य आभूषणों से भूषित होकर गंगा जी प्रत्यक्ष हो वर देने के लिए सामने स्थित होती हैं । कल्याण रूपे ! इस प्रकार दिव्यरूपधारी गंगा का प्रत्यक्ष दर्शन कर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और उसकी जो जो कामनायें होती हैं सभी सफल हो जाती हैं । यदि कोई ब्राह्मण निष्काम करता है तो उसी जन्म में उसे मोक्ष मिल जाता है । इस प्रकार तुम्हारे पूछे हुए गुडधेनु आदि का विधान, मोक्षकारी गंगापूजन और लक्ष्मी नारायण को प्रसन्न करने वाला वार्षिक व्रत को मैंने कह सुनाया ।।३९-४४।।

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गंगोत्पत्ति के प्रसंग में बारहवां अध्याय समाप्त ।।१२।।

नानाफलसमायुक्तौ घ्राणगंधकरंडकौ । इत्येवं रचयित्वा तु धूपदीपैरथार्चयेत् ॥१४
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता । धेनुरूपेण सा देवी मम शांतिं प्रयच्छतु ॥१५
देहस्था या च रुद्राणां शंकरस्य सदा प्रिया । धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥१६
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहारूपा विभावसोः । चंद्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपा तु सा श्रिये ॥१७
चतुर्मुखस्य या लक्ष्मी र्लक्ष्मीर्या धनदस्य च । लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे ॥१८
स्वधा या पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां च या । सर्वपापहरा धेनुः सा मे शांतिं प्रयच्छतु ॥१९
एवमामंत्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । विधानमेतद्धेनूनां सर्वासामिह पठ्यते ॥२०
यास्तु पापविनाशिन्यः कीर्तिता दश धेनवः । तासां स्वरूपं वक्ष्यामि शास्त्रोक्तं शृणु मोहिनि ॥२१
प्रथमा गुडधेनुः स्याद्घृतधेनुरथापरा । तिलधेनुस्तृतीया च चतुर्थी जलसंज्ञिता ॥२२
पंचमी क्षीरधेनुश्च षष्ठी मधुमयी स्मृता । सप्तमी शर्कराधेनुर्दधिधेनुस्तथाष्टमी ॥२३
रत्नधेनुश्च नवमी दशमी तु स्वरूपतः । कुंभाःस्युर्द्रवधेनूनां चेतरासां तु राशयः ॥२४
सुवर्णधेनुमप्यत्र केचिदिच्छंति सूरयः । नवनीतेन तैलेन तथा केऽपि महर्षयः ॥२५
एतदेव विधानं स्यादेत एव उपस्कराः । मंत्रावाहनसंयुक्ताः सदा पर्वणि पर्वणि ॥२६
यथाश्रद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः । अनेकयज्ञफलदाः सर्वपापाहराः शुभाः ॥२७
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽथ वा पुनः । युगादौ चैव मन्वादौ चोपरागादिपर्वसु ॥२८
गुडधेन्वादयो देया भक्तिश्रद्धासमन्वितैः । तीर्थेषु स्वगृहे वापि गंगातीरे विशेषतः ॥२९
एवं दत्वा विधानेन धेनुं द्विजवराय च । प्रदक्षिणीकृत्य विप्रं दक्षिणाभिः प्रतोष्य च ॥३०

नाकें गंध (घिसे चन्दन आदि) की होनी चाहिए । इस प्रकार रचना कर धूप-दीप से धेनु की पूजा करते हुए प्रार्थना करे कि--जो समस्त भूतों की लक्ष्मी है और जो देवताओं में विराजमान है, वही देवी धेनुरूप होकर मुझे शांति प्रदान करे । रुद्रों के शरीर में जो सर्वदा स्थित रहती है और शंकर की जो प्रिया है, धेनुरूप होकर वह देवी मेरे पापों को नष्ट करे । विष्णु के वक्षःस्थल में जो लक्ष्मी स्थित हैं, अग्नि की स्वाहा रूप होकर प्रिया है, चन्द्रमा, सूर्य और इन्द्र की जो शक्ति रूप है वह धेनुरूप होकर मुझे कल्याण प्रदान करे । ब्रह्मा की जो लक्ष्मी है, कुबेर की जो लक्ष्मी है और लोकपालों की जो लक्ष्मी है वह धेनुरूप से मुझे वरदान देवे । पितरों की जो स्वधा है, यज्ञ में हवि आदि भक्षण करने वाले अग्नि की स्वाहा है, समस्त पाप को नष्ट करने वाली वही धेनु रूप हो मुझे शांति प्रदान करे । इस प्रकार प्रार्थना कर उस धेनु को ब्राह्मण के लिए अर्पित करे, समस्त धेनुओं के लिए यह विधान बताया गया है ॥५-२०॥

मोहिनि ! पाप विनाश करने वाली दस धेनु का जो वर्णन किया गया है, उनके शास्त्र में कहे गये स्वरूप को कह रहा हूँ, तुम सुनो । पहली गुडधेनु हैं, दूसरी घृतधेनु है, तीसरी तिलधेनु है, चौथी जलधेनु है, पाँचवीं दुग्ध-धेनु है, छठवीं मधुधेनु है, सातवीं शर्कराधेनु है, आठवीं दधिधेनु है, नववीं रत्नधेनु है और दशवीं साक्षात् धेनु है । पिघलने वाली धेनुओं के लिए घड़े और इतर धेनुओं के लिए राशियाँ[1] होनी चाहिए । कोई विद्वान् सुवर्णधेनु को मानते हैं, और कोई महर्षि लोग मक्खनधेनु और तेलधेनु का भी संग्रह करते हैं । यही धेनु के बनाने तथा पूजन का विधान है । मंत्र द्वारा आवाहन-पूजन करके प्रत्येक पर्व दिनों में श्रद्धापूर्वक धेनु-दान करने से भुक्ति और मुक्ति रूप उत्तम फल प्राप्त होते हैं, अनेक यज्ञों का फल भी मिलता है और समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥२१-२८॥

भक्ति श्रद्धापूर्वक उपर्युक्त धेनु का दान तीर्थ में या अपने गृह में करे परन्तु विशेषकर गंगा के किनारे करना

(१) ग्रामीण भाषा में इसको रास, कठई, डामा आदि कहते हैं । इसमें दूध दुहा जाता है ।

ऋत्विजः प्रीतिसंयुक्तो नमस्कृत्य विसर्जयेत् । ततः संपूजयेद्गंगां विधिना सुसमाहितः ।।३१
अष्टमूर्तिधरां देवीं दिव्यरूपां निरीक्ष्य च । शालितंदुलप्रस्थेन द्विप्रस्थपयसा तथा ।।३२
पायसं कारयित्वा च दत्वा मधु घृतं तथा । प्रत्येकं पलमात्रं च भक्तिभावेन संयुतः ।।३३
तत्पायसमपूपांश्च मोदका मंडलानि च । तथा गुंजार्द्धमात्रंच सुवर्णं रूप्यमेव च ।।३४
चंदनागरुकर्पूरकुंकुमानि च गुग्गुलम् । विल्वपत्राणि दूर्वा च रोचना सितचंदनम् ।।३५
नीलोत्पलानि चान्यानि पुष्पाणि सुरभीणि च । यथाशक्त्या महाभक्त्या गंगायां चैव निक्षिपेत् ।।३६
मंत्रेणानेन सुभगे पुराणोक्तेन चापि हि । गंगायै नारायण्यै शिवायै च नमोनमः ।।३७
एतदेव विधानं तु मासि मासि च मोहिनि । पौर्णमास्याममायां वा कार्यं प्रातः समाहितैः ।।३८
वर्षं यस्तुनरो भक्त्या यथाशक्त्यार्चयन्मुदा । हविष्याशी मिताहारो ब्रह्मचर्य्यसमन्वितः ।।३९
दिने वापि तथा रात्रौ नियमेन च मोहिनि । संवत्सरांते तस्यैषा गंगा दिव्यवपुर्द्धरा ।।४०
दिव्यमाल्यांबरा चैव दिव्यरत्नविभूषिता । प्रत्यक्षरूपा पुरतस्तिष्ठत्येव वरप्रदा ।।४१
एवं प्रत्यक्षरूपां तां गंगां दिव्यवपुर्धराम् । दृष्ट्वा स्वचक्षुषा मर्त्यः कृतकृत्योभवेच्छुभे ।।४२
यान्यान्कामयते मर्त्यः कामांस्तांस्तानवाप्नुयात् । निष्कामस्तु लभेन्मोक्षं विप्रस्तेनैव जन्मना ।।४३

एतद्विधानं च मयोदितं ते दृष्टं हि सर्वं गुडधेनुपूर्वम् ।
गंगार्चनं मुक्तिकरं व्रतं च सांवत्सरं श्रीपतितुष्टिदं हि ।।४४

इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणतो गंगोत्पत्तौ द्वादशोऽध्यायः ।।१२

चाहिए । इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मण को धेनु दान देकर प्रदणिक्षा करके दक्षिणा से उन्हें संतुष्ट करे; फिर हर्षित हो नमस्कार करके उन्हें विदा करे और इसके उपरान्त सावधान हो सविधि गंगा का पूजन करे ।।२९-३१।।

अष्टमूर्त्ति धारण करने वाली दिव्य रूप देवी का दर्शन करके शालि चावल तथा दूध का खीर बनावे । उसमें घी और मधु भी डाले पुनः भक्तिपूर्वक उस खीर, मालपूआ और मोदक (लड्डू), आधी रत्ती सोना तथा चांदी, चन्दन, अगर कपूर, कुंकुम, गुग्गुल, वेलपत्र, दूर्वा, रोचन, सफेद चंदन, नील कमल और अनेक सुगंधित पुष्पों को अपनी शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक गंगा में छोड़े । सुभगे ! पुराण में कहे हुए 'गंगायै नारायण्यै शिवायै च नमोनमः' इस मंत्र को साथ-साथ पढ़ता रहे । मोहिनि ! इस विधान को प्रत्येक मास की पूर्णिमा या अमावस्या में प्रातः-काल एकाग्रचित होकर करना चाहिए ।।३२-३८।।

जो मनुष्य इस क्रम से एक वर्ष तक अपनी शक्त्यानुसार प्रसन्नचित्त हो गंगा पूजन करता है और हविष का अल्पाहार करते हुए ब्रह्मचारी रह कर दित-रात नियमपूर्वक व्यतीत करता है मोहिनि ! उसे वर्ष के अन्त में दिव्य शरीर धारण कर दिव्य माला तथा वस्त्र और दिव्य आभूषणों से भूषित होकर गंगा जी प्रत्यक्ष हो वर देने के लिए सामने स्थित होती हैं । कल्याण रूपे ! इस प्रकार दिव्यरूपधारी गंगा का प्रत्यक्ष दर्शन कर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और उसकी जो जो कामनायें होती हैं सभी सफल हो जाती हैं । यदि कोई ब्राह्मण निष्काम करता है तो उसी जन्म में उसे मोक्ष मिल जाता है । इस प्रकार तुम्हारे पूछे हुए गुडधेनु आदि का विधान, मोक्षकारी गंगापूजन और लक्ष्मी नारायण को प्रसन्न करने वाला वार्षिक व्रत को मैंने कह सुनाया ।।३९-४४।।

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गंगोत्पत्ति के प्रसंग में बारहवां अध्याय समाप्त ।।१२।।

त्रयोदशोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

वसोर्वचनमाकर्ण्य गंगामाहात्म्यसूचकम् । पुनः पप्रच्छ राजेन्द्र तं विप्रं स्वपुरोहितम् ।।१

मोहिन्युवाच

श्रुतं विप्र मया सर्वं गोदानादि शुभावहम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि गंगाव्रतमनुत्तमम् ।।२
स्वर्णदीनां पूजनं च स्थापनं तत्र वा द्विज । किं फलं वद सर्वज्ञ त्वामहं शरणं गता ।।३
अधुना गतिदाता त्वं वर्जितायाश्च बंधुभिः । पत्या विरहिता चाहं पुत्रहीना विदांवर ।।४
त्वामेव शरणं प्राप्ता पितुर्वचनगौरवात् । तद्भवान्प्रणताया मे गंगामाहात्म्यसंयुतम् ।।५
देवताराधनं ब्रूहि यच्छ्रुत्वा मुच्यते ह्यघात्

वशिष्ठ उवाच

तच्छ्रुत्वा मोहिनीवाक्यं वसुर्विप्रः प्रतापवान् । सभाज्य मोहिनीं भूप प्राह वेदविदांवरः ।।६

वसुरुवाच

साधुपृष्टं त्वया देवि लोकानां हितकाम्यया ।।७
गंगामाहात्म्यमखिलं महापापप्रणाशनम् । वृषध्वजेन कथितं शिवेन दयया पुरा ।।८
प्रीत्या देव्याभिपृष्टेन गंगातीरनिवासिना । देवैस्तु भुंक्ते पूर्वाह्णे मध्याह्ने ऋषिभिस्तथा ।।९
अपराह्णे च पितृभिः शर्वर्यां गुह्यकादिभिः । सर्वा वेला अतिक्रम्य नक्तभोजनमुत्तमम् ।।१०

वशिष्ठ ने कहा—हे राजेन्द्र ! वसु की गंगामाहात्म्य सूचक वाणी को सुनकर मोहिनी ने अपने पुरोहित ब्राह्मण वसु से पुनः पूछा ।

मोहिनी ने कहा—ब्राह्मणदेव ! कल्याणकारी गोदान आदि का विधान तो मैं सुन चुकी। अब सर्वश्रेष्ठ गंगा का व्रत सुनना चाहती हूँ। द्विज ! गंगा का स्थापन-पूजन करने से क्या फल होता है, इसे मैं सुनना चाहती हूँ। आप सर्वज्ञ हैं, मैं आपकी शरण में हूँ, मुझे सब सुनाइये। इस समय मुझे उत्तम गति देने वाले आप ही हैं, क्योंकि मेरे कोई बन्धुगण नहीं हैं। हे विद्वानों में श्रेष्ठ ! मैं अभागिन पति तथा पुत्र से भी हीन हूँ। पिता का वचन मान मैं आपकी शरण में आई हूँ। अतः मुझ दीन को गंगामाहात्म्य और देवता की आराधना, जिसके करने तथा सुनने से पाप नष्ट हो जाता है, सुनाइये ।।१-५।।

वशिष्ठ ने कहा—मोहिनी के वाक्य को सुनकर प्रतापी ब्राह्मण वसु मोहिनी से आदरपूर्वक पुनः बोले।

वसु ने कहा—देवि ! लोक की हितकामना से तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, महापाप को नष्ट करने वाले इस समस्त गंगामाहात्म्य को वृषभध्वज भगवान् शंकर ने परम आग्रहपूर्वक गंगा के किनारे बैठकर पार्वती जी के पूछने पर बतलाया था।

देवता लोग मध्याह्न के पहले भोजन करते हैं, ऋषिगण मध्याह्न में भोजन करते हैं, पितर लोग अपराह्न में भोजन करते हैं, गुह्यक लोग रात्रि में भोजन करते हैं। अतः समस्त उक्त समय का उल्लंघन कर नक्त-भोजन सर्वोत्तम कहा गया है ।।६-१०।।

उपवासाद्वरं भैक्ष्यं भैक्ष्याद्वरमयाचितम् । अयाचिताद्वरं नक्तं तस्मान्नक्तं समाचरेत् ॥११
हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम् । अग्निकार्यमधः शय्यां नक्ताशी षट् समाचरेत् ॥१२
गंगातीरे माघमासे यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । शिवायतनपार्श्वे तु कृशरं घृतसंयुतम् ॥१३
नैवेद्यं च निवेद्यैव कृशरान्नं शिवस्य तु । काष्ठमौनेन भुंजानो जिह्वालौल्यं विवर्जयेत् ॥१४
पलाशपत्रे भुंजानः शिवं स्मृत्वा जितेन्द्रियः । धर्मराजस्य देव्याश्च पृथक्पिंडं प्रकल्पयेत् ॥१५
सोपवासश्चतुर्दश्यां भवेदुभयपक्षयोः । पौर्णमास्यां तु गंधैश्च गंगायाः सलिलैस्तथा ॥१६
शिवं संस्नाप्य पयसा मध्वाज्यदधिभिः पृथक् । तथैव हेमपुष्पं च लिंगमूर्ध्नि विनिक्षिपेत् ॥१७
ततो दद्यात्तु शक्त्यैवापूपं च घृतपाचितम् । तिलाढकं प्रगृह्याथ शिवलिंगोपरि क्षिपेत् ॥१८
नीलोत्पलैश्च सर्वेशं पूजयेत्पंकजैरपि । तदलाभेतु सौवर्णैः पंकजैः पूजयेद्धरम् ॥१९
पायसं चान्नमध्वाक्तं घृतयुक्तं तु गुग्गुलम् । घृतदीपं तथा चैव चंदनाद्यैर्विलेपनम् ॥२०
दद्याद्भक्त्या महेशाय तथा पत्रफलानि च । कृष्णगोमिथुनं चैव सरूप्यं च निवेदयेत् ॥२१
भोजयेद् ब्राह्मणानष्टौ मासांते तु सदक्षिणान् । वर्जयेन्मधु मांसं च तं मासं ब्रह्मचर्यवान् ॥२२
एवं कृत्वा यथोद्दिष्टमेकवारमिदं व्रतम् । यमैश्च नियमैर्युक्तः श्रद्धाभक्तिपरायणः ॥२३
इह भोगानवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमां गतिम् । इंद्रनीलप्रतीकाशैर्विमानैः शिखिसंयुतैः ॥२४
दिव्यरत्नमयैश्चैव दिव्य भोगसमन्वितैः । गत्वा शिवपुरं रम्यं सर्वस्वकुलसंयुतः ॥२५
सुहृद्भिर्विविधैश्चैव विविधानप्यभीप्सितान् । भुक्त्वा भोगानशेषांश्च यावदाभूतसंप्लवम् ॥२६
ततो भवति धर्मात्मा जंबूद्वीपपतिस्तथा । अत्र भुंक्ते समस्तांश्च भोगान्विगतकल्मषः ॥२७
सुरूपः सुभगश्चैव तथा विहितशासनः । सर्वरोगविनिर्मुक्तः सोऽप्येतत्फलभाग्भवेत् ॥२८

उपवास करने से भिक्षा माँगकर भोजन कर लेना उत्तम है, भिक्षा माँगकर भोजन करने से बिना माँगे यदि मिल जाय तो वह बहुत अच्छा है । उक्त अयाचित भोजन से भी बढ़कर माहात्म्य नक्तभोजन का है। अतः नक्त-भोजन करने का विधान मानना चाहिए । हविष्यान्न भोजन, स्नान, सत्यभाषण, अल्पाहार, अग्निकार्य (हवन) और भूमिशयन, इन बातों पर नक्ताशी को विशेष ध्यान देना चाहिए । जो व्यक्ति गंगा के किनारे माघ के महीने में शिवमन्दिर के समीप जाकर नक्तभोजन का विधान करते हैं और घृत समेत खिचड़ी तथा नैवेद्य शिव को अर्पण कर मौन हो स्वादिष्ट वस्तु का त्याग कर भोजन करते हैं, उन्हें चाहिए कि जितेन्द्रिय होकर धर्मराज और देवी के निमित्त पृथक्-पृथक् पिण्ड बनाकर अर्पित करें और स्वयं पलाश के पत्ते पर भोजन करें। कृष्ण-शुक्ल दोनों पक्ष की चतुर्दशी को उपवास करें, पूर्णिमा के दिन गंध तथा गंगाजल, दूध, मधु, घी और दही से क्रमशः शिव को स्नान करा कर शिवलिंग पर धतूरे का पुष्प चढ़ावें । फिर अपनी शक्ति के अनुसार घृत में पका हुआ मालपूआ, तिल आदि शिव-लिंग पर चढ़ावें । नील कमल और श्वेत कमल से शंकर की पूजा करें । यदि ये सब न मिलें तो सुवर्णनिर्मित पंकज से ही पूजा करें ॥११-१९॥

घृत और मधु मिश्रित खीर, गुग्गुल, घृत का दीपक, चंदन और बेलपत्र तथा फल आदि भक्तिपूर्वक महेश को अर्पण कर पुनः चांदी समेत काली गाय का दान करे । मास के अंत में आठ ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करे । उस व्रती को चाहिए कि उस मास में मधु और मांस का त्याग कर ब्रह्मचर्य से रहे । इस प्रकार श्रद्धा और भक्तिपूर्वक नियम समेत एक बार भी इसके व्रत को कर प्राणी इस लोक में उत्तम भोगों को भोगता है और अन्त में उत्तम गति प्राप्तकर इन्द्रनील मणि के समान कलश वाले, दिव्यरत्नों के बने हुए, दिव्य भोग की सामग्रियों से सम्मानित विमानों पर सकुटुम्ब बैठकर रमणीक शिवपुरी में जा, अपने इष्ट मित्रों के साथ अनेक प्रकार के अभिलषित भोगों का अनुभव करते हुए महाप्रलय के समय तक वहाँ निवास कर पुनः इस लोक

वैशाखे शुक्लपक्षे वा चतुर्दश्यां समाहितः । शाल्यन्नं क्षीरसंयुक्तं यः कुर्यान्नक्तभोजनम् ॥२९
शिवं संपूज्य पुष्पाद्यैर्भोज्यं तु संनिवेद्य च । काष्ठं मौनेन भुंजानो वटकाष्ठेन वै तथा ॥३०
मौनेन प्रयतो भूत्वा कुर्याद्वै दंतधावनम् । शिवलिंगसमीपे तु गंगातीरे निशि स्वपेत् ॥३१
पौर्णमास्यां प्रभाते तु गंगायां विधिना तथा । स्नात्वोपवासं संकल्प्य कुर्याज्जागरणं निशि ॥३२
लिंगं घृतेन संस्नाप्य पुष्पगंधादिभिस्तथा । नैवेद्यधूपदीपैश्च संपूज्य वृषभं शुभम् ॥३३
श्वेतपुष्पवस्त्राद्यैर्हरिद्रैश्चन्दनैस्तथा । अलंकृत्य विधानेन शिवाय विनिवेदयेत् ॥३४
ब्राह्मणांश्च यथाशक्ति पायसेन तु भोजयेत् । एवं सकृच्च यो भक्त्या करोति श्रद्धयान्वितः ॥३५
लभते दैवपादोनयुगानां हि सहस्रकम् । तपः कृत्वा तु नियमाद्यत्पुण्यं तदसंशयम् ॥३६
हँसकुंदप्रभायुक्तैर्विमानैश्चंद्रसन्निभैः । सुश्वेतवृषयुक्तैश्च मुक्ताजालविभूषितैः ॥३७
स्वकीयपितृभिः सार्द्धं प्रयातीश्वरमंदिरम् । नीलोत्पलसुगंधाभिः सुरूपाभिः समंततः ॥३८
कांताभिर्दिव्यरूपाभिर्भुक्त्वा भोगाननेकशः । अनंतकालमैश्वर्ययुक्तो भूत्वा ततो भुवि ॥३९
जायते स महीपालः कीर्त्यैश्वर्यसमन्वितः । एकच्छत्रेण स महीं पालयत्याज्ञया सह ॥४०
अंते वैराग्यसंपन्नो गंगां स लभते पुनः । स तया श्रद्धया युक्तो गंगायां मरणं लभेत् ॥४१
तथा तत्र स्मृतिं लब्ध्वा मोक्षमाप्नोति सध्रुवम् । ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां हस्तसंयुते ॥४२
गंगातीरे तु पुरुषो नारी वा भक्तिभावतः । निशायां जागरं कृत्वा गंगां दशविधैस्ततः ॥४३
पुष्पैर्गंधैश्च नैवेद्यैः फलैश्च दशसंख्यया । तथैव दीपैस्ताम्बूलैः पूजयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥४४
स्नात्वा भक्त्या तु जाह्नव्यां दशकृत्वो विधानतः । दशप्रसृतिकृष्णांश्च तिलान्सर्पिश्च वै जले ॥४५
सक्तुपिंडान्गुडपिंडान्दद्याच्च दशसंख्यया । ततो गंगातटे रम्ये हेम्नः रूप्येण वा तथा ॥४६
गंगायाः प्रतिमां कृत्वा वक्ष्यमाणस्वरूपिणीम् । पद्मस्वस्तिकचिह्नस्य संस्थितस्य तथोपरि ॥४७

में जम्बूद्वीप का अधिपति होता है। वहाँ पाप रहित एवं धार्मिक होकर निखिल उत्तम भोगों का उपभोग करता है। वह बड़ा सुन्दर होता है और समस्त सौभाग्यों से समन्वित हो नीरोग शरीर से राज्य करता है। वह भी इस फल का भागी होता है। वैशाख-शुक्ल-चतुर्दशी में नक्त व्रत करने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह सावधानी से साठी चावल तथा दूध का खीर बनाकर रात्रि के प्रथम प्रहरार्ध में भोजन करे। तदनन्तर पुष्प आदि से शिव की पूजाकर भोज्य पदार्थ उन्हें समर्पित करके मौन होकर भोजन करे। फिर मौनपूर्वक स्वच्छता के साथ दाँत-मुँह धो रात्रि में गंगा के किनारे शिवलिंग के समीप शयन करे। पूर्णिमा के दिन प्रातःकाल गंगा में विधिपूर्वक स्नान कर पुनः संकल्प करके उपवास और रात्रि में जागरण करे। घृत से शिवलिंग को स्नान करा के पुष्प-गंध आदि वस्तुओं से पूजन कर धूप-दीप और नैवेद्य का अर्पण करे और बैल का भी पूजन कर सफेद फूलों एवं वस्त्रों तथा हरदी-चन्दनों से अलंकृत करके उसे शिव के लिए निवेदन करे। तदनन्तर यथाशक्ति ब्राह्मणों को खीर भोजन करावे, इस प्रकार श्रद्धाभक्तिपूर्वक एक बार भी जो कोई करता उसे दो सहस्र युगों तक नियमपूर्वक तप करने का फल निस्संदेह प्राप्त होता है ॥२०-३६॥

और हंस तथा कुंद पुष्प के समान कान्तिवाले तथा चन्द्रमा के समान मनोरम हो, जिसमें अत्यन्त धवल बैल जुते हों, मोतियों के गुच्छों से सुशोभित हो ऐसे विमान पर अपने पितरों के साथ बैठकर शिव के मन्दिर में जा निवास करता है, और वहाँ नीलकमल के समान सुगन्धित होने वाली तथा अंग-प्रत्यंग सुन्दर हों ऐसी दिव्य रूप धारण करने वाली कामिनियों के साथ अनेक प्रकार का भोग अनन्तकाल तक भोगकर पश्चात् ऐश्वर्यशाली राजा हो इस लोक में पैदा होता है। उसका ऐश्वर्य और यश चारों ओर फैलता है, एवं वह एकच्छत्र (सम्राट्) हो पृथिवी पर शासन करता है। पुनः अंत समय में विरक्त हो गंगातट पर श्रद्धापूर्वक निवास करते हुए वहीं शरीर परित्याग भी

वस्त्रस्त्रग्दामकंठस्य पूर्णकुंभस्य चोपरि । संस्थाप्य पूजयेद्देवीं तदलाभे मृदादि वा ।।४८
अथ तत्राप्यशक्तश्चेल्लिखेत्पिष्टेन वै भुवि । चतुर्भुजां सुनेत्रां च चंद्रायुतसमप्रभाम् ।।४९
चामरैर्वीज्यमाना च श्वेतच्छत्रोपशोभिताम् । सुप्रसन्नां च वरदां करुणार्द्रनिजांतराम् ।।५०
सुधाप्लावितभूपृष्ठां देवादिभिरभिष्टुताम् । दिव्यरत्नपरीतां च दिव्यमालानुलेपनाम् ।।५१
ध्यात्वा जले यथाप्रोक्तां तत्रार्चायां तु पूजयेत । वक्ष्यमाणेन मंत्रेण कुर्यात्पूजां विशेषतः ।।५२
पंचामृतेन च स्नानमर्चायां तु विशिष्यते । प्रतिमाग्रे स्थण्डिले तु गोमयेनोपलेपयेत् ।।५३
नारायणं महेशं च ब्रह्माणं भास्करं तथा । भगीरथं च नृपतिं हिमवंतं नगेश्वरम् ।।५४
गंधपुष्पादिभिश्चैव यथाशक्ति प्रपूजयेत् । दशप्रस्थान्तिलान्दद्यादृश विप्रेभ्य एव च ।।५५
दशप्रस्थान्यवान्दद्याद्दश गव्यैर्यथा हि तान् । मत्स्यकच्छपमंडूकमकरादिजलेचरान् ।।५६
कारितान्वै यथाशक्ति स्वर्णेन रजतेन वा । तदलाभे पिष्टमयानभ्यर्च्य कुसुमादिभिः ।।५७
गंगायां प्रक्षिपेत्पूर्वं मंत्रेणैव तु मंत्रवित् ।।
रथयात्रादिने तस्मिन्विभवे सति कारयेत् । रथारूढप्रतिकृतिं गंगायास्तूत्तरामुखाम् ।।५८
अमंत्या दर्शनं लोके दुर्लभं पापकर्मणाम् । दुर्गाया रथयात्रास्ति तथैवात्रापि कारयेत् ।।५९
एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः । दशपापैर्वक्ष्यमाणैः सद्य एव विमुच्यते ।।६०

इति श्री वृहन्नारदीयपुराणतो गंगोत्पत्तौ त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३

करता है, और उस समय ज्ञान स्मरण होने के कारण उसे निस्संदेह मोक्ष मिलता है । ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की हस्त-नक्षत्र-युक्त दशमी तिथि में गंगा के किनारे पुरुष या स्त्री भक्तिपूर्वक रात्रि में जागरण करे और दस प्रकार के पुष्प, गंध, नैवेद्य, फल, दीपक तथा ताम्बूल आदि से श्रद्धापूर्वक गंगा की पूजा कर दस बार शक्ति से गंगा में स्नान करे । फिर दस अँजुली कृष्ण तिल और घी तथा दस सक्तुपिण्ड एवम् दस गुड़पिण्ड जल में चढ़ावे ।

तदनन्तर गंगा के सुन्दर तट पर सुवर्ण अथवा चाँदी की गंगा की प्रतिमा को, जिसके नीचे कल्याणकारी कमल का चिह्न बना हो और वस्त्र तथा माला से कण्ठ सुशोभित हो ऐसे कलश के ऊपर स्थित करे । यदि सुवर्ण-चाँदी न हो सके तो मिट्टी की मूर्ति बनावे, उसकी भी शक्ति न हो तो भूमि में किसी चूर्ण (आटा) आदि से इस प्रकार बनावे जिसमें चार भुजायें हों, सुन्दर नेत्र हों, चन्द्रमा के समान कान्ति हो, चामर चल रहा हो, ऊपर श्वेत-रमणीक छत्र सुशोभित हों, प्रसन्न मुख हो, वरदायिनी मालूम होती हो, अंतःकरण करुण रस से भरा हो, वहाँ की भूमि सुधा में डूबी हो, देवता लोग स्तुति करते हों, दिव्य रत्न और दिव्य मालाओं से सुशोभित हो । इस प्रकार गंगा की मूर्ति का ध्यान कर आगे कहे जाने वाले मंत्रों-द्वारा विशेष पूजा करे । पूजन में विशेषकर पंचामृत से स्नान कराना चाहिए, प्रतिमा के सामने भूमि को गोबर से लीपकर वहाँ नारायण, महेश, ब्रह्मा, सूर्य, राजा भगीरथ और पर्वतराज हिमालय का यथाशक्ति गंध-पुष्प आदि से पूजन करे । दस ब्राह्मणों को दस सेर तिल, दस सेर यव तथा दस सेर घी प्रदान करे । मत्स्य, कच्छप, मेढक तथा मकर आदि जलचरों की मूर्ति यथाशक्ति सुवर्ण या चाँदी से बनावे । यदि शक्ति न हो तो चूर्ण से ही बनाकर पुष्प आदि से पूजन करे और मंत्रवेत्ता को चाहिए कि मंत्रपूर्वक गंगा में छोड़ दे ।।३७-५७।।

यदि विभव हो तो उस दिन रथयात्रा का भी उत्सव करे । रथ पर उत्तर मुँह करके स्थापित गंगाप्रतिमा के दर्शन से मनुष्यों का पाप नष्ट हो जाता है । दुर्गा की जैसी रथयात्रा होती है उसी तरह गंगारथयात्रा भी मनानी चाहिए । जो व्यक्ति कृपणता से रहित होकर उपर्युक्त प्रकार से गंगापूजन करता है वह आगे कहे जाने वाले दस प्रकार के पापों से तुरन्त मुक्त हो जाता है ।।५८-६०।।

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गंगोत्पत्ति के प्रसंग में तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।।१३।।

चतुर्दशोऽध्यायः

वसुरुवाच

स्वदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः । परोपसेवां च तथा कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ।।१
पारुष्यमनृतं वापि पैशुन्यं चापि सर्वशः । असंबद्धप्रलापश्च वाचिकं स्याच्चतुर्विधम् ।।२
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ।।३
एतैर्दशविधैः पापैः कोटिजन्मसमुद्भवैः । मुच्यते नात्र सन्देहो ब्रह्मणो वचनं यथा ।।४
दश त्रिंशच्च तान्पूर्वान्पितृनेव तथापरान् । उद्धरत्येव संसारान्मंत्रेणानेन पूजिता ।।५
"ओं नमो दशहरायै नारायण्यै गंगायै नमः" । इति मंत्रेण यो मर्त्यो दिने तस्मिन्दिवानिशम् ।।६
जपेत्पंचसहस्राणि दशधर्मफलं लभेत् । उद्धरेद्दशपूर्वाणि पराणि च भवार्णवात् ।।७
वक्ष्यमाणमिदं स्तोत्रं विधिना प्रतिगृह्य च । गंगाग्रे तद्दिने जप्यं विष्णुपूजां प्रवर्तयेत् ।।८
ओं नमः शिवायै गंगायै शिवदायै नमोऽस्तु ते । नमोऽस्तु विष्णुरूपिण्यै गंगायै ते नमोनमः ।।९
सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये । सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठे नमोऽस्तु ते ।।१०
स्थाणुजंगमसंभूतविषहंत्रि नमोऽस्तु ते । संसारविषनाशिन्यै जीवनायै नमोनमः ।।११
तापत्रितयहंत्र्यै च प्राणेश्वर्यै नमोनमः । शांत्यै संतापहारिण्यै नमस्ते सर्वमूर्तये ।।१२
सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापविमुक्तये । भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भोगवत्यै नमोनमः ।।१३

वसु ने कहा—अपने द्वारा दान की गई वस्तु का स्वयं उपभोग करना, हिंसा करना और दूसरे की स्त्री की सेवा करना ये तीन प्रकार के शारीरिक पाप हैं। कठोर वाणी बोलना, झूठ बोलना, चुगुलखोरी करना और बिना प्रसंग के सब तरह की बातें कहना ये चार प्रकार के वाणी द्वारा (वाचिक) पाप होते हैं। दूसरे के धन को अपनाने के लिए विचार करना, दूसरे को दुःख पहुँचाने के लिए चिंतन करना और असत्य बातों पर दृढ़ रहना ये तीन प्रकार के मानसिक पाप हैं। करोड़ों जन्म के इन दस प्रकार के पापों से निस्संदेह मुक्त होता है, इसे ब्रह्मा ने स्वयं कहा है ।।१-४।।

इस मंत्र से पूजा करने पर गंगा उसके चालीस पीढ़ी पूर्व के और चालीस पीढ़ी आगे के पितरों का उद्धार करती हैं। 'ओं नमो दशहरायै नारायण्यै गंगायै नमः' इस मंत्र का जो मनुष्य रात-दिन में पाँच हजार जप कर लेता है, उसे दस धर्म का पुण्यफल मिलता है और वह दस पीढ़ी पूर्व के और दस पीढ़ी पश्चात् के जीवों का संसार-सागर से उद्धार करता है। आगे कहे जाने वाले स्तोत्र को विधिपूर्वक गंगा के सामने पढ़कर तब विष्णु का पूजन करना चाहिए। शिवा (शिवप्रिया) रूप गंगा को नमस्कार है, कल्याण-प्रदान करने वाली गंगे ! तुम्हें नमस्कार है, विष्णु रूप धारण करने वाली गंगा को बार-बार नमस्कार है । समस्त देवताओं का रूप धारण करने वाली और ओषधि रूप तुम्हें नमस्कार है, समस्त प्राणियों के सम्पूर्ण रोगों के वैद्य रूप को नमस्कार है ।।५-१०

चर और अचर में उत्पन्न विष का नाश करने वाली तुम्हें नमस्कार है, संसार के विष का नाश कर जीवनदान देने वाली को बार-बार नमस्कार है। तीनों (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यामिक) तापों का नाश करने वाली प्राणेश्वरी (गंगा) को नमस्कार है, शांति-स्वरूप और संतापहारिणी तथा समस्त मूर्तियों में निवास करने वाली को नमस्कार है। सब प्रकार से अत्यन्त शुद्ध करने वाली तथा पाप से मुक्त करने वाली को नमस्कार है, भुक्ति और मोक्ष देने वाली और भोगवती को बार-बार नमस्कार है। मंदाकिनी को नमस्कार है, स्वर्ग पहुँचाने वाली को बार-बार

मंदाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमोनमः । नमस्त्रैलोक्यमूर्तायै त्रिदशायै नमोनमः ॥१४
नमस्ते शुक्लसंस्थायै क्षेमवत्यै नमोनमः । त्रिदशासनसंस्थायै तेजोवत्यै नमोऽस्तु ते ॥१५
मंदायै लिंगधारिण्यै नारायण्यै नमोनमः । नमस्ते विश्वमित्रायै रेवत्यै ते नमोनमः ॥१६
बृहत्यै ते नमो नित्यं लोकधात्र्यै नमोनमः । नमस्ते विश्वमुख्यायै नंदिन्यै ते नमोनमः ॥१७
पृथ्व्यै शिवामृतायै च विरजायै नमोनमः । परावरगताद्यायै तारायै ते नमोनमः ॥१८
नमस्ते स्वर्गसंस्थायै अभिन्नायै नमोनमः । शांतायै ते प्रतिष्ठायै वरदायै नमोनमः ॥१९
उग्रायै मुखजल्पायै संजीविन्यै नमोनमः । ब्रह्मगायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमोनमः ॥२०
प्रणतार्तिप्रभंजिन्यै जगन्मात्रे नमोनमः । विलुषायै दुर्गहंत्र्यै दक्षायै ते नमोनमः ॥२१
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मंगलायै नमोनमः । परापरे परे तुभ्यं नमो मोक्षप्रदे सदा ।
गंगा ममाग्रतोभूयाद्गंगा मे पार्श्वयोस्तथा ॥२२
गंगा मे सर्वतो भूयात्त्वयि गंगेऽस्तु मे स्थितिः । आदौ त्वमंते मध्ये च सर्वा त्वं गांगते शिवे ॥२३
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणप्रभु । गंगे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमोनमः ॥२४
इतीदं पठति स्तोत्रं नित्यं भक्तिपरस्तु य । शृणोति श्रद्धया वापि कायवाचिकसंभवै ॥२५
दशधा संस्थितैर्दोषैः सर्वैरेव प्रमुच्यते । रोगी प्रमुच्यते रोगान्मुच्येतापन्नआपद ॥२६
द्विषद्भ्यो बंधनाच्चापि भयेभ्यश्च विमुच्यते । सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते ॥२७
इदं स्तोत्रं गृहे यस्य लिखितं परिपूज्यते । नाग्निचौरभयं तत्र पापेभ्योऽपि भयं नहि ॥२८

लोक रूप मूर्ति धारण करने वाली देवी को नमस्कार है । शुक्ल रूप से स्थिर होने वाली को नमस्कार है, कल्याण रूप वाली को बार-बार नमस्कार है, देवताओं के आसन पर स्थित रहने वाली और तेजरूपधारिणी को नमस्कार है । मंदा रूप तथा लिंग धारण करने वाली नारायणी को नमस्कार है, विश्व की हितैषिणी और रेवती रूप को नमस्कार है ॥११-१६॥

वृहती रूप आपको नित्य नमस्कार है, लोक धारण करने वाली को नमस्कार है, संसार में प्रधान तथा नंदिनी रूप आपको नमस्कार है । पृथिवी रूप आपको नमस्कार है । शिवा, अमृत रूप और अत्यन्त शुद्ध रूप वाली को नमस्कार है । बड़े और छोटे सब में व्याप्त रहने वाली और तारा रूप आपको नमस्कार है । स्वर्ग में स्थित रहने वाली और अभिन्न रहने वाली को बार-बार नमस्कार है । शांति रूप, प्रतिष्ठा रूप और वरदान देने वाली को बार-बार नमस्कार है । उग्र रूप धारण करने वाली, मुख की वाणी रूप और संजीवनी रूप आपको नमस्कार है । ब्रह्म को प्राप्त करने वाली, ब्रह्म को प्राप्त कराने वाली तथा पाप को नष्ट करने वाली को नमस्कार है । भक्तों के संकटों का नाश करने वाली जगत् माता आपको नमस्कार है । अत्यन्त शुद्ध रूप, दुर्ग का नाश करने वाली दक्ष रूप आपको नमस्कार है । समस्त आपत्तियों का नाश करने वाली मंगल रूप आपको बार-बार नमस्कार है । पर (उत्कृष्ट) रूप और अपर (अत्यन्त लघु) रूप तथा मोक्ष देने वाली आपको सदा नमस्कार है । मेरे सामने गंगा हों, मेरे दोनों तरफ गंगा हों, मेरे चारों ओर गंगा हों और हे गंगे ! तुझमें मेरी स्थिति हो, तुम आदि, मध्य और अंत में वर्तमान रहती हो, पृथिवी में आकर कल्याण देने वाली हे शिवे ! तुम्हीं समस्त रूप हो । तुम्हीं मूल प्रकृति हो, तुम्हीं साक्षात् नारायण प्रभु हो, हे गंगे ! तु परमात्मा और शिव हो । अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार है । जो भक्ति-पूर्वक इस स्तोत्र को पढ़ता है या श्रद्धा समेत सुनता है, उसे कायिक और वाचिक दस पापों से छुटकारा मिलता है । रोगी रोग से मुक्त होता है, आपत्ति वाले की आपत्ति छूट जाती है, शत्रु से, बंधन से और भय से मुक्त हो जाता है, सब प्रकार के सुखों को भोग कर अंत में ब्रह्म में लीन होता है । लिखा हुआ यह स्तोत्र जिसके घर में रहकर पूजित होता है, उसे अग्नि और चोर का भय नहीं होता है तथा पापभय भी उसे नहीं होता । उस दशमी को गंगा-जल में

तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गंगाजले स्थितः । जपंस्तु दशकृत्वश्च दरिद्रोवापि चाक्षमः ॥२९
सोऽपि तत्फलमाप्नोति गंगां संपूज्य भक्तितः । पूर्वोक्तेन विधानेन फलं यत्परिकीर्तितम् ॥३०
यथा गौरी तथा गंगा तस्माद् गौर्यास्तु पूजने । विधिर्यो विहितः सम्यक्सोऽपि गंगाप्रपूजने ॥३१
यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथाह्युमा । उमा यथा तथा गंगा चात्र भेदा न विद्यते ॥३२
विष्णुरुद्रान्तरं यश्च गंगागौर्यंतरं यथा । लक्ष्मीगौर्यंतरं यश्च प्रब्रूते मूढधीस्तु सः ॥३३
शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गंगायामुत्तरायणे । धन्या देहं विमुंचंति हृदयस्थे जनार्दने ॥३४
ये मुंचंति नराः प्राणान् गंगायां विधिनंदिनि । ते विष्णुलोकं गच्छन्ति स्तूयमाना दिवि स्थितैः ॥३५
अर्द्धोदकेन जाह्नव्यां म्रियतेऽनशनेन यः । स याति न पुनर्जन्म ब्रह्मसायुज्यमेति च ॥३६
या गतिर्योगयुक्तस्य सात्त्विकस्य मनीषिणः । सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गंगाया तु शरीरिणः ॥३७
अनशनं गृहीत्वा यो गंगातीरे मृतो नरः । सत्यमेव परं लोकमाप्नोति पितृभ्यः सह ॥३८
गंगायां मरणात्प्राणान् यो प्राज्ञस्त्यक्तुमिच्छति । गतानि बहुजन्मानि यत्र यत्र मृतानि च ॥३९
महांश्चापि गतः कालो यत्र तत्रापि गच्छतः । अत्र दूरे समीपे च सदृशं योजनद्वयम् ॥४०
गंगायां मरणेनेह नात्र कार्या विचारणा । ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कामतोऽकामतोऽपिवा ॥४१
गंगायां तु मृतो मर्त्यः स्वर्गं मोक्षं च विन्दति । प्राणेषूत्सृज्यमानेषु यो गंगां स्मरेन्नरः ॥४२
स्पृशेद्वा पापशीलो वा सर्वे यांति परां गतिम् ॥४३॥

गंगां गत्वा यैः शरीरं विसृष्टं प्राप्ता धीरास्ते तु देवैः समत्वम् ।
तस्मात्सर्वान्प्रोह्य मुक्तिप्रदान्वै सेवेद्गंगामाशरीरस्य पातम् ॥४४॥

स्थित होकर दस बार जो जपता है, और वह यदि अशक्त या दरिद्र हो तो उसे भी उसके उपरान्त भक्तिपूर्वक गंगा पूजन करने से वही फल मिलेगा जो फल उपरोक्त विधि के साथ पूजन करने से कहा गया है । जैसी गौरी हैं वैसी ही गंगा हैं । इसलिए गौरी पूजन में जो विधान कहा गया है वही गंगा पूजन में भी है । जैसे शिव हैं वैसे विष्णु हैं और जैसे विष्णु हैं वैसी ही उमा हैं तथा जैसी उमा वैसी गंगा हैं, इनमें कोई भेद नहीं है ॥१७-३२॥

विष्णु और रुद्र में, गंगा और गौरी में तथा लक्ष्मी और गौरी में जो भेद निकालते हों वे मूर्ख हैं। सूर्य उत्तरायण होने पर शुक्ल पक्ष में और गंगा की भूमि में किसी दिन सूर्यास्त के पहले जो कोई हृदय में भगवान् का ध्यान करते हुए शरीर का त्याग करते हैं वे धन्य हैं । हे विधिनंदिनि ! जो प्राणी गंगा में प्राण-परित्याग करते हैं देवता लोग उनकी प्रार्थना करते हुए उन्हें विष्णु-लोग में ले जाते हैं । गंगा के आधे जल में अनशन करते हुए जो मरता है, वह ब्रह्म में सायुज्य मोक्ष पाता है और कभी पैदा नहीं होता । जो गति सात्विक वृत्ति से रहने वाले विद्वान् योगी की होती है, वही गति गंगा में प्राण त्यागने वाले को मिलती है । गंगा के तट पर अनशन करके जो मरता है, वह अपने पितरों के समेत उत्तम सत्यलोक में पहुँचता है ॥३३-३८॥

जो विद्वान् मरने से पूर्व गंगा में प्राणत्याग करने की इच्छा करता है, उसके जहाँ-तहाँ जन्म लेना, मरना तथा जन्म लेते-मरते बहुत काल बिताना––ये सब चीजें दूर हो जाती हैं (अर्थात् वह मुक्त हो जाता है) गंगा के किनारे दो योजन (आठ कोस) तक एक समान है । अतः इसके मध्य में ज्ञान या अज्ञान से निष्काम या सकाम किसी भी प्रकार मरने में कोई विचार नहीं करना चाहिए । गंगा में जो मनुष्य मरता है, उसे स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होता है; किन्तु प्राण-त्याग के समय जो गंगा का स्मरण करता है या स्पर्श करता है, वह महान् पापी क्यों न हो उसकी उत्तम गति होती है । जो गंगा में अपना शरीर-त्याग करते हैं, वे देवता के समान होकर सुखी रहते हैं । अतः समस्त मुक्ति-प्रद उपायों का त्याग कर जब तक शरीर का त्याग न हो तब तक गंगा की सेवा करनी चाहिए ॥३९-४४॥

अंतरिक्षे क्षितौ तोये पापीयानपि यो मृतः । ब्रह्मविष्णुशिवैः पूज्यं पदमक्षय्यमश्नुते ।।४५
यो धर्मिष्ठश्च स प्राणः प्रयतः शिष्टसंमतः । चिन्तयेन्मनसा गंगां स गतिं परमां लभेत् ।।४६
यत्र तत्र मृतो वापि मरणे समुपस्थिते । भक्त्या गंगां स्मरन्याति शैवं वा वैष्णवं पुरम् ।।४७
शंभोर्जटाकलापात्तु विनिष्क्रांतिकर्कशात् । प्लावयित्वा दिवं निन्येऽतिपापान्सगरात्मजान् ।।४८
यावंत्यस्थीनि गंगायां निष्ठंति पुरुषस्य वै । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।४९
गंगातोये तु यस्यास्थि नीत्वा प्रक्षिप्यते नरैः । तत्कालमादितः कृत्वा स्वर्गलोके भवेत्स्थितिः ।।५०
गंगांतोये तु यस्यास्थि प्राप्यते शुभकर्मणः । न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कथंचन ।।५१
दशाहाभ्यन्तरे यस्य गंगातोयेऽस्थिसंगतम् । गंगायां मरणे यादृक्तादृक् फलमवाप्नुयात् ।।५२

स्नात्वा ततः पंचगव्येन सिक्ता हिरण्यमध्वाज्यतिलैर्नियोज्य ।
तदस्थिपिंडं पुटके निधाय पश्यन् दिशं प्रेतगणोपगूढाम् ।।५३।।
नमोऽस्तु धर्माय वदन्प्रविश्य जलं स मे प्रीत इति क्षिपेच्च ।
स्नात्वा ततस्तीर्थवराक्षयं च दृष्ट्वा प्रदद्यादथ दक्षिणाम् तु ।।५४।।
एवं कृत्वा प्रेतपुरे स्थितस्य स्वर्गे गतिः स्यात्तु महेन्द्रतुल्या ।।५५।।

प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम् । तत्र नारायणः स्वामी नान्यः स्वामी कदाचन ।।५६
न तत्र प्रतिगृह्णीयात् प्राणैः कंठगतैरपि । भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां यावदाक्रमते जलम् ।।५७
तावद्गर्भं विजानीयात् तद्दूरं तीरमुच्यते । सार्द्धहस्तशतं यावद्गर्भस्तीरं ततः परम् ।।५८
इति केषां मतं देवि श्रुतिस्मृतिषु संमतम् । तीराद्गव्यूतिमात्रं तु परितः क्षेत्रमुच्यते ।।५९
तीरं त्यक्त्वा वसेत्क्षेत्रे तीरे वासो न चेष्यते । एकयोजनविस्तीर्णा क्षेत्रसीमा तटद्वयात् ।।६०

गंगा के ऊपर अन्तरिक्ष में या उसकी भूमि पर या उसके जल में जो पापी भी मरता है, वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश से बन्दनीय अक्षय्य लोक को प्राप्त करता है। जो धार्मिक पुरुष अपने जीवनकाल में प्रयत्नपूर्वक गंगा का चिन्तन करता है, उसे परमोत्तम गति मिलती है। मरण के समय में भक्तिपूर्वक गंगा का स्मरण करते हुए जहाँ कहीं जो मरता है, उसका शिवपुरी में या विष्णुपुरी में निवास अवश्य होता है। शिव के कर्कश जटासमूह से निकल कर गंगा ने पाप का प्रक्षालन कर सगर के सन्तानों को स्वर्ग में पहुँचा दिया। पुरुष की जितनी हड्डियाँ गंगाजल में पड़ती हैं उतने हजार वर्ष वह स्वर्ग में पूजित होता है। मनुष्य जिसकी हड्डी को जिस समय गंगा जल में छोड़ता है, उसी समय से वह स्वर्गलोक में अपनी स्थिति करता है। जिस पुण्यात्मा की हड्डी गंगा जल में पड़ती है, उसका किसी प्रकार भी ब्रह्मलोक से आगमन नहीं होता। दशाह के अन्दर जिसकी हड्डी गंगा में पहुँच जाती है उसे गंगा में मरने का फल मिलता है ।।४५-५२।।

स्वयं स्नान कर पंचगव्य (गौ का दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर) से हड्डी का स्नान करा कर सुवर्ण, मधु, घी और तिल साथ में रख कर उस हड्डी को किसी पुटक (ढक्कनदार पात्र) में रख वहाँ प्रेतवासिनी दिशाओं को देखते हुए तथा 'नमोऽस्तुधर्माय' यह कहते हुए जल में घुस कर छोड़ देवे, पुनः उस अक्षय और उत्तम तीर्थ में स्नान कर दक्षिणा दान करे। इस प्रकार करने से प्रेतपुरी में रहने वाला प्रेत स्वर्ग में जा इन्द्र के समान सुखी होता है। प्रवाह (धारा) से लेकर चार हाथ तक नारायण स्वामी का अधिकार रहता है किसी दूसरे का नहीं। यदि प्राण निकलते हुए कंठ तक आ गया तब भी वहाँ दान न लेना चाहिए। भाद्र शुक्ल चतुर्दशी को जहाँ तक जल आता हो उसे गर्भ कहते हैं, और उससे दूर तीर कहाता है। एक सौ पचास हाथ तक गर्भ की सीमा होती है उसके बाद तीर होता है और तीर से दो कोस चारों ओर क्षेत्र कहा जाता है। देवि ! यह श्रुति और स्मृति से संमत है, ऐसा कई लोग कहते हैं ।।५३-५९।।

तीर छोड़ कर क्षेत्र में रहना चाहिए, दोनों किनारे से चार कोस की चौड़ाई में क्षेत्र की सीमा कही गई है।

गंगासामां न लंघंति पापान्यखिलान्यपि । तां दृष्ट्वा पलायंते यथा सिंहं वनौकसः ।।६१
यत्र गंगा महाभागे रामशंभुतपोवनम् । सिद्धक्षेत्रं तु तज्ज्ञेयं समन्तात्तु त्रियोजनम् ।।६२
तीर्थे न प्रतिगृह्णीयात्पुण्येष्वायतनेषु च । निमित्तेषु च सर्वेषु तन्निवृत्तो भवेन्नरः ।।६३
तीर्थे यः प्रतिगृह्णाति पुण्येष्वायतनेषु च । निष्फलं तस्य तत्तीर्थं यादत्तद्धनमुच्यते ।।६४
गंगाविक्रयणाद्देवि विष्णोर्विक्रयणं भवेत् । जनार्दने तु विक्रीते विक्रीतं भुवनत्रयम् ।।६५
गंगातीरसमुद्भूतां मृदं मूर्ध्ना बिभर्ति यः । बिभर्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशाय केवलम् ।।६६
गंगापुलिनजां धूलिमास्तीर्याथ निजान्पितॄन । प्रीणयन्यो नरःपिंडान्दद्यात्तान् स्वर्णयेदपि ।।६७
इदं तेऽभिहितं भद्रे गंगामाहात्म्यमुत्तमम् । पठन् शृण्वन्नरो ह्येति तद्विष्णो परमं पदम् ।।६८
नित्यं जप्यमिदं भक्त्या प्रयतैः श्रद्धयान्वितैः । वैष्णवीं गतिमिच्छद्भिः शैवीं वा विधिनंदिनि ।।६९

इति श्री वृहन्नारदीयपुराणता गंगोत्पत्तौ चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

सब प्रकार के पाप गंगा के सीमा को नहीं लाँघते, उसे देखकर सिंह को देख जंगली जानवरों की भाँति भाग जाते हैं। हे महाभागे ! जहाँ कहीं गंगा तथा राम और शिव का तपोवन हो इनके चारों ओर बारह कोस तक सिद्ध स्थान जानना चाहिए । तीर्थ में और पवित्र देवालय में दान न ग्रहण करना चाहिए, कोई भी निमित्त हो पर उससे मनुष्य को अलग ही रहना चाहिए । तीर्थ में या देवालय में जो दान लेते हैं तो जब तक वह धन रहता है तब तक उसका उस तीर्थ में निवास करना निष्फल रहता है । देवि ! गंगा के बेचने से विष्णु का बेचना होता है और भगवान् के बेचने पर तीनों लोक का बेचना हो जाता है । जो गंगातीर की मिट्टी अपने शिरोधार्य करते हैं वे अँधेरा नाश करने वाले सूर्य के समान रूप धारण करते हैं । गंगा की मिट्टी को बिछा कर उस पर पितरों के निमित्त जो पिंडदान करता है वह अपने पितरों को स्वर्ग भेजता है । हे भद्रे ! इस उत्तम गंगामाहात्म्य को मैंने तुम्हें सुनाया, इसे सुनकर अथवा पढ़कर मनुष्य विष्णु के परमपद को प्राप्त होते हैं । हे विधिनंदिनि ! विष्णुलोक या शिवलोक के चाहने वालों को श्रद्धा समेत प्रयत्न से इसका पाठ करना चाहिए ।।६०-६९।।

श्री वृहन्नारदीय पुराण से गंगोत्पत्ति के प्रसंग में चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।।१४।।

स्तुति खण्ड

प्रथमोऽध्यायः

गंगा ध्यानम्

श्वेतचम्पकवर्णाभां गंगां पापप्रणाशिनीम् । कृष्णविग्रहसंभूतां कृष्णतुल्यां परां सतीम् ॥१
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् । शरत्पूर्णेन्दुशतकप्रभाजुष्टकलेवराम् ॥२
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् । नारायणप्रियां शान्तां सत्सौभाग्यसमन्विताम् ॥३
बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुताम् । सिन्दूरबिन्दुललितां सार्धं चन्दनबिन्दुभिः ॥४
कस्तूरीपत्रकं गण्डे नानाचित्रसमन्वितम् । पक्वबिम्बसमानैकचार्वोष्ठपुटमुत्तमम् ॥५
मुक्तापंक्तिप्रभाजुष्टदन्तपंक्तिमनोहराम् । सुचारुवक्त्रनयनां सकटाक्षमनोरमाम् ॥६
स्थलपद्मप्रभाजुष्टपादपद्मयुगंधराम् । रत्नाभरणसंयुक्तं कुंकुमावतं सयावकम् ॥७
देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणम् । सुरसिद्धमुनीन्द्रादिदत्ताघ्यैंससयुतं सदा ॥८
तपस्विमौलिनिकरभ्रमरश्रेणिसंयुतम् । मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां स्वर्गभोगदम् ॥९
वरां वरेण्यां वरदां भक्तानुग्रहकातराम् । श्री विष्णाःपददात्रीं च भजे विष्णुपदीं सतीम् ॥१०

इति श्री ब्रह्मवैवर्तपुराणतो गंगाध्यानं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

श्वेत चम्पा के पुष्प के समान वर्णवाली, सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाली, भगवान् कृष्ण (विष्णु) के शरीर से समुत्पन्न, एवं उन्हीं के समान भक्तजनानन्ददायिनी परम सती भगवती गंगा का (ध्यान करता हूँ।) अग्नि के समान परम शुद्ध रक्तवर्ण का वस्त्र धारण किए हुए, रत्नजटित आभूषणों से विभूषित, शरत्पूर्णिमा के सौ चन्द्रमा की कान्तियों से सुशोभित शरीर वाली, मन्द मन्द मुस्कान से प्रसन्न मुखवाली, सर्वदास्थिर रहनेवाली यौवनावस्था से सुशोभित, परम शान्तिमयी, नारायण की प्रियतमा, परम सौभाग्यशालिनी (का ध्यान करता हूं।) मनोहर केशों के भार को धारण करने वाली, मालती के पुष्पों से सुशोभित, चन्दन बिन्दु के साथ-साथ सुन्दर सिन्दूर की बिंदी से अलंकृत (गंगा का ध्यान करता हूँ।) कपोल स्थल में कस्तूरी के बने हुए पत्र एवं विविध प्रकार के चित्रों से समलंकृत, पके हुए मनोहर बिम्ब के फल के समान निम्न होंठ वाली। (गंगा का ध्यान करता हूँ।) मोतियों की लड़ी के समान कान्तिवाले मनोहर दाँतों की पंक्तियों से मन को हर लेने वाली, सुन्दर मुख एवं कटाक्षमय नेत्रों वाली (गंगा का ध्यान करता हूँ।) उनके दोनों चरण-कमल स्थल-पद्म (गुलाब) की कान्ति के समान मनोहारी हैं; सुन्दर रत्नों के आभरण से अलंकृत हैं; कुमकुम एवं यावक के रसों से सुशोभित हैं। देवराज इन्द्र के शिर पर विराजमान मन्दार के मकरन्द के कणों से उस मनोहर चरण की छवि अरुण वर्ण की हो रही है। सुर, सिद्ध, मुनिगण एवं महर्षियों से दिये गए अर्घ्य-जल से वे पाद सर्वदा सुशोभित होते रहते हैं। तपस्वियों के शिर समूह रूप भ्रमरों की पंक्तियाँ उस चरण कमल की चारों ओर चक्कर लगाती रहती हैं। वह मनोहर चरण मुमुक्षुओं को मुक्ति प्रदान करने वाला है, एवं कामियों को स्वर्ग तथा भोग प्रदान करने वाला है। परम पूजनीय, वरदान प्रदान करने वाली, भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए सर्वथा तत्पर रहने वाली श्री विष्णु के चरणों में शरण देने वाली विष्णु-पाद-सम्भूत उस परम सती गंगा की मैं भक्ति करता हूँ ॥१-१०॥

श्री ब्रह्मवैवर्त पुराण से गंगाध्यान नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

गंगासहस्रनाम

पार्वत्युवाच

देव देव महादेव भक्तानां प्रीतिवर्धन । कानि नामानि प्रोक्तानि तेन राज्ञा महात्मना ॥१
सहस्रनाम गंगायाः स्तोत्रं परमदुर्लभम् । वद मे देवशार्दूल भक्तास्मि सततं प्रिया ॥२

ईश्वरउवाच

साधु साधु महादेवि पृष्टं नामामृतं त्वया । गुह्याद्गुह्यतरं स्तोत्रं प्रवक्ष्यामि समासतः ॥३
यस्य स्मरणमात्रेण नरो वै शिवतां व्रजेत् । पठनाल्लिखनाच्चैव पूजनात् किं न जायते ॥४
श्लोकमेकं पठित्वापि गंगायाः शतयोजने । गंगास्नानफलं सद्यः प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥५
सहस्रनामस्तोत्रस्य भगीरथऋषिर्मतः । छन्दोऽनुष्टुप् तथा ख्यातं गंगा वै देवता मता ॥६
सर्वतः पापनाशार्थं सर्वकामार्थसिद्धये । अक्षयस्वर्गकामाय विनियोगः प्रकीर्तितः ॥७
गंगा सरिद्वरा विष्णुपादाम्बुजजनिः परा । शिवशेखरसंवासा ब्रह्मणः कलशस्थिता ॥८
आकाशगामिनी भद्रा चतुरात्मा प्रवाहिनी । ब्रह्मरन्ध्रसमुद्भूता ब्रह्मरन्ध्रनिवासिनी ॥९
ब्रह्मरन्ध्रधरा देवी सर्वकामार्थदायिनी । ब्रह्मांडोद्भेदनपरा परब्रह्मधरा परा ॥१०
द्रवरूपधरा चैव शिवसंगमदायिनी । मुक्तिदा भुक्तिदानङ्गा शत्रुदावानलात्मिका ॥११
अनङ्गाङ्गी त्रिमूर्तिश्च ब्रह्माणी कमला स्थिता । सरस्वती च सावित्री जयसेना जयात्मिका ॥१२
जयभद्रा वैष्णवी च चिच्छक्तिः परमेश्वरी । त्रयी वेदवदान्या च मेदिनी भेदिनी धरा ॥१३
वेदमूर्तिस्त्रिमूर्तिश्च देवमूर्तिर्दयापरा । दामिनी दामिनीवासा कुलिशा कुलिशप्रिया ॥१४
कुलिशाङ्गी कुलाङ्गी च कुलनाथकुटुम्बिनी । कुलीना सुभगा भाग्या भाग्यगम्या यशोमती ॥१५

पार्वती ने कहा—हे महादेव ! भक्तों की प्रीति को बढ़ाने वाले ! उस महात्मा राजा ने गंगा के कौन से सहस्र नाम कहे ? मुझे बताओ । वह स्तोत्र अत्यन्त दुर्लभ है किन्तु हे देवशार्दूल ! मैं तुम्हारी सर्वदा भक्त हूँ तथा तुम मेरे प्रिय हो ॥१-२॥

ईश्वर ने कहा—हे महादेवि ! तुम धन्य हो । तुमने तो गुप्त से गुप्त अमृतस्वरूप नामस्तोत्र को पूछा । मैं संक्षेप में ही कहूँगा । जिस स्तोत्र के स्मरण मात्र से मनुष्य शिवत्व को प्राप्त होता है उसके पढ़ने, लिखने और पूजन से क्या नहीं हो सकता ? गंगा से सौ योजन दूर रहकर मनुष्य इस स्तोत्र का एक श्लोक भी पढ़ कर गंगास्नान के फल को तत्क्षण प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई संदेह नहीं । इस सहस्रनामस्तोत्र के ऋषि भगीरथ कहे गए हैं । इसका छन्द अनुष्टुप है और देवता गंगा , समस्त पापों को नष्ट करने के लिए, सकल कामों की सिद्धि के लिये और अक्षय स्वर्ग-प्राप्ति के लिए इसका विनियोग है ॥ ३-७॥

(अब नामावली कहते हैं) जो गंगा, नदियों में श्रेष्ठ, विष्णु के चरणकमलों से उत्पन्न, शंकर की जटा में निवास करने वाली, ब्रह्मा के कमण्डलु में रहने वाली, आकाश मार्ग से जाने वाली, भद्रा, चार प्रवाहों में विभक्त, ब्रह्मरन्ध्र से उत्पन्न, ब्रह्मरन्ध्र में रहने वाली, ब्रह्माण्ड के उद्भेदन में तत्पर और परब्रह्म को धारण करने वाली है । जो द्रवरूप को धारण किए हुई है और शिवसंगम को देने वाली है। मुक्ति देने वाली, भक्ति देने वाली तथा अनंगा है। जिसे अनंगांगी, त्रिमूर्ति, ब्रह्माणी, कमला, सरस्वती, सावित्री जयसेना तथा जयात्मिका कहते हैं। जो जयभद्रा, वैष्णवी,

कला कलाधरधरा कलाधरशतप्रिया । षोडशी षोडशाराध्या षोढान्याससहायिनी ।।१६
षोढा समासविलया षोढाङ्गी कालरूपिणी । कालिका मुंडमाला च कालानां शतनाशिनी ।।१७
कालाङ्गी कालनिलया काला कालेश्वरी वरा । शैवी माया शिवा रुंडा चंडमुंड विनाशिनी ।।१८
चंडाट्टहासा दुर्गम्या चंडानां प्रीतिवर्द्धिना । चंडेश्वरी महाप्राज्ञा प्रसाधीः सिद्धिदायिनी ।।१६
लक्षलाभस्य जननी शतलाभा सुरेश्वरा । कौमारी शक्तिरुद्दिष्टा क्रौंचदैत्यविनाशिनी ।।२०
तारकासुरहन्त्री च तारकामयगामिनी । तारकस्य पराशक्तिस्तारकाणां पतिप्रिया ।।२१
तारकेशपरा ज्योत्स्ना तारेशशतरूपिणी । नारायणी दयासिन्धुः सिन्धूत्तरनिवासिनी ।।२२
सिन्धुश्रेष्ठतमा भार्या रत्नदा रत्नहारिणी । जलन्धरस्य जननी जलन्धरविरूपिणी ।।२३
काममाता च कामघ्नी रतिरूपा शतप्रिया । भीष्ममाता महाभीष्मा भीष्माणां प्रीतिवर्द्धिनी ।।२४
ज्वाला कराली तुंगेशी तुंगशेखरवासिनी । तुंगेश्वरसहाया च वदर्याश्रमवासिनी ।।२५
श्रीक्षेत्रनिलया चैव द्वारस्था द्वारपालिनी । जाह्नवी जह्नुतनया नागालयनिवासिनी ।।२६
नागानां जननी चैव नागप्रीतिविवर्द्धिनी । नागेश्वरसहाया च कैलासनिलया तथा ।।२७
महाप्रभा वरेण्या च वेदमाता विलासिनी । हरसंगरता चैव हरिपादविनिःसृता ।।२८
अदितिश्च दितिश्चैव कद्रू च विनता तथा । सुरसा चाग्निभार्या च रत्नगर्भा विभावरी ।।२६
शारदी वै चन्द्रकला नलकूबरसेविता । अरिष्टनेमिदुहिता नहुषांगणवासिनी ।।३०
शंतनोर्गृहिणी भव्या वसुमाता कृशोदरी । मत्स्योदरी सुराराध्या सुराणां प्रीतिदायिनी ।।३१
यमुना चन्द्रभागा च शतद्रूः सरयूस्तथा । सरस्वती शुभामोदा नंदनाद्रिनिवासिनी ।।३२
नन्दप्रियाङ्गनिलया देवतीर्थनिवासिनी । रुद्राणी रुद्रसावित्री महाभैरवनादिनी ।।३३

चित्शक्ति, परमेश्वरी, त्रयी, वेदवन्दित, मेदिनी, भेदिनी को धारण करने वाली, वेदमूर्त्ति त्रिमूर्त्ति, देवमूर्त्ति, दयापरा, दामिनी, दामिनी के समान वस्त्र वाली, कुलिशा, कुलिशप्रिया, कुलिशांगी, कुलांगी, कुलीना, भाग्या, भाग्यगम्या, यशोमती तथा कुलनाथ-कुटुम्बिनी है ! जिसे कला, कलाधर को धारण करने वाली, कलाधरशतप्रिया, षोडशी, षोडशाराध्या (सोलह विधियों से पूजित), छः न्यास में सहायिनी षोढासमासनिलया, षोढांगी, कालरूपिणी, कालिका, मुण्डमाला, शतकालों को नष्ट करने वाली, कालांगी, काली, कालेश्वरी, शैवी, माया, शिवा, रुण्डा, चण्डमुण्ड को नष्ट करने वाली, चण्ड अट्टहास करने वाली, दुर्गम्य, चण्डों की प्रीति को बढ़ाने वाली, चण्डेश्वरी, महाप्राज्ञा, आराधना करने पर सिद्धि देने वाली, लक्षलाभ को उत्पन्न करने वाली, शतलाभा, सुरेश्वरी, कौमारी, शक्ति, उद्दिष्टा, क्रौंच-दैत्य-विनाशिनी कहते हैं ।।८-२०।।

जो तारक राक्षस को मारने वाली, तारकामयगामिनी, तारकों की दूसरी शक्ति, पतिप्रिया, तारकेशपरा, ज्योत्स्ना, शतचन्द्रस्वरूपिणी, नारायणी, दयासिन्धु, सिन्धु के उत्तर में रहने वाली, सिन्धु से श्रेष्ठतम, भार्या, रत्न को देने वाली, रत्न का हरण करने वाली, जलन्धर की जननी, जलन्धर को विरूप करने वाली, काम की माता, काम को नष्ट करने वाली, रतिरूपा, शतप्रिया, भीष्म की माता, महाभीष्मा, भीष्मों की प्रीति बढ़ाने वाली, ज्वाला, कराली, तुंगेशी, उच्च शिखर पर रहने वाली, तुंगेश्वरसहाया तथा बदरिकाश्रम में रहने वाली है ।।२१-२५।।

जिसे श्रीक्षेत्र में रहने वाली, द्वारस्था, द्वारपालिनी, जाह्नवी, जह्नुतनया, नागलोक में रहने वाली, नागों की जननी, नागों की प्रीति को बढ़ाने वाली, नागेश्वरसहाया, कैलाश में रहने वाली, महाप्रभा, वरेण्या, वेदमाता, विलासिनी, शंकर के साथ आनन्दित, हरिचरणों से निकली हुई, अदिति, दिति, कद्रू, विनता, सुरसा, अग्निगर्भा, रत्नगर्भा, विभावरी, शारदीयचन्द्रकला, नलकूबर से सेवित, अरिष्टनेमि की कन्या तथा नहुष के आँगन में रहने वाली कहते हैं । जो शांतनु की गृहिणी, भव्या, वसुमाता, कृशोदरी, मत्स्योदरी, देवताओं से आराध्य, देवताओं को प्रीति देने वाली, यमुना, चन्द्रभागा,

भैरवी भाषणवरा भृगुतुङ्गनिवासिनी। केदारशिखरावासा महावलयवासिनी ॥३४
तुङ्गभद्रा सुषेणा च मांधातृजयदायिनी। भूतभव्यपरा शर्वाखर्वगर्वा नृपेश्वरी ॥३५
भविष्यज्ञानदा भूतज्ञानदा वर्तमानदा। शुक्रस्य जननी सौम्या व्यासमाता सुरेश्वरी ॥३६
धारापानधरा धीरा धैर्यदा शुभदायिनी। कंकणा कंकणप्रख्या शुभकंकणदायिनी ॥३७
कंकणैः पातकहरा प्रबला शत्रुनाशिनी। स्मरतां मुक्तिदा भुक्तिरूपा रूपविवर्जिता ॥३८
देवानीका देवसेव्या सेवारूपफलामला। कृत्तिका कार्तिकावासा कार्तिकस्नानदायिनी ॥३९
पुष्करा पुष्करावासा पुष्पप्रचयसुन्दरी। मुनिसेव्या मुनिमेंना मानवाकारधारिणी ॥४०
मैनाकशिखरावासा काशीपुरनिवासिनी। महाप्रयागनिलया तीर्थराजप्रसाधिनी ॥४१
अक्षया क्षयरूपा च संसारक्षयकारिणी। मृगशीर्षधरा मार्गशीर्षस्नानफलप्रदा ॥४२
पुष्यनक्षत्ररूपा च पौषेऽतीवफलप्रदा। माघी मघायुता माघ्या माघस्नाननिवासिनी ॥४३
श्री पंचमी श्रियोरूपा षष्टिचारण्यसंज्ञिता। अचला निश्चला जम्बूर्जम्बूद्वीपसहायिनी ॥४४
भीष्माष्टमी भीष्मगर्भा भीष्मपंचकसेविता। एकादशी द्वादशी च पुण्यापुण्यसहायिनी ॥४५
पुण्यदा पुण्यनिलया पुण्याङ्गी चारुवाहिनी। फाल्गुनी फाल्गुने सेव्या होलिका गन्धरूपिणी ॥४६
हुताशनी मह देवी सन्तुष्टा भस्मधारिणी। वसन्तर्तुसुसेव्या च वसन्तोत्सवदायिनी ॥४७
चैत्री चित्रा पुष्पगणरूपा गणेश्वरी। मकरन्दस्वरूपा च मकरन्दनिवासिनी ॥४८
चैत्रशुक्लप्रतिपदा वर्षारम्भकरा शुभा। माधवी माधवागारा माधवप्रीतिदायिनी ॥४९
विशाखा वेणुपापघ्नी वैशाखी भानुसप्तमी। वैशाखस्नानशुभदा पिंडाकरनिवासिनी ॥५०

शतद्रु, सरयू, सरस्वती, शुभामोदा, नन्दन पर्वत पर रहने वाली, नन्दप्रिया के अंग में रहने वाली, देवतीर्थ में रहने वाली, रुद्राणी, रुद्रसावित्री, महाभैरवनाद करने वाली, भैरवी, भीषण वर को देने वाली, भृगु के उच्च शिखर पर रहने वाली, केदार के शिखरों पर रहने वाली, महावलयवासिनी, तुंगभद्रा, सुषेणा, मान्धाता को जय देने वाली, भूतभव्यपरा, शर्वा, अखर्वगर्वा तथा नृपेश्वरी है ॥२६-३५॥

जिसे भविष्य को बताने वाली, भूत बताने वाली, वर्तमान बताने वाली, शुक्र की जननी, सौम्या, व्यासमाता, सुरेश्वरी धारापानधरा, धीरा, धैर्य देने वाली, शुभ देने वाली, कंकणा, कंकणसदृशा, शुभ कंकण देने वाली, कंकणों से पातकों को नष्ट करने वाली, प्रबल शत्रुओं को नष्ट करने वाली, स्मरण करते ही मुक्ति-भुक्ति देने वाली, रूपरहित, देवताओं की सेना स्वरूप, देवसेव्या, सेवारूपफलामला; कृत्तिका, कार्त्तिकावासा, कार्त्तिक-स्नान को देने वाली पुष्करा, पुष्कारावासा पुष्पप्रचय से सुन्दर, मुनियों से सेव्य, मुनियों से माननीय, तथा मानव शरीर को धारण करने वाली कहते हैं ॥३६-४०॥

जो मैनाक शिखर पर रहने वाली, काशीपुर में रहने वाली, महाप्रयाग में निवास करने वाली, तीर्थराज की सेवा करने वाली, अक्षया, क्षय-रूपा, संसार का क्षय करने वाली, मृगशीर्षधरा, मार्गशीर्ष में स्नान का फल देने वाली, पुष्य नक्षत्र स्वरूप, पौष मास में अत्यन्त फल देने वाली, माघी, मघायुता, माघ्या माघस्नान में रहने वाली, श्री पंचमी की शोभास्वरूप, षष्टिचारण्य नामवाली, अचला, निश्चला जम्बू, जम्बूद्वीप की सहायता करने वाली, भीष्माष्टमी, भीष्मगर्भा, भीष्म पंचक से सेवित, एकादशी, द्वादशी, पुण्य और अपुण्य में सहायता करने वाली, पुण्यदा, पुण्य में रहने वाली, पुण्यांगी, सुन्दर वाहन वाली, फाल्गुनी, फाल्गुन में सेवनीय, होलिका तथा गन्धरूपिणी है ॥४१-४६॥

जिसे हुताशनी, महादेवी, सन्तुष्ट, भस्म को धारण करने वाली, वसन्त ऋतु में सेवनीय, वसन्तोत्सव देने वाली चैत्री, चित्रा, पुष्पगण रूप, गणेश्वरी, मकरन्द स्वरूप, मकरन्द में रहने वाली, वर्षारम्भ करने वाली चैत्र-शुक्ल-प्रतिपदा, माधव की प्रीति देने वाली, माधव स्वरूप, माधवी, विशाखा, वेणु पापघ्नी, वैशाखी सूर्य सप्तमी, पिण्डों के समूह में रहकर शुभ वैशाखस्नान देने वाली कहते हैं ॥४७-५०॥

तथाक्षयतृतीया च सक्तुदानशुभप्रदा। प्रपापुण्यप्रदा चैव नित्यस्नानवशीकृता ॥५१
ज्येष्ठा ज्येष्ठस्य महता दशपापप्रणाशिनी। निर्ज्जला रूपिणी चैव तथानलशया मता ॥५२
आषाढ़ी चारुसर्वाङ्गी तथा हरिशयस्थिता। श्रावणी श्रवणानन्दा सर्वसौख्यप्रदायिनी ॥५३
भद्रा भाद्रपदे सेव्या जन्मा जन्माष्टमी तथा। दूर्वापूजनसन्तुष्टा बीजाङ्कुरनिवासिनी ॥५४
आश्विने सुतरां सेव्या पितृभक्तिप्रदायिनी। नवमी कृष्णपक्षस्य शुक्लपक्षस्य पूर्णिमा ॥५५
नवरात्रसहाया च कालरात्रिर्महाष्टमी। अश्विनी भौमवारस्य शतरूपा ह्ययोनिजा ॥५६
हरसेव्या हराङ्गी च हरमन्दिरगामिनी। प्रमोदा मोदसंकल्पा नानारूपा महोदरी ॥५७
महानन्दप्रदात्री च नानालङ्कारधारिणी। अलङ्कारप्रिया चैव नानातिथिसमाश्रया ॥५८
तिमिङ्गिलधरा स्वच्छा नानाग्रावविदारिणी। गंडशैलवहा चैव कामदेवधराम्बरा ॥५९
सर्वतीर्थमयी सर्वदेवदानवरूपिणी। काशीप्रांतवहा तुच्छप्रवाहा भारनाशिनी ॥६०
भरणी भारणाङ्गी च तथ्यातथ्यप्रिया सती। सतीनां प्रथमं गण्या गण्या सर्वमयी प्रभुः ॥६१
धीर्द्धारणावती सर्वजनस्य हृदि संस्थिता। स्थितिरूपा स्थितिधरा स्थिराङ्गी कमलप्रिया ॥६२
कुशोच्छिन्नतरा चैव दूर्वांकुरविराजिता। तरङ्गिणी शैवलिनी तरङ्गशतसकुला ॥६३
महाकच्छपनिलया कच्छपपृष्ठसंस्थिता। नानाजन्तुधरा प्रोक्ता नानाजन्तुविनाशिनी ॥६४
वर्षाकालतरा सौम्या वातकल्लोलकारिणी। तीरस्थशवसंच्छन्ना धन्यानां शववाहिनी ॥६५
तरङ्गशतशोभाढ्या तरङ्गशतमालिनी। स्वर्नारीकुचकुम्भस्थ कुंकुमारुणसुन्दरी ॥६६
नानापुष्पोपहारा च सुखसंपत्तिदायिनी। मन्दाकिनी सरिच्छ्रेष्ठा सर्वदेवविगाहिनी ॥६७
सर्वलोकमयी तन्द्रा तन्त्रशास्त्रविनोदिनी। तन्त्री तन्त्रस्थिता विद्या महादेवकुटुम्बिनी ॥६८

जो शुभ सक्तुदान का फल देने वाली अक्षय तृतीया, नित्यस्नान से वशीकृत हो पुण्य देने वाली, ज्येष्ठा, ज्येष्ठ के दस पापों को नष्ट करने वाली निर्जला स्वरूप, अग्निस्वरूप, आषाढी, चारुसर्वांगी, हरिशयन करने वाली, श्रवण को आनन्द देने वाली तथा सर्वसौख्य देने वाली श्रावणी भद्रा, भाद्रपद में सेव्य, जन्माष्टमी, दूर्वापूजन से सन्तुष्ट, बीजांकुर में रहने वाली, आश्विन में भली प्रकार सेवनीय, कृष्णपक्ष की नवमी तथा शुक्लपक्ष की पूर्णिमा, नवरात्र में सहायता करने वाली, कालरात्री, महाष्टमी, मंगलवार का अश्विनी नक्षत्र स्वरूप, शतरूपा, योनि से अनुत्पन्न है ॥५१-५६॥

जिसे हरसेव्य, हरांगी, हर-मन्दिर में जाने वाली, प्रमोदा, मोदसंकल्पा, नानारूपा, महोदरी, महान आनन्द देने वाली, अनेक अलंकार दान करने वाली, अलंकारप्रिया, अनेक तिथियों में रहने वाली, तिमि आदि जल-जन्तुओं को धारण करने वाली, अनेक चट्टानों को फोड़ने वाली, बड़े-बड़े पर्वत के टुकड़ों को बहाने वाली, आकाशगामिनी, सर्वतीर्थमयी, सब देव और दानव स्वरूपिणी, काशी में प्रातःकाल बहने वाली, तुच्छप्रवाहा, और भारनाशिनी कहते हैं ॥५७-६०॥

जो भरणी, भारणांगी, तथ्य तथा अतथ्य को प्रिय समझने वाली, सती, सतियों में प्रथम गणनीय, सर्वमयी, प्रभु, बुद्धि को धारण करने वाली, सब लोगों के हृदय में स्थित, स्थिति रूप, स्थितिधरा, स्थिरांगी, कमलप्रिया, कुशों से उच्छिन्न तट वाली, दूर्वांकुरों से विराजित, तरंगिणी, सेवार से युक्त, सैकड़ों तरंगों से व्याकुल, महाकच्छप पर रहने वाली, कच्छप के पृष्ठ पर बैठी हुई अनेक जन्तुओं को धारण करने वाली, अनेक जन्तुओं को नष्ट करने वाली, वर्षा काल में सौम्य, वायु से कल्लोल करने वाली, किनारे के प्रेतों से आवृत तथा अन्य लोगों के प्रेत को ढोने वाली है ॥६१-६५॥

जिसे सैकड़ों तरंगों की शोभा से युक्त, सैकड़ों तरंग मालाओं से शोभित, स्वर्गीय स्त्रियों के स्तन-कुम्भ के कुमकुम से अरुण होने के कारण सुन्दर, अनेक पुष्पोपहारों से युक्त, सुख-सम्पत्ति को देने वाली, मन्दाकिनी, नदियों में श्रेष्ठ, सब देवों ने जिसमें स्नान किया है, सर्वलोकमयी, तन्द्रा, तन्त्र शास्त्र से विनोद करने वाली, तन्त्री, तन्त्र-

सर्वशास्त्रमयी नंदा वासवेश्वरपालिनी । शची पुलोमजा तुंगा कश्यपश्य प्रिया मता ।।६९
सृष्टिः सृष्टिकृदाराध्या प्रलये कालरूपिणी । द्वादशादित्यसदृशी प्रभा त्रैलोक्यदीपिका ।।७०
त्रिलोकनिलया वेद्या वेदरूपाघमर्दिना । मणिप्रचयसम्पूज्या मध्याह्नार्कनिवासिनी ।।७१
प्रभातारुणसर्वाङ्गी सर्वकामप्रदायिनी । प्रातः सन्ध्या तथा प्रोक्ता सन्ध्या मध्याह्निकी मता ।।७२
सायं सन्ध्या तथा रात्रिसन्ध्या तिमिररूपिणी । निशीथतारका प्रख्या विद्युद्रूपा महोत्सवा ।।७३
दुःखानां च विहन्त्री च नाना दुःखनिवारिणी । विनोदिनी सुकल्लोला सागरस्वननिःस्वना ।।७४
गम्भीरावर्तशोभाढ्या गम्भीरगजगामिना । नानापक्षिसमाकीर्णा जलकुक्कुटशोभिता ।।७५
जलजारुणसर्वांगी शंखवत्कैरवांबरा । कुंदश्वेता कुंदभूषा श्वेतांबरविराजिता ।।७६
राजहंसपरीवारा तटस्थद्रुमशोभिता । द्रुमांबरा द्रुमावासा बृहद्द्रुमविदारिणी ।।७७
पद्मलेखा पद्मसेव्या पद्मा पद्मजपूजिता । लक्ष्मी श्यामा वरारोहा वरांगी भुवनेश्वरी ।।७८
तारा श्रीर्दानदा धन्या दानवानां विनाशिनी । छिन्नमस्ता च नक्षत्रा योगिनी योगसेविता ।।७९
योगगम्या योगिधरा योगिप्रीतिविवर्द्धिनी । योगमार्गरता साध्या साधकाभीष्टदायिनी ।।८०
सिद्धिदा सिद्धिसंसेव्या सिद्धिपूज्या सुरेश्वरी । साधिका साधना तुष्टा साधकानां प्रियङ्करी ।।८१
प्रद्युम्नस्यैव जननी प्रद्युम्नशतसुन्दरी । प्रद्युम्नांगा सुप्रद्युम्ना वराभयकरा तथा ।।८२
वरदा वरसेव्या च वराङ्गी वरवर्णिनी । वनेचरगणाधीशा वनेचरजनप्रिया ।।८३
वनेचरान्दृशा हन्त्री वनेचरमनःप्रिया । सुखदा सुखसेव्या च सुभानां शतसंयुता ।।८४
बलभद्रसमाभासा बलभद्रप्रिया तथा । बलाराध्या बला वृष्टिबालानां प्रीतिवर्द्धिनी ।।८५

स्थिता, विद्या, महादेव की कुटुम्बिनी (स्त्री), सर्वशास्त्रमयी, नन्दा वासवेश्वरपालिनी, शची, पुलोमजा, तुंगा, कश्यप की प्रिया, सृष्टि, सृष्टिकर्ता से आराध्य, प्रलय में कालस्वरूप और द्वादश सूर्यों के समान त्रैलोक्य को प्रकाशित करने वाली प्रभा के सहित कहते हैं ।।६६-७०।।

जो त्रैलोक्य में रहने वाली, जानने योग्य, वेद स्वरूप, पापों को नष्ट करने वाली, मणियों के समूह से पूजनीय, मध्याह्न के सूर्य में रहने वाली, प्रभात काल में सर्वांग से अरुण, सर्व काम को देने वाली, प्रातः-संध्या स्वरूप, मध्याह्न-संध्या स्वरूप, सायं संध्या स्वरूप, अभिसंध्या स्वरूप, अंधकार स्वरूपिणी, रात्रि में तारका स्वरूप, विद्युत् स्वरूप, महोत्सव स्वरूप, दुःखों को नष्ट करने वाली, अनेक प्रकार के दुःखों का निवारण करने वाली, विनोदिनी, अत्यन्त कल्लोल करने वाली, समुद्र की आवाज की तरह आवाज करने वाली, गहरे भँवरों की शोभा से युक्त, गजवत् गम्भीरगामिनी अनेक पक्षियों से युक्त तथा जलमुर्गों से सुशोभित है ।।७१-७५।।

जिसे लाल कमल की तरह शरीरवाली, शंख की तरह स्वच्छ वस्त्र वाली, कुन्द के फूल की तरह श्वेत, श्वेतवस्त्र से शोभित, राजहंस के परिवार वाली; तटस्थद्रुमों से शोभित, द्रुमावासा, बड़े-बड़े पेड़ों को नष्ट कर देने वाली, पद्मलेखा, पद्मसेव्या, पद्मा, ब्रह्मा से पूजित, लक्ष्मी, श्यामा, वरारोहा वरांगी, भुवनेश्वरी, तारा, श्री, दान देनेवाली, धन्या, राक्षसों को नष्ट करने वाली, जिनका अस्त कभी नहीं होता ऐसे नक्षत्र-स्वरूप, योगसेविता, योग से प्राप्त होने वाली, योगियों की प्रीति को बढ़ाने वाली, योगमार्ग में रत, साध्या और साधक को अभीष्ट देने वाली कहते हैं ।।७६-८०।।

जो सिद्धि देने वाली, सिद्धियों से सेवित, सिद्धी से पूज्य, सुरेश्वरी, साधिका, साधना, सन्तुष्ट, साधकों का प्रिय करने वाली, प्रद्युम्न की जननी, सौ प्रद्युम्नों के समान सुन्दर, प्रद्युम्न के समान शरीरवाली, हाथों में वर तथा अभय मुद्रा रखने वाली, वर देनेवाली, वरांगी वरसेव्या, अच्छे वर्ण वाली, वनेचरगणों की स्वामिनी, वनेचर लोगों को प्रिय वनेचरों को दृष्टि से मारने वाली, वनेचरों को मन से प्रिय, सुख देने वाली, सुखसेव्या, सैंकड़ों शुभों से युक्त, बलभद्र के समान भासित होने वाली, बलभद्र की प्रिया, बलदेव की आराध्य देवता, बला और वृष्णि वंश की कन्याओं की प्रीति बढ़ाने वाली है ।।८१-८५।।

रामा रामप्रिया साध्वी सीतारामसुसेविता। रमणीया सुरम्याङ्गी तथा श्रीरमणप्रिया ॥८६
रेवती रैवते गम्या तथा रैवतवासिनी। रतिरूपधरा सुभ्रूर्नारदी नारदेरिता ॥८७
मृदंगशतसंवाद्या मृदङ्गशतपूजिता। पणवा पणवाकारा पणवेरितशब्दिका ॥८८
नानावादित्रकुशला वादित्रशतशोभिता। रससारा रसाकारा शतसारसशोभिता ॥८९
सन्धिः सन्धिस्वरूपा च सन्धिनिर्णयदीपिका। सन्धिस्वरूपदुर्गम्या स्वरसन्धिस्थिता प्रिया ॥९०
शब्दा शब्दस्वरूपा च शब्दशास्त्रप्रमोदिनी। युष्मदस्मत्स्वरूपा च कारका कारकप्रिया ॥९१
शब्दसन्धिस्वरूपा च तद्धितप्रत्यया परा। धातुवादरता चैव धातूनां सन्धिरूपिणी ॥९२
नैय्यायिकी तर्कविद्या तर्काराध्या सुतार्किका। चतुः प्रमाणगम्या च द्रव्यरूपा गुणेश्वरी ॥९३
कर्मज्ञा कर्मनिलया सामान्या समपूजिता। समवायस्थिता भावरूपा सर्वप्रियङ्करी ॥९४
पंचविंशतितत्त्वज्ञा मीमांसकरता तथा। मीमांसाशास्त्रनिरता तथा मीमांसकप्रिया ॥९५
मीमांसागम्यरूपा च कर्मब्रह्मप्रचोदिता। सांख्या सांख्यपरा संख्या सांख्यसूत्रप्रमोदिनी ॥९६
प्रकृतिः पुरुषाकारा भिन्नाभिन्नस्वरूपिणी। स्पर्शिनी स्पर्शरूपा च स्पर्श्या चुंबकलोहवत् ॥९७
पातंजलिधरागम्या पतंजलिमुनिप्रिया। वेदान्तिनी वेदगम्या वेदान्तप्रतिपादिनी ॥९८
वेदान्तनिलया वेद्या वेदान्तिकजनप्रिया। अद्वैतरूपिणी चैव अद्वैतप्रविवादिनी ॥९९
अगम्याकाशरूपा च सर्वदेहस्वरूपिणी। वृथा सर्वप्रपंचा च संसारशतसंकुला ॥१००
संसृतिर्मर्मनिरता धर्मनिष्ठा पुरावरा। धर्मिष्ठा धर्मनिरता धर्मशास्त्रप्रबोधिनी ॥१०१
यज्ञीया यज्ञविद्या च यज्ञगम्या जनाधिपा। अश्वमेधादियज्ञानां जननी जानकिप्रिया ॥१०२
यज्ञभूमिर्यज्ञदेवी यज्ञानां नाशकारिणी। यज्ञवाटस्थिता यज्ञा हविर्दात्री प्रभंजिनी ॥१०३

जिसे रामा, रामप्रिया, साध्वी, सीता के स्मरण से सुसेवित, रमणीय, सुरम्यांगी, श्रीरमणप्रिया, रेवती, रैवत पर्वत पर प्राप्य, रैवत पर्वत पर रहने वाली, रति रूप को धारण की हुई, सुभ्रू, नारदी, नारद से प्रेरित, सैकड़ों मृदंगों से संवाद्य, सैकड़ों मृदंगों से पूजित, पणवा, ढोल के समान आकार वाली, ढोल से प्रेरित है शब्द जिसका, अनेक वाद्यों में कुशल, सैकड़ों वाद्यों से शोभित, रससारा, रसाकारा, सैकड़ों सारस पक्षियों से शोभित, सन्धि, सन्धिस्वरूपा, सन्धिनिर्णय की दीपिका, संधि स्वरूप के कारण दुर्गम, स्वर सन्धि में स्थित तथा प्रिय कहते हैं ॥८६-९०॥

जो शब्दा, शब्दस्वरूपा, व्याकरण में प्रमोद करने वाली, युष्मद् असमत्स्वरूपा, कारक स्वरूप, कारकप्रिय, शब्दसन्धि स्वरूप, तद्धित प्रत्यय स्वरूप, धातुवाद में रत, धातुओं की संधिस्वरूप, नैय्यायिकी, तर्कविद्या, तर्क से आराध्य, सुतार्किक, चार प्रमाणों से गम्य, द्रव्यरूप गुणेश्वरी, कर्मज्ञा, कर्म में वास करने वाली, सामान्य, समपूजित, समवाय में स्थित, भावरूप, सबका प्रिय करने वाली, पंचविंशति तत्त्वों को जानने वाली, मीमांसकों पर प्रेम रखने वाली, मीमांसाशास्त्र में रत तथा मीमांसाकों को प्रिय है ॥९१-९५॥

जिसे मीमांसागम्यरूपा, कर्मब्रह्म से प्रेरित, सांख्या, सांख्यपरा, संख्या, सांख्य सूत्रों से प्रसन्न होने वाली, प्रकृति, पुरुषाकारा, भिन्न तथा अभिन्न स्वरूप वाली, स्पर्शिनी, स्पर्श रूप, चुम्बक लोह की तरह स्पर्श्य, पतंजलि को धारण करने वाली, पतंजलि मुनि को प्रिय, वेदान्तिनी, वेदगम्या, वेदान्त का प्रतिपादन करने वाली, वेदान्त निलया, वेद्या, वेदान्ति जनों की प्रिय, अद्वैतरूपिणी, अद्वैत की प्रेरणा करने वाली, अगम्या, आकाश रूप को धारण की हुई, सबके शरीर में वर्तमान, सर्व प्रपंच को वृथा बताने वाली तथा सैकड़ों संसारों से युक्त कहते हैं ।।९६-१००॥

जो संसृति, मर्म में निरत, धर्मनिष्ठ, पुरा, अवरा धर्मिष्ठ, धर्मनिरत, धर्मशास्त्र का बोध कराने वाली, यज्ञीय, यज्ञ विद्या, यज्ञगम्य, जनाधिप, अश्वमेधादि यज्ञों की जननी, जानकी की प्रिय, यज्ञभूमि, यज्ञदेवी, यज्ञों का

वाय्वाहारा वायुसेव्या शीतवातमनोहरी । ललना सरला पूर्वा दक्षिणा वारुणी तथा ॥१०४
कौवेरी च तथा शैवी आग्नेयी नैर्ऋती तथा । मारुती नन्दिनी चैव नन्दनारण्यवासिनी ॥१०५
पातालनिलया सौम्या बोधी बुद्धकुलोद्भवा । राजनीतिर्दंडनीतिस्त्रयीवार्तापरायणा ॥१०६
स्वाहा स्वधा वषट्कारा ओङ्कारसदृशी च या । नारिकेलप्रिया खज्जू प्रिया रोगविनाशिनी ॥१०७
जगदाधाररूपा च रूपेणाप्रतिमा तथा । भद्रकालस्वरूपा च मधुकैटभनाशिनी ॥१०८
योगमाया महामाया निद्रा तंद्रा प्रवासिनी । नित्यानन्दस्वरूपा च सुधामात्रा त्रिधात्मिका ॥१०९
निःप्रपंचा निराधारा खड्गचर्मधरा सरित् । वनौकसारा सवना अलका चामरावती ॥११०
भोगा भोगवती चैव यमसंयमनी कृपा । ईर्ष्यासूया तथा निंदा तितिक्षा क्षान्तिरार्जवम् ॥१११
दुर्गा दुर्गतमा दुर्गवासिनी वासवप्रिया । चन्द्रानना चन्द्रवती तथा त्रिपुरसुन्दरी ॥११२
त्रिपुरा त्रिपुरेशानी त्रिपुरेशी त्रिनेत्रका । त्रिपुरध्वंसिनी चित्रा नित्यक्लिन्ना भगेश्वरी ॥११३
शुभगा शुभगाराध्या भर्गपूजनतत्परा । सुवासिन्यर्चनप्रीता सुवासाः सुमनोहरा ॥११४
सुप्रकाशा निराराध्या शोभना शुंभनाशिनी । रजोगुणविनिर्मुक्ता निर्मुक्ता मुक्तिदायिनी ॥११५
निःप्रकाशा निराधारा साधारा गुणसंयुता । गम्भीर वेदिनी सौरी तपनी तपनप्रिया ॥११६
अम्भोजिनी पुरारातिसेव्या तु सुरभिःस्वरा । नादिनी सुनदा नंदी अम्बिका अम्बिकेश्वरी ॥११७
त्रिमार्गगा त्रिवलिनी त्रिजिह्वा त्रितयात्मिका । त्रिनंदा त्रिप्रिया चैव अनसूया त्रिमालिनी ॥११८
त्रिपादिका त्रितंत्री च तंत्रशास्त्रप्रमोदिनी । मंत्रज्ञा मंत्रनिलया मंत्रसाधनतत्परा ॥११९
मंत्राणी मंत्रसुभगा मंत्राजाप्यजला विभुः । रक्तदन्ती रक्ततुंडा रक्तबीजविनाशिनी ॥१२०

नाश करने वाली, यज्ञ के मार्ग पर स्थित, यज्ञा, हवि को देने वाली, प्रभंजिनी, वायु भक्षण करने वाली, वायुसेव्या, शीतवात से मनोहर, ललना, सरला, पूर्वा, दक्षिणा, वारुणी, कौवेरी, शैली, आग्नेयी, नैर्ऋती, मारुती, नन्दिनी तथा नन्दनारण्य में रहने वाली है ॥१०१-१०५॥

जिसे पातालनिलया, सौम्य, बोधी, बुद्धकुल में उत्पन्न, राजनीति, दण्डनीति, त्रयीवार्तापरायण, स्वाहा, स्वधा, वषट्कारस्वरूप, ओंकारसदृश, नारिकेलप्रिय, खजूंप्रिय, रोगविनाशिनी, जगदाधाररूप, स्वरूप से अप्रतिम, भद्रकाल स्वरूप, मधुकैटभ नामक दैत्य को नष्ट करने वाली, योगमाया, महामाया निद्रा, तन्द्रा, प्रवासिनी, नित्यानन्दस्वरूप, सुधामात्रा, त्रिधाभूत, प्रपंच रहित, निराधार, चर्मखड्ग को धारण करने वाली नदी, वन में रहने वाली, वन में नृत्य करने वाली, अलका तथा अमरावती कहते हैं ॥१०६-११०॥

जो भोगा, भोगवती, कृपा, यम का संयमन करने वाली, ईर्ष्या, असूया, निन्दा, तितिक्षा, शान्ति, आर्जव, दुर्गा, दुर्गतमा, दुर्गवासिनी, वासवप्रिय, चन्द्रानना, चन्द्रवती, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरा, त्रिपुर की स्वामिनी, त्रिपुरेशी, त्रिनेत्रक, त्रिपुर का ध्वंस करने वाली, चित्रा नित्यक्लिन्न, भगेश्वरी, शुभगा, शुभगों से आराध्य, शंकर की पूजा में तत्पर, सुवासिनियों की पूजा से प्रसन्न होने वाली, सुगंध युक्त, सुमनोहर, सुप्रकाशा, देवताओं से आराध्य, शोभना, शम्भु को नष्ट करने वाली, रजो गुण से मुक्त, निर्मुक्त तथा मुक्ति देने वाली हैं ॥१११-११५॥

जिसे निःप्रकाश, निराधार, साधार, गुणसंयुता, गम्भीरवेदिनी, सौरी, तपनी, तपनक्रिया, अम्भोजिनी, पुरारातिसेव्य सुरभिःस्वरा, नादिनी, सुनदा, नन्दी, अम्बिका अम्बिकेश्वरी, त्रिमार्गगा, त्रिवलिनी, त्रिजिह्वा, त्रितयात्मिका, त्रिनन्दा, त्रिप्रिया, अनसूया, त्रिमालिनी, त्रिपादिका, त्रितन्त्री, तन्त्रशास्त्र से आनन्दित होने वाली, मंत्रज्ञ, मन्त्रनिलय, मंत्रसाधन में तत्पर, मंत्राणी, मन्त्रसुभग, मन्त्र से उत्पन्न होने पर भी जल रहित, विभु, लाल दांत वाली, लाल मुंह वाली तथा रक्तबीज को नष्ट करने वाली कहते हैं ॥११६-१२०॥

रक्ताम्बरधरा रक्ता रक्ताक्षी रक्तवर्जिता। रक्ततृप्ता रक्तहरा रक्तस्य वृद्धिदायिनी ॥१२१
हरिताभा हरिद्राभा हरिद्रागन्धपूजिता। हरिद्रारससंपूज्या हरिद्राङ्गी हरित्स्थिता ॥१२२
पीतांबरधरानंता पीतगंधसुवासिनी। कर्बुरांगीकर्बुरा च कर्बुरांभःप्रपूजिता ॥१२३
कनकाभा श्यामरूपा कामरूपधरा। कामरूपस्थिता विद्या कामरूपनिवासिनी ॥१२४
पीठगा पीठसंपूज्या पीठस्था पीठवासिनी। स्वर्णपीठासना पीठा सर्वपीठप्रपूजिता ॥१२५
राजराजेश्वरी माला राजराजधनाधिपा। कुबेरगृहसंपच्च यज्ञगंधर्वसेविता ॥१२६
विद्याधरगणाधीशा विद्याधरप्रपूजिता। यज्ञविद्या देवविद्या दैत्यविद्या विदेहिका ॥१२७
शुक्रमाता शुक्रसेव्या शुक्रहस्तगता तथा। संजीवनामृता विद्या कचगा कचसेविता ॥१२८
देवयानी च शर्मिष्ठा शर्मदा शर्मभाविनी। सुरा सर्पिस्तथा माध्वी मदविह्वललोचना ॥१२९
सर्वभक्ष्या सर्वगम्या सर्वस्वर्गप्रदायिनी। छंदोमाता पिङ्गलाक्षी सूत्रपिंगलदीपिका ॥१३०
वृत्ता वृत्तप्रिया मंदा पापानां शतमर्दिनी। जगती पृथ्वी आर्या अनुष्टुप् त्रिष्टुबुष्णिका ॥१३१
स्रग्धरा स्रग्धरा चैव माल्या माल्यप्रिया सुधीः। निर्ममा निरहङ्कारा निर्मोहा मोहवर्जिता ॥१३२
मोहनाशकरा कार्या सर्वकार्यकरी मता। मोहिनी मोहवलया महावलयसुन्दरी ॥१३३
सुमेरुशिखरावासा सुमेरुगृहपूजिता। सुमेरुमालिनी सुंदा सुमुखी सुमुखप्रिया ॥१३४
वैनायिका विघ्नहरी दुष्टविघ्नकरीश्वरी। मुक्तांबरा मुक्तकेशी मत्तमातंगगामिनी ॥१३५
ज्वालाकरालवदना ज्वरनांगी जलोदरी। जलपूरितसर्वाङ्गी जलेश्वरप्रपूजिता ॥१३६
जलेश्वरजनिर्जाया जालपा जालशोभिता। वृंदा वृंदाधिपा वृंदसेविका वृंदवृक्षिका ॥१३७

जो रक्त वस्त्र धारण करने वाली, रक्तरूपा, रक्तनेत्रा, रक्तवर्जिता, रक्त से तृप्त होने वाली, रक्तहरा, रक्त को बढ़ाने वाली, हरित वर्ण की शोभा से युक्त हरिद्रा के वर्ण के समान चमकने वाली, हरिद्रा के गंध से पूजित, हरिद्रा के रस से पूजित होने योग्य, हरिद्रा की तरह अंग वाली, दिशाओं में वर्तमान, पीताम्बर को धारण की हुई अनन्त, पीतगंध से सुवासित, विविध वर्ण के शरीर वाली, कर्बुरा, चित्र-विचित्र वर्ण वाले जल से पूजित, कनकाभा, श्यामरूपा, कामरूप को धारण की हुई, काम रूप में स्थित, कामरूपनिवासिनी, विद्या, पीठगा, पीठसंपूज्य, पीठस्था, पीठवासिनी, स्वर्णपीठ पर बैठी हुई और सर्व पीठों से पूजित मुख्य पीठ के समान है ॥१२१-१२५॥

जिसे राजराजेश्वरी, माला, राजराजधनाधिपा, कुबेर के गृह की संपत्ति, यक्ष तथा गंधर्वों से सेवित, विद्याधर-गणों की स्वामिनी, विद्याधरों से पूजित, शरीररहित, यक्षविद्या, देवविद्या, दैत्यविद्या, शुक्रमाता, शुक्र से सेवित, शुक्र-हस्तगत, संजीवन करने वाली अमृत विद्या, कचगा, कच से सेवित, देवयानी, शर्मिष्ठा, शर्मदा, शर्मभाविनी, सुरा, सर्पिष (घृत स्वरूप) माध्वी, मद से विह्वल नयन युक्त, सर्वभक्ष्या, सर्वगम्या, सब को स्वर्ग देने वाली, छन्दों की माता, पिंगल (छन्दशास्त्र) स्वरूप नेत्र वाली तथा पिंगल सूत्रों को प्रकाशित करने वाली कहते हैं ॥१२६-१३०॥

जो वृत्ता, वृत्तप्रिया, मन्द, सौ पापों को नष्ट करने वाली, जगती, पृथ्वी, आर्या, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, उष्णिका, स्रग्धरा, (माला को धारण की हुई) स्रग्धरा (छन्दः स्वरूप) माल्या, माल्यप्रिया, निर्मम, निरहंकारा, निर्मोह, मोहवर्जित, मोह का नाश करने वाली, कार्यस्वरूप, सब कार्यों को करने वाली, मोहिनी, मोहवलय युक्त, महान वलय से सुन्दर, सुमेरु के शिखर पर रहने वाली, सुमेरु गृह में पूजित, सुमेरु, मालिनी, सुन्दा, सुमुखी, सुमुखप्रिय, वैनायकी, विघ्नहरी; दुष्टों के लिए विघ्न करने वाली मोतियों के समान स्वच्छवस्त्र युक्त, मुक्तकेशी तथा मत्त हाथी की तरह चलने वाली है ॥१३१-१३५॥

जिसे ज्वाला, कराल मुख वाली, ज्वलनांगी, जलोदरी, जलपूरित सर्वांग वाली, जलेश्वर (वरुण) से पूजित, जलेश्वर से उत्पन्न स्त्री स्वरूप, जालपा, जालशोभित, वृन्द, वृन्दाधिपा, वृन्दा (देव समूह) की सेविका, अनेक वृक्षों से

त्वचा त्वचाविहीना च पल्वला पल्वले स्थिता। मीना मीनसहाया च मीनध्वजविमर्दिनी ॥१३८
वडिशा वडिशाकारा धीवरा धीवरात्मजा। पारिजातप्रसूनाभा पारिजातप्रपूरिता ॥१३९
पारिजाततटापारा कामधेनुर्विहङ्गमा। भेरुंडा गरुडा गौडी गुडनैवेद्यवासिनी ॥१४०
जातमात्रहरा जाता जातगम्या सुजातिका। कालिन्दी कालतनया कला षोडशिका तथा ॥१४१
दशमी विजया नाम राज्ञां वै जगदायिनी। युद्धश्रीर्विजया नाम युद्धाङ्गणनिवासिनी ॥१४२
मांसरक्ताशना चंडा प्रचंडा शिववल्लभा। शिवदा मथुरावन्ती कांची द्वारावती तथा ॥१४३
सरित्पतिप्रिया शुद्धा गंगासागरसंगमा। प्रद्युम्नपूजिता चचुचंद्रिका चंडसुन्दरी ॥१४४
चंपा चंपकपुष्पाग्रा चंपकाभा सुचैलिका। चंचत्तरंगा सर्वाद्या सर्वब्राह्मणपूजिता ॥१४५
ब्राह्मणी ब्राह्मणाकारा ब्राह्मणैःशुभसंवृता। यज्ञोपवीतिनी विप्रा कुमारी बृहदानना ॥१४६
बृहस्पतिप्रपूज्या च गुरुगीर्गुरुतत्परा। गुरुप्रीतिर्गुरोर्विद्या गुरुपूजनतत्परा ॥१४७
गुर्विणी गुरुगम्या च गयासुरविनाशिनी। पंचक्रोशी पंचहीना पंचमी पंचसुन्दरी ॥१४८
पञ्चेषुः पंचनिलया पंचास्या पंचमात्मिका। पंचपाण्डवमाता च कुंती कुन्तधराकरा ॥१४९
तथा कुन्तलशोभाढ्या प्रमथा प्रमथा तथा। स्वतन्त्रकर्त्री कार्यघ्नी द्वितीया कर्मसस्थिता ॥१५०
तृतीया करणे गम्या सम्प्रदाने चतुर्थिका। अपादाने पंचमी च तथा सम्बन्धषष्ठिका ॥१५१
सप्तम्यधिकरणाख्या विभक्तिवरदातुरा। प्रतिबंधस्य जननी औषधि वैद्यजीवनी ॥१५२
हरीतकी च शुंठी च कणा हंसपदी तथा। हुसेनी हुँकृतिहुँवा गौरार्या वृषभात्मिका ॥१५३

युक्त, त्वक् विहीन, पल्वल (छोटा तालाब) पल्वल स्वरूप, पल्वल में स्थित, मीना, मीनसहाया, मीनध्वज को नष्ट करने वाली, वड़िशा, वड़िश के समानस्वरूप वाली, धीवर स्वरूप धीवरात्मजा, पारिजात के फूलों की तरह आभा वाली, पारिजात से पूरित, दोनों तटों पर पारिजात के वृक्षों से शोभित, कामधेनु स्वरूप, आकाश में गमन करने वाली (विहंगमा) भेरुण्डा, गरुडा, गौडी, तथा गुड़ के नैवेद्य से संतुष्ट होने वाली कहते हैं।।१३६-१४०॥

जो उत्पन्न होते ही हरण की गई, जातगम्या, सुजातिका, कालिन्दी, कालतनया, षोडशिका, कला, राजाओं को जय देने वाली, विजया दशमी, युद्धांगण में बहने वाली, विजया नाम की युद्धश्री, मांस-रक्त को खाने वाली शिवप्रिया, प्रचण्डा, शिव को प्राप्त कराने वाली, मथुरा, अवन्ती, काञ्ची तथा द्वारावती स्वरूप, सरित्पति (समुद्र) की प्रिया, गंगासागर से मिली हुई, प्रद्युम्न से पूजित, चञ्चुचन्द्रिका, चंडसुन्दरी, चम्पा, चम्पक पुष्प के अग्र भाग पर रहने वाली,चम्पक की तरह आभा वाली, सुन्दर वस्त्रों से शोभित, चञ्चल तरंगो से युक्त, प्राणिमात्र में प्रथम तथा सब ब्राह्मणों से पूजित है ॥१४१-१४५॥

जिसे ब्राह्मणी, ब्राह्मणाकारा, ब्राह्मणों से घिरी हुई, यज्ञोपवीत को धारण की हुई, विप्र स्वरूप, कुमारी, वृहद् मुख वाली, वृहस्पति से पूज्य, गुरुवाणी स्वरूप, गुरु कार्य में तत्पर, गुरुप्रीति स्वरूप, गुरुविद्या स्वरूप, गुरुपूजन में तत्पर, गुरुपत्नीस्वरूप, गुरुगम्य, गयासुर को नष्ट करने वाली, पंचक्रोशी, पंचहीन, पंचमी, पंचसुन्दरी, पंचेषु, पंचनिलया, पाँच मुख वाली, पंचमात्मिका, पांचों पाण्डवों की माता कुन्ती कुन्त (भाले) को हाथ में ली हुई, कुन्तल (केश) से शोभित प्रमथा, स्वतंत्र करने वाली, कार्य को नष्ट करने वाली, कर्म में स्थित द्वितीया कहते हैं ॥१४६-१५०॥

जो करण (साधन) में प्राप्त होने वाली तृतीया, सम्प्रदान में चतुर्थी, अपादान में पंचमी, सम्बन्ध में षष्ठी, अधिकरण में सप्तमी विभक्ति रूप, वर देने के लिए आतुर, रोग का प्रतिबन्ध करने वालों की माता, वैद्यों का जीवन देने वाली औषधि, हरीतकी (हर्रे), शुण्ठी (सोंठ), हंसपदी, कणा, हुसेनी, हुंकृति, हुंवा, गो, आर्या, वृषभ स्वरूप

गोस्तनी निम्नगा निंबा नारदादिभिर्रचिता। रेणुका रेणुतनया रजोनाशनतत्परा ॥१५४
पापराशिहरा मंत्री तथा नीरजशोभना। जया रिक्ता सुषेणा च केदारपथगामिनी ॥१५५
जलयंत्रामरी कंदा कन्दमूलफलाशिनी। पितृमाता पितृपूज्या पितृणां स्वर्गदायिनी ॥१५६
भगीरथकृपा सिन्धुर्भवानी भवनाशिनी। सागरस्वर्गदा चैव सर्वसंसारगामिनी ॥१५७

ईश्वर उवाच

नाम्नां सहस्रमाख्यानं गंगायः सर्वकामदम्। यस्तु वै पठते नित्यं मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥१५८
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भगीरथशमंद्रुतम्। विद्यार्थी लभते विद्यां वाचस्पतिसमो भवेत् ॥१५९
श्राद्धे शृणोति यो भक्त्या पठते वै समाहितः। दुर्गता अपि पितरो मुक्तिं गच्छन्त्यनामयाः ॥१६०
तथा दशहरायां हि गंगामध्ये स्थितःपुमान्। पठते प्रत्यहं देवि तस्य मुक्तिर्न संशयः ॥१६१

इति श्री स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्डतो भगीरथोपाख्याने गंगावतरणे द्वितीयोऽध्यायः ॥२

गोस्तनी, निम्नगा, निम्बा, नारदादिकों से पूजित, रेणुका, रेणुतनया रजोगुण को नष्ट करने में तत्पर, पापराशि को नष्ट करने वाली मन्त्रयुक्त कमलों से शोभित जया, रिक्ता, सुषेणा, तथा केदार युक्त (कीचड़) मार्ग से चलने वाली हैं ॥१५१-१५५॥

जिसे जलयन्त्र की देवता, कन्दा, कन्दमूल तथा फल खाने वाली पितृमाता, पितृपूज्य, पितरों को स्वर्ग देने वाली, भगीरथ की कृपा स्वरूप, सिन्धु, भवानी, भव (संसार) को नष्ट करने वाली, सगर के पुत्रों को स्वर्ग देने वाली तथा सम्पूर्ण संसार में गमन करने वाली कहते हैं ॥१५६-॥

ईश्वर ने कहा—इच्छित फल को देने वाले गंगा के सहस्र नाम मैंने तुम्हें बताये। इसका जो नित्य पाठ करता है वह अवश्य ही मुक्त हो जाता है। पुत्र की इच्छा करने वाले को शीघ्र ही भगीरथ के समान पुत्र प्राप्त होता है। विद्यार्थी विद्या को प्राप्त करता है और बृहस्पति के समान हो जाता है। श्राद्ध के समय जो मनुष्य स्थिर चित्त से इसे पढ़ता अथवा सुनता है, उसके अत्यन्त दुर्गति में प्राप्त हुए भी पितर पापरहित होकर स्वर्ग में चले जाते हैं। इसी प्रकार दशहरे में (ज्येष्ठ शु० प्रतिपदा से १० तक) जो मनुष्य गंगाजल में खड़ा होकर इस सहस्रनाम का पाठ प्रतिदिन करता है उसकी निश्चित ही मुक्ति हो जाती है ॥१५८-१६१॥

श्री स्कन्द पुराणान्तर्गत केदार खण्ड से भगीरथोपाख्यान के गंगावतरण में गंगासहस्रनाम नामक द्वितीय अध्याय समाप्त।२।

तृतीयोऽध्यायः

गंगास्तोत्र

शिवसंगीतसंमुग्धश्रीकृष्णाङ्गे द्रवोद्भवाम् । राधाङ्गद्रवसम्भूतां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥१
या चन्मसृष्टेरादौ च गोलोके रासमंडले । सन्निधाने शंकरस्य तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥२
गोपैर्गोपीभिराकीर्णे शुभे राधामहोत्सवे । कार्तिकीपूर्णिमाजातां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥३
कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः । समावृता या गोलोकं तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥४
षष्टिलक्षैर्योजनैर्या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा । समावृता या बैकुंठं तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥५
विंशलक्षैर्योजनैर्या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा । आवृता ब्रह्मलोकं या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥६
त्रिशंल्लक्षैर्योजनैर्या दैर्घ्ये पंचगुणा ततः । आवृता शिवलोकं या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥७
षड्योजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये दशगुणा ततः । मन्दाकिना येन्द्रलोके तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥८
लक्षयोजनविस्तार्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः । आवृता ध्रुवलोकं या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥९
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये षड्गुणिता ततः । आवृता चन्द्रलोकं या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥१०
योजनैः षष्टिसाहस्रैर्दैर्घ्ये दशगुणा ततः । आवृता सूर्यलाकं या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥११
लक्षयोजनविस्तार्णा दैर्घ्ये षड्गुणिता ततः । आवृता सत्यलोकं या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥१२
दशलक्षै र्योजनैर्या दैर्घ्ये पंचगुणा ततः । आवृता या तपोलोकं तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥१३
सहस्रयोजना याच दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः । आवृता जनलोकं या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥१४

शंकर के संगीत से मोहित श्रीकृष्ण के अंगद्रव से उत्पन्न तथा राधा के अंगद्रव से उत्पन्न गंगा को प्रणाम करता हूँ। जो संसार के प्रारम्भ में गोलोक में रास होते समय शंकर के विद्यमान रहने पर उत्पन्न हुई उस गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ। गोप और गोपियों से युक्त शुभ राधा-महोत्सव के समय कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन उत्पन्न गंगाजी को प्रणाम करता हूँ। गोलोक में जो गंगा कोटि योजन चौड़ी है और लम्बाई में लाख गुना अधिक है, उस गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ। जिस नदी ने वैकुण्ठ को साठ लक्ष योजन चौड़ाई से तथा उसकी चौगुनी लम्बाई से घेर रखा है उस गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१-५॥

जिस गंगा ने बीस लक्ष योजन चौड़ाई से तथा उसकी चौगुनी लम्बाई से ब्रह्मलोक को घेर रखा है उसे मैं प्रणाम करता हूँ। जिसने तीस लक्ष योजन चौड़ाई से तथा उसकी पँचगुनी लम्बाई से शिवलोक को घेर रखा है उस गंगा को प्रणाम करता हूँ। जो मन्दाकिनी नाम से इन्द्रलोक में प्रसिद्ध है और छः योजन चौड़ी और साठ योजन लम्बी है उस गंगा को प्रणाम करता हूँ। जो लक्ष योजन चौड़ी तथा उससे सातगुनी लम्बी होकर ध्रुव लोक को घेरे हुई है उस गंगा को प्रणाम करता हूँ। लक्ष योजन चौड़ी तथा उससे छः गुनी लम्बी होकर चन्द्रलोक को जिसने घेर रखा है उस गंगा को प्रणाम करता हूँ ॥६-१०॥

साठ हजार योजन चौड़ी तथा उससे दस गुनी लम्बी होकर जिसने सूर्यलोक को घेर रखा है उस गंगा को प्रणाम करता हूँ। जो चौड़ाई में एक लाख योजन होकर लम्बाई में उससे छः गुनी होकर सत्यलोक को घेरे हुई है उस गंगा को प्रणाम करता हूँ। जो चौड़ाई में दस लाख योजन है और लम्बाई में उससे पाँच गुनी है इस प्रकार जिसने तपोलोक को घेर रखा है उस गंगा को प्रणाम करता हूँ। जो हजार योजन चौड़ी है और सात हजार

सहस्त्रयोजनाऽयामे दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः। आवृता यात्र कैलासं तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥१५
पाताले या भोगवती विस्तीर्णा दशयोजना। ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥१६
क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततः क्षीणा न कुत्रचित्। क्षितौ चालकनन्दा या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥१७
सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिन्दुसन्निभा। द्वापरे चन्दनाभा च तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥१८
जलप्रभा कलौ याच नान्यत्र पृथिवीतले। स्वर्गे च नित्यं क्षीराभा तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥१९
यस्याः प्रभाव अतुलः पुराणे च श्रुतौ श्रुतः। या पुण्यदा पापहर्त्री तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥२०
यत्तोयकणिकास्पर्शः पापिनां च पितामह। ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जितं दहेत् ॥२१
इत्येवं कथितं ब्रह्मन् गंगापद्यैकविंशतिम्। स्तोत्ररूपं च परमं पापघ्नं पुण्यबीजकम् ॥२२

इति श्री ब्रह्मवैवर्तपुराणतो गंगास्तोत्रं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३

योजन लम्बी है इस प्रकार जनलोक को घेरने वाली गंगा को प्रणाम करता हूँ। सहस्र योजन की चौड़ाई से तथा उसकी सात गुनी लम्बाई से कैलाश को घेरने वाली गंगा को प्रणाम करता हूँ ॥११-१५॥

जो पाताल में भोगवती नाम से प्रसिद्ध है चौड़ाई में दस योजन तथा लम्बाई में सौ योजन है उस गंगा को प्रणाम करता हूँ। एक कोस मात्र चौड़ी पृथ्वी पर अलकनन्दा नाम से विख्यात गंगा को प्रणाम करता हूँ। यह एक कोस से कहीं भी कम नहीं है। सत्य युग में जो दुग्ध वर्ण की थी, त्रेता में चन्द्र के समान थीं, द्वापर में चन्दन की तरह थीं उस गंगा को प्रणाम करता हूँ। कलियुग में इसी के जल की प्रभा पृथ्वी पर है और किसी की नहीं। स्वर्ग में नित्य जो दुग्ध वर्ण की है उस गंगा को प्रणाम करता हूँ ॥१६-२०॥

जिसके जलकण के स्पर्श से हे पितामह! करोड़ों जन्म का ब्रह्महत्यादिक पाप नष्ट हो जाता है। हे ब्रह्मन्! इक्कीस पद्य का यह स्तोत्र मैंने कहा। यह पाप को नष्ट करने वाला तथा पुण्य को देने वाला है ॥२१-२२॥

श्री ब्रह्मवैवर्त पुराण से गंगास्तोत्र नामक तृतीय अध्याय समाप्त ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

श्री गंगादशहरास्तोत्रम्

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्या हस्तसंयुते। गंगातीरे तु पुरुषो नारी वा भक्तिभावतः ॥१
निशायां जागरं कुर्याद्गंगादशविधिर्हरेः। पुष्पैःसुगन्धैर्नैवेद्यैः फलैर्दशदशोन्नतैः ॥२
प्रदीपैर्दशनिर्धूपैर्दशाङ्गैर्गरुडध्वज । पूजयेच्छ्रद्धया धीमान् दशकृत्वो विधानतः ॥३
साज्यांस्तिलान् क्षिपेत्तोये गंगायाः प्रसृतीर्दश। गुडसक्तुमयान् पिण्डान् दद्याच्च दशमंत्रतः ॥४
नमः शिवायै प्रथमं नारायण्यै पदं ततः। दशहरायै पदमिति गंगायै मन्त्र एष वै ॥५
स्वाहांतः प्रणवादिश्च भवेद्विंशाक्षरो मनुः। पूजा दानं जपो होमोऽनेनैव मनुना स्मृतः ॥६
हेम्ना रूप्येणत्वा शक्त्या गंगामूर्तिं विधाय च। वस्त्राच्छादितवक्त्रस्य पूर्णकुम्भस्य चोपरि ॥७
प्रतिष्ठाप्यार्चयेद्देवीं पंचामृतविशोधिताम्। चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च नदीनदनिषेविताम् ॥८
लावण्यामृतनिष्यन्दं संशीलद्गात्रयष्टिकाम्। पूर्णकुंभसितांभोजवरदाभयसत्कराम् ॥९
ततो ध्यायेच्च सौम्यां तु चन्द्रायुतसमप्रभाम्। चामरैर्वीज्यमानां च श्वेतच्छत्रोपशोभिताम् ॥१०
सुधाप्लावितभूपृष्ठां दिव्यगन्धानुलेपनाम्। त्रैलोक्यपूजितपदां देवर्षिभिरष्टुताम् ॥११
ध्यात्वा समर्च्य मन्त्रेण धूपदीपोपहारतः। मां च त्वां च विधिं ब्रघ्नं हिमवन्तं भगीरथम् ॥१२
प्रतिमाग्रे समभ्यच्य चन्दनाक्षतनिर्मितान्। दश प्रस्थतिलान् दद्याद्दशविप्रेभ्य आदरात् ॥१३
फलं च कुडवप्रस्थ आढको द्रोण एव च। धान्यमानेन बोद्धव्याः क्रमशोऽमी चतुर्गुणाः ॥१४

जो पुरुष अथवा स्त्री भक्तिपूर्वक गंगा के किनारे ज्येष्ठ शुक्ल दशमी, हस्त नक्षत्र की रात कों जागरण करे, हे हरे ! उसको गंगा की उस समय दश प्रकार की पूजा करनी चाहिए। सुगन्धित पुष्पों से, दस उत्तम फलों के नैवेद्य से; दीप से, दस प्रकार के धूपों से, दस प्रकार के उबटन से विधिवत् श्रद्धापूर्वक गंगा की पूजा प्रत्येक बुद्धिमान को करनी चाहिए। गंगा के जल में घृत युक्त तिल दस अंजली भर कर छोड़े और गुड़ तथा सत्तू के दस पिण्ड भी मंत्रों का उच्चारण करते हुए गंगाजल में समर्पित करे। मंत्र यह है—'प्रथम शिवा को नमस्कार है, उसके बाद नारायणी के चरण कमलों में प्रणाम हैं, उसके अनन्तर दशहरा के चरण कमलों में प्रणाम है और उसके अनन्तर गंगा को नमस्कार है ॥१-५॥

प्रणव से स्वाहा तक बीस अक्षर रूप मन्त्र हैं। इसी मंत्र से पूजा, दान, तथा होम का विधान किया गया है। यथाशक्ति सुवर्ण अथवा चाँदी से गंगा की मूर्ति बनाकर जल से भरे हुए घड़े पर प्रतिष्ठापित करे। घड़े का टेड़ा भाग कपड़े से आच्छादित कर दे। मूर्ति को पञ्चामृत से शुद्ध कर उसकी पूजा करे। मूर्ति का ध्यान इस प्रकार का होना चाहिए—चार हाथ हों, तीन नेत्र हों, नदी तथा नद के जल से सेवित हो। मूर्ति की सुन्दरता इतनी हो कि प्रतीत हो कि उस मूर्ति की गात्रयष्टि लावण्य सागर में डुबाई गई है। मूर्ति की हाथों में एक पूर्ण कलश तथा एक स्वच्छ कमल हो। एक हाथ वर देने के लिए हो और एक हाथ अभय बताने के लिए हो ॥६-९॥

इसके अनन्तर दश हजार चन्द्र के समान प्रभावाली, सौम्य, चामरों से शोभित, श्वेतच्छत्र युक्त, अमृत से लिपी हुई भूमि पर बैठी हुई, सुगन्धित चन्दन से अनुलिप्त, त्रैलोक्य से पूजित चरण वाली तथा देवर्षियों से स्तुति की गई गंगा का ध्यान करे। ध्यान कर धूप दीपादि उपहारों से मन्त्रपूर्वक पूजा कर मार्ग में मेरी, तुम्हारी, ब्रह्मा की, सूर्य की, हिमालय की तथा भगीरथ की पूजा करे। उसके अनन्तर दश ब्राह्मणों को चन्दन तथा अक्षत से मिले हुए दश प्रस्थ तिल दे। कुडव, प्रस्थ, आढक तथा द्रोण ये धान्य के परिमाण हैं। क्रमशः ये एक दूसरे से चौगुने अधिक होते हैं ॥१०-१४॥

मत्स्यकच्छपमंडूकमकरादिजलेचरान् । हंसकारण्डवबकचक्रटिट्टिभसारसान् ॥१५
यथाशक्ति स्वर्णरूप्यताम्रपृष्ठविनिर्मितान् । अभ्यर्च्य गन्धकुसुमैर्गङ्गायां प्रक्षिपेद्व्रती ॥१६
एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः । उपवासी वक्ष्यमाणैर्दश पापैः प्रमुच्यते ॥१७
अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः । परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ॥१८
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चैव सर्वशः । असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥१६
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ॥२०
एतैर्दशविधैः पापैर्दशजन्मसमुद्भवैः । मुच्यते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं गदाधर ॥२१
उद्धरेन्नरकात् पूर्वान् दश घोराद्दशावरान् । वक्ष्यमाणमिदं स्तोत्रं गंगाग्रे श्रद्धया जपेत् ॥२२
ओं नमः शिवायै गंगायै शिवदायै नमो नमः । नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोस्तु ते ॥२३
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शांकर्यै नमो नमः । सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये ॥२४
सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते । स्थाणुजंगमसंभूतविषहन्त्र्यै नमोऽस्तु ते ॥२५
संसारविषनाशिन्यै जीवनायै नमोऽस्तु ते । तापत्रितयसंहन्त्र्यै प्राणेश्यै ते नमोनमः ॥२६
शान्तिसन्तानकारिण्यै नमस्ते शुद्धमूर्तये । सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापारिमूर्तये ॥२७
भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भद्रदायै नमो नमः । भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोऽस्तु ते ॥२८
मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमोनमः । नमस्त्रैलोक्यभूषायै त्रिपथायै नमोनमः ॥२६
नमस्त्रिशुल्कसंस्थायै क्षामवत्यै नमोनमः । त्रिहुताशनसंस्थायै तेजोवत्यै नमोनमः ॥३०

इसके अनन्तर मत्स्य, कछुए, मेढक, मगर आदि जलचरों को हंस, कारण्डव, वक, टिट्टिभ, सारस आदि स्थलचरों को यथाशक्ति सुवर्ण, रौप्य तथा ताम्र से बना कर चन्दन तथा पुष्पों से पूजा कर गंगा के प्रवाह में प्रवाहित करे। इस प्रकार विधिवत् करने के अनन्तर वह मनुष्य धन के घमंड से रहित होकर यदि उपवास करता है तो आगे कहे हुए दश प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है—बिना दी हुई चीजों को लेना, शास्त्र रहित हिंसा, परस्त्रीगमन इस प्रकार के तीन कायिक पाप, पारुष्य, अनृत, पैशुन्य तथा असम्बद्ध प्रलाप इस प्रकार के चार वाचिक पाप; दूसरे के द्रव्य का ध्यान, दूसरों का अनिष्ट चिंतन, झूठी बातों को सोचना इस प्रकार के तीन मानसिक पाप इसके अन्तर्गत हैं ॥१५-२०॥

इस प्रकार दस जन्म से उत्पन्न दस पापों से मनुष्य मुक्त हो जाता है इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। मैं जो गंगास्तोत्र तुम्हें बताऊंगा उस स्तोत्र का गंगा तट पर पाठ करने से मनुष्य अपने पूर्वजन्म कृत पापों से प्राप्त हुए नरक से दस पूर्ववर्ती पुरुषों का और दस परवर्ती पुरुषों का उद्धार करता है ॥२१-२२॥

ओम् शिवा तथा गंगा को नमस्कार है। कल्याण करने वाली (शिवदा) को नमस्कार है। विष्णु रूपिणी गंगा को नमस्कार है। हे ब्रह्ममूर्ति स्वरूप गंगे ! तुम्हें नमस्कार है। रुद्ररूपिणी को नमस्कार है। हे शांकरि ! तुम्हें बारंबार प्रणाम है; सर्वदेवस्वरूपिणी तथा औषध रूप गंगा को नमस्कार है। सब व्याधियों को हरने वाली औषधियों में श्रेष्ठ गंगे ! तुम्हें नमस्कार है। स्थावर-जंगम मे उत्पन्न विपत्तियों को नष्ट करने वाली तुम्हें नमस्कार है। संसार विष को नष्ट करने वाली तथा जीवन देने वाली गंगे ! तुम्हें नमस्कार है। तीनों प्रकार के तापों को नष्ट करने वाली जीवन की स्वामिनी तुम्हें नमस्कार है ॥२३-२६॥

शान्ति के कल्पवृक्ष को बनाने वाली, शुद्ध मूर्तिस्वरूप सर्वदा शुद्ध करने वाली, पाप की शत्रु स्वरूप तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। भुक्ति तथा मुक्ति को देने वाली, भोगवती, कल्याण करने वाली तथा भोग एवम् उपभोग देने वाली गंगे तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। हे मन्दाकिनी ! स्वर्ग को देने वाली तुम्हें नमस्कार है। हे त्रैलोक्य की स्वामिनी ! त्रिपथगामिनी ! तुम्हें नमस्कार है। तीन प्रकार के शुल्क में रहने वाली, क्षामवती तुम्हें नमस्कार है। हे गंगे ! तुम गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिण इन तीन अग्नियों में निवास करती हो। तुम तेजस्वरूप हो, तुम्हें नमस्कार है ॥२७-३०॥

नन्दायै लिङ्गधारिण्य सुधाधारात्मने नमः। नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमोनमः ॥३१
बृहत्यै ते नमस्तेऽस्तु लोकधात्र्यै नमोऽस्तु ते। नमस्ते विश्वमित्रायै नन्दिन्यै ते नमोनमः ॥३२
पृथिव्यै शिवामृतायै च सुवृषायै नमोनमः। परापरशताढ्यायै तारायै ते नमोनमः ॥३३
पापजालनिकृन्तिन्यै अभिन्नायै नमोऽस्तु ते। शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमोनमः ॥३४
उग्रायै सुखजग्ध्यै संजीविन्यै नमोऽस्तु ते। ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमोनमः ॥३५
प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते। सर्वापत्प्रतिपक्षायै मंगलायै नमोनमः ॥३६
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे। सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥३७
निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमोनमः। परापरपरायै च गङ्गे निर्वाणदायिनी ॥३८
गङ्गे ममाग्रतो भूयाद् गङ्गे में तिष्ठ पृष्ठतः। गङ्गे मे पार्श्वयोरेधि गङ्गे त्वय्यस्तु मे स्थितिः ॥३९
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वा त्वं गाङ्गते शिवे। त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं पुमान् पर एव हि ॥४०
गंगे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे। य इदं पठते स्तोत्रं शृणुयाच्छ्द्धयापि यः ॥४१
दशधा मुच्यते पापैः कायवाक्चित्तसम्भवैः। रोगस्थो रोगतो मुच्येद्विपदश्च विपद्युतः ॥४२
मुच्यते बन्धनाद्बद्धो भातो भीतेः प्रमुच्यते। सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य च त्रिदिवं व्रजेत् ॥४३
दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीपरिवीजितः। गृहेऽपि लिखितं यस्य सदा तिष्ठति धारितम् ॥
नाग्निचौरभयं तस्य न सर्पादिभयं क्वचित् ॥४४
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता। संहरेत्त्रिविधं पापं बुधवारेण संयुता ॥४५
तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गंगाजले स्थितः। यः पठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रो वापि चाक्षमः ॥४६

हे नन्दा, लिंगधारिणी, सुधाधारा स्वरूप गंगे ! तुम्हें नमस्कार है। तुम विश्व में प्रमुख हो, तुम रेवती स्वरूप हो, तुम्हें नमस्कार है। हे वृहती स्वरूप लोक को धारण करने वाली, सम्पूर्ण विश्व की मित्र, नन्दिनी तुम्हें नमस्कार है। पृथिवी, शिवा, अमृता एवम् सुवृषा स्वरूप गंगा को नमस्कार है। सैकड़ों पर तथा अपर रूपों से युक्त तारा नाम वाली गंगा को नमस्कार है। हे पाप के जालपाश को काटने वाली, अभिन्नस्वरूप, शान्ता, वरिष्ठा तथा वर देने वाली गंगे ! तुम्हें नमस्कार है। हे उग्र सुख देने वाली, संजीविनी गंगे तुम ब्रह्म में स्थित हो, ब्रह्म को देने वाली हो, पापों को नष्ट करने वाली हो तुम्हें नमस्कार है ॥३१-३५॥

हे गंगे ! तुम शरण आये हुए लोगों के दुःखों को उस तरह से हटा देती हो जिस तरह बवंडर कूड़े-कचड़े को उड़ा देता है। तुम जगत् की माता हो, हमारे विरुद्ध लोगों के लिए तुम सब प्रकार की आपत्ति स्वरूप हो तथा हमारे लिए मंगल स्वरूप हो, तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। तुम सदा शरण में आये हुए दीन-दुःखियों की रक्षा करने में तत्पर रहती हो, दीन-दुःखियों की ही नहीं बल्कि सब लोगों के दुःखों को हरण करने वाली हो। हे नारायणि देवि ! तुम्हें नमस्कार है। तुम किसी में लिप्त नहीं रहती हो, दुर्ग नामक राक्षस को मारने वाली हो, चतुर हो, पर तथा अपर में तत्पर हो (ऐहिक तथा पारलौकिक) निर्वाण पद को देने वाली हो, तुम्हें नमस्कार है। हे गंगे ! तुम मेरे आगे रहो, हे गंगे ! तुम मेरे पीछे रहो। तुम मेरे दोनों तरफ रहो ! हे गंगे ! तुम्हारे ही जल में मेरी स्थिति हो। तुम्हीं आदि हो, तुम्हीं मध्य हो तथा तुम्हीं अन्त हो। हे पृथ्वी पर गई हुई कल्याण स्वरूप गंगे ! तुम्हीं मूल प्रकृति हो तथा तुम्हीं परब्रह्म स्वरूप पुरुष हो। हे गंगे ! तुम परमात्मा हो, तुम शंकर हो, तुम कल्याण करने वाली हो, तुम्हें बारंबार नमस्कार है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्र को सुनता है अथवा पढ़ता है वह कायिक, वाचिक तथा मानसिक इन तीनों प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है, रोगी रोग से मुक्त होता है और विपत्तियों से ग्रस्त मनुष्य उससे मुक्त होता है। बन्धन में बँधा हुआ मनुष्य बन्धन से मुक्त होता है और डरा हुआ भीति

सोऽपि तत्फलमाप्नोति गंगां सम्पूज्य यत्नतः। पूर्वोक्तेन विधानेन यत्फलं सम्प्रकीर्तितम् ॥४७
यथा गौरी तथा गंगा तस्माद् गौर्यास्तु पूजने। यो विधिर्विहितः सम्यक्सोऽपि गंगाप्रपूजने ॥४८
यथाऽहं तथा विष्णुर्यथात्वन्तु तथा ह्युमा। उमा यथा तथा गंगा रूपं तत्र हि भिद्यते ॥४६
विष्णुरुद्रान्तरं चैव श्रीगौर्योरन्तरन्तथा। गंगागौर्यन्तरं चैव यो ब्रूते मूढधीस्तु सः ॥५०

इति श्री स्कन्दपुराणान्तर्गतकाशीखण्डतो गंगादशहरास्तोत्रं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४

से मुक्त होता है। अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं को परिपूर्ण कर दिव्य विमान पर आरूढ़ होकर स्वर्ग को जाता है। उसके स्वर्ग जाते समय दिव्य स्त्रियां पंखा डुलाती हैं। जिसके घर में यह स्तोत्र केवल लिखा हुआ ही रखा रहता है उसे न तो चोर का डर रहता है न आग का और न सर्पादिकों का डर रहता है। ज्येष्ट मास के शुक्ल पक्ष की दशमी जिस दिन हस्त नक्षत्र तथा बुधवार हो तीनों प्रकार के पापों को नष्ट कर देती है। उस दशमी के दिन कोई दरिद्र तथा असमर्थ मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ गंगा जल में खड़ा रहकर दस बार करता है वह उस फल को प्राप्त कर लेता है जो फल गंगा की अनेक प्रकार से पूर्वोक्त विधान से पूजा करने पर नहीं प्राप्त हो सकता। जिस प्रकार से गौरी (पार्वती) है उसी प्रकार से गंगा भी है। जो विधि गौरी पूजन में बताई गई है वही गंगा के पूजन में भी समझनी चाहिए। जिस प्रकार मैं हूँ उस प्रकार विष्णु हैं, जिस प्रकार तुम हो उसी प्रकार उमा हैं और जिस प्रकार उमा हैं उसी प्रकार गंगा हैं। इसलिए रूप में कोई भेद नहीं किया जा सकता। जो मनुष्य विष्णु तथा शंकर में अन्तर बताता है, लक्ष्मी तथा पार्वती में अन्तर बताता है, गंगा तथा गौरी में अन्तर बताता है उसे महान् मूर्ख कहना चाहिए ॥३६-५०॥

श्री स्कन्दपुराणान्तर्गत काशीखण्ड से गंगादशहरास्तोत्र नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

गंगास्तोत्रम्

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे ।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पदकमले ॥१
भागीरथि सुखदायिनि मातस्तव जलमहिमा निगमे ख्यातः ।
नाहं जाने तव महिमानं पाहि कृपामयि मामज्ञानम् ॥२
हरिपदपद्मतरङ्गिणि गङ्गे हिमविधुमुक्ताधवलतरङ्गे ।
दूरी कुरु मम दुष्कृतिभारं कुरु कृपामयि भवसागरपारम् ॥३
तवजलममलं येन निपीतं परमपदं खलु तेन गृहीतम् ।
मातर्गंगे त्वयि यो भक्तः किल तं द्रष्टुं न यमः शक्तः ॥४
पतितोद्धारिणि जाह्नवि गङ्गे खण्डितगिरिवरमण्डितभङ्गे ।
भीष्मजननि हे मुनिवरकन्ये पतितनिवारिणि त्रिभुवनधन्ये ॥५
कल्पलतामिव फलदां लोके प्रणमति यस्त्वां पतति न शोके ।
पारावारविहारिणि गङ्गे विमुखयुवतिकृततरलापाङ्गे ॥६

हे देवि गंगे ! तुम देव गणों की भी ईश्वरी हो ! हे भगवति ! तुम्हीं त्रिभुवन की रक्षा करती हो ! तुम्हीं तरलतरंगमयी हो और शंकर के मस्तक पर विहार करती हो । तुममें किसी प्रकार का मल (पापस्पर्श) नहीं है । अतः हे मातः ! तुम्हारे चरणकमलों में मेरी भक्ति हो ॥१॥

हे भागीरथि ! तुम्हीं सम्पूर्ण प्राणियों को सुख प्रदान करती हो । हे मातः ! तुम्हारा माहात्म्य वेद में वर्णित है । किन्तु मैं तुम्हारी महिमा कुछ भी नहीं जानता । तुम्हीं कृपामयी हो । अतः कृपा करके मुझ अज्ञानी की रक्षा करो ॥२॥

हे गंगे ! तुम्हीं श्री हरिचरणों में तरंग रूप से विराजमान थीं । हे देवि ! तुम्हारी सम्पूर्ण तरंग हिम, चन्द्र और मुक्ता की भाँति धवल वर्ण की है । हे कृपामयी ! तुम्हीं हमारे पापों का भार दूर करके हमको भवसागर के पार उतारो ॥३॥

हे देवि ! जिस व्यक्ति ने तुम्हारा निर्मल जल पान किया है उसी ने परमपद पाया है । हे मातः ! गंगे ! जो मनुष्य तुम्हारी भक्ति करता है उसको यमराज कभी देख भी नहीं सकते अर्थात् तुम्हारे भक्तगण यमपुर में न जाकर वैकुण्ठ में ही गमन करते हैं ॥४॥

हे देवि गंगे ! तुम्हीं पतित जन का उद्धार करती हो, तुम्हीं ने गिरिराज का खण्डन किया है, जिसके ऊपर तुम्हारी भंगी लहरें अति सुशोभित हैं, एवं तुम्हीं भीष्म की जननी और जह्नुमुनि की कन्या हो । त्रिभुवन में तुम्हारे अतिरिक्त पापनिवारिणी और कोई नहीं है, इसीलिये तुम्हें धन्या कहते हैं ॥५॥

हे मातः ! तुम्हीं कल्पलता की भाँति फल प्रदान करती हो, अर्थात् भक्तगण तुम्हारे निकट जो कामना करते हैं, तुम वही प्रदान करती हो, और जो तुम्हारे निकट प्रणत होता है, वह कभी शोक में पतित नहीं होता । हे गंगे ! तुम्हीं समुद्र के साथ विहार करती हो, तुम्हारा अपांग (कटाक्ष) विमुख वनिता की भाँति चञ्चल है ॥६॥

तवचेन्मातः स्रोतःस्नातः पुनरपि जठरे सोऽपि न जातः।
नरकनिवारिणि जाह्नवि गङ्गे कलुषविनाशिनि महिमोत्तुङ्गे ॥७

पुनरसदङ्गे पुण्यतरङ्गे जयजय जाह्नवि करुणापाङ्गे।
इन्द्रमुकुटमणिराजितचरणे सुखदे शुभदे सेवकशरणे ॥८

रोगं शोकं तापं पापं हर मे भगवति कुमतिकलापम्।
त्रिभुवनसारे वसुधाद्दारे त्वमसि गतिर्मम खलु संसारे ॥९

अलकानन्दे परमानन्दे कुरु कृपामयि कातरवन्द्ये।
तव तटनिकटे यस्य निवासः खलु वैकुण्ठे तस्य निवासः ॥१०

वरमिह नीरे कमठो मीनः किंवा तीरे शरटः क्षीणः।
अथ गव्यूतौ श्वपचोदीनस्तव नहि दूरे नृपतिकुलीनः ॥११

भो भुवनेश्वरि पुण्ये धन्ये देवि द्रवमयि मुनिवरकन्ये।
गङ्गास्तवमिदममलं नित्यं पठति नरो यः स जयति सत्यम् ॥१२

हे गंगे ! जिस व्यक्ति ने तुम्हारे जल में स्नान किया है, पुनः वह व्यक्ति माता के गर्भ में नहीं आता है। हे जाह्नवी ! तुम्हीं भक्तगणों को नरक से निवारण करती हुई उनके पाप समूहों का विनाश करती हो, अतः तुम्हारा माहात्म्य अति उत्तुंग (श्रेष्ठ) है ॥७॥

हे देवि ! तुम्हारा सामान्य शरीर नहीं है, इसीलिए तुम्हारी सम्पूर्ण तरंगें अत्यन्त पुण्य प्रदान करती हैं। हे जाह्नवी ! तुम्हारा अपांग देश कृपापूर्ण है, तुम से किसी की भी महिमा का उत्कर्ष (आधिक्य) नहीं है। हे मातः ! तुम्हारे चरण देवराज इन्द्र की मुकुटमणि से प्रदीप्त है, तुम्हीं सबको सुख और शुभ प्रदान करती हो और जो तुम्हारा सेवक होता है, उसको अभय प्रदान करती हो ॥८॥

हे भगवति मेरा रोग, शोक, ताप, पाप और कुमति हरण करो। तुम्हीं त्रिभुवन की सारभूत और पृथिवी के (भूषण) स्वरूप से विद्यमान हो। हे देवि ! इस संसार में एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो अर्थात् मैं केवल तुम्हारे ही आश्रित हूँ ॥९॥

हे देवि ! तुम्हीं अलका (कुबेरपुरी) के समान आनन्द प्रदान करती हो और तुम्हीं परमानन्द स्वरूप हो, एवं सभी लोग कातर भाव से तुम्हारी वन्दना करते हैं, अतः तुम्हीं मेरे लिये कृपा करो। हे मातः ! जो व्यक्ति तुम्हारे तट के समीप में वास करता है, उसकी वैकुण्ठ में स्थिति होती है, अथवा इसी काल में वह व्यक्ति वैकुण्ठ के समान आनन्द का उपभोग करता है ॥१०॥

हे देवि ! तुम्हारे जल में कच्छप अथवा मीन होकर रहूँ, तुम्हारे तट पर क्षीणतर कृकलास (गिरगिट) हो कर वास करूँ, अथवा दो कोस के भीतर अति दीन चाण्डालकुल में जन्म ग्रहण करने की भी कामना करता हूँ, किन्तु तुमसे दूर देश में कुलीन नृपति होने की भी इच्छा कभी नहीं करता ॥११॥

हे देवि ! तुम्हीं त्रिभुवन की ईश्वरी और पुण्य स्वरूपा हो, तुमसे कोई भी प्रधान नहीं, तुम्हीं जलमयी और मुनिवर की कन्या हो। अतः जो मनुष्य प्रतिदिन यह गंगा स्तोत्र पाठ करता है, वह व्यक्ति निश्चय संसार विजय करता है ॥१२॥

येषां हृदये गंगाभक्तिस्तेषां भवति सदा सुखमुक्तिः ।
मधुराकान्तापज्झटिकाभिः परमानन्दकलितललिताभिः ॥१३

गंगास्तोत्रमिदं भवसारं वाञ्छितफलदं विहितामलसारम् ।
शंकरसेवकशंकररचितं पठति विजयीस्तव इति च समाप्तः ॥१४

इति श्रीमच्छङ्कराचार्य्यविरचितं गंगास्तोत्रं नाम पंचमोऽध्यायः ॥५

जिसके चित्त में गंगा के प्रति अचल भक्ति है, वह व्यक्ति सहज में ही मुक्ति लाभ करता है । इस भाँति अति मधुर और कोमल पदावली द्वारा विरचित यह गंगास्तव परमानन्दप्रद और अति सुललित है ॥१३॥

इस असार संसार में उक्त गंगा का स्तव ही सार पदार्थ है, इसलिए यह भक्तगणों को अभिलषित फल प्रदान करता है, इस प्रकार शंकर के सेवक शंकराचार्य कृत यह स्तव सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

श्री शंकराचार्य रचित गंगास्तोत्र नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

गङ्गाष्टकस्तोत्रम्

मातः शैलसुतासपत्नि वसुधाशृंगारहारावलि,
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथीं प्रार्थये।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिमुत्प्रेङ्खत्,
त्वन्नाम स्मरतस्त्वर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः ॥१

त्वत्तीरे तरुकोटरान्तरगतो गंगे विहंगो वरं,
त्वत्तीरे नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथ वा कच्छपः।
नैवान्यत्रमदान्धसिन्धुरघटासंघट्टघंटारण,
त्कारत्रस्तसमस्तवैरिवनितालब्धस्तुतिर्भूपतिः ॥२

काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं वीचिभिरान्दोलितं,
स्रोतोभिश्चलितं तटान्तमिलितं गोमायुभिर्लुण्ठितम्।
दिव्यस्त्रीकरचारुचामरमरुत्संवीज्यमानः कदा,
द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वं वपुः ॥३

अभिनवविसवल्लीपादपद्मस्य विष्णो,
र्मदनमथनमौले र्मालतीपुष्पमाला।
जयति जयपताका काप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः,
क्षपितकलिकलंका जाह्नवी नः पुनातु ॥४

हे मातः! गिरिजासपत्नि! गंगे! तुम पृथिवी के हार (भूषण) स्वरूप में विराजमान रहती हो, तुम्हीं स्वर्गारोहण की सोपान स्वरूप हो और तुम्हीं भगीरथ द्वारा लाई गयी हो, अतः मैं तुम्हारे निकट यही प्रार्थना करता हूँ कि—मैं तुम्हारे तीर में निवास करके तुम्हारा जलपान करता, तुम्हारी तरंगमाला के सन्दर्शन पूर्वक तुम्हारा नाम स्मरण करता एवं तुम्हारा दर्शन करता हुआ अपने शरीर का त्याग करूँ ॥१॥

हे मातः! तुम्हारे तीरवर्ती वृक्ष के कोटर में पक्षी होकर वास करूँ, वह भी श्रेष्ठ है, अथवा हे नरकान्त कारिणि! तुम्हारे जल में मत्स्य (मीन) वा कच्छप होकर रहूँ, यह भी श्रेष्ठ जानता हूँ। किन्तु तुम्हारे दूर देशवासी होकर मदमत्त हस्ति समूह के घण्टानिनादों द्वारा त्रस्त शत्रुओं की वनिताओं से स्तुति को प्राप्त होकर उस नरपतित्व का लाभ भी श्रेष्ठ नहीं जानता ॥२॥

हे भागीरथि! परमेश्वरि! गंगे! मेरे शरीर को काक समूह नोचते हैं, कुत्ते भी ग्रास बना रहे हैं, और तुम्हारी लहरों के बीच टकराता एवं उस प्रवाह द्वारा बहता हुआ किनारे पर आ जाता है तो श्रृगाल (स्यार) भी उसे घसीटते हैं, ऐसे उस अपने शरीर को दिव्यांगनाओं के सुन्दर चामर डुलाने से उत्पन्न वायु द्वारा सुसेवित होता हुआ मैं कब देखूँगा ॥३॥

जो विष्णु के चरणकमलों की विसलता (कमल की जड़) रूप है, शंकर के शिर में मालती-माला की भाँति शोभायमान है, संसार-जय की पताका स्वरूप होकर मुक्ति देने वाली है, और भक्तगणों के पापकलंक को दूर करती रहती हैं, वही जाह्नवी हमें पवित्र करें ॥४॥

यत्तत्तालतमालशालसरलव्यालोलवल्लीलता-
च्छन्नं सूर्यकरप्रतापरहितं शंखेन्दुकुन्दोज्ज्वलम् ।
गन्धर्वामरसिद्धकिन्नरवधूत्तुङ्गस्तनास्फालितं,
स्नानाय प्रतिवासरं भवतु मे गाङ्गं जलं निर्मलम् ॥५

गांगं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम् । त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम् ॥६

पापापहारि दुरितारि तरंगधारि, दूरिप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि ।
झङ्कारकारि हरिपादरजोविहारि, गांगं पुनातु सततं शुभकारि वारि ॥७

वरमिह गंगातीरे शरटः करटः कृशः शुनीतनयः । न पुनर्दूरतरस्थः करिवरकोटीश्वरो नृपतिः ॥८

गंगाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते, वाल्मीकिना विरचितं शुभदं मनुष्यः ।
प्रक्षाल्य सोऽत्र कलिकल्मषपङ्कमाशु, मोक्षं लभेत्पतति नैव पुनर्भवाब्धौ ॥९

इति श्री वाल्मीकिना विरचितं गंगाष्टकस्तोत्रं नाम षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥६

जो ताल, तमाल, शाल और सरल वृक्ष की चंचल एवं गुच्छेदार लताओं से आच्छन्न हैं, सूर्य के प्रताप से रहित एवं शंख, चन्द्रमा तथा कुन्द पुष्प की भाँति समुज्ज्वल हैं और गन्धर्व, देव, सिद्ध तथा किन्नर की सुन्दरियों के उन्नत (उँचे) स्तनों द्वारा आस्फालित हैं, ऐसे गंगा के निर्मल जल में मैं प्रतिदिन स्नान करूँ ॥५॥

भगवान् कृष्ण के चरण-कमल से निकलने के नाते गंगा-जल अत्यन्त मनोहर है, इसीलिए भगवान् शंकर ने उसे मस्तक पर धारण किया है। अतः वह मुझे पवित्र करे ॥६॥

यह (गंगा) जल (संचित) पापों का नाशक और (वर्त्तमान) दुष्कृतों का अपहारी है; जो जल सर्वदा तरंगों को लिए पर्वतराज (हिमालय) की गुफाओं को विदीर्ण कर बहुत दूर तक फैला हुआ है और झंकार (की ध्वनि) करता हुआ भगवान् के चरण-रज में विहार करता है, वह मांगलिक गंगा-जल हमें सदैव पुनीत करे ।.७॥

मैं गंगा-तट पर शरट (गिरगिट), करट (कौवा) अथवा क्षीणकाय कुत्ता भी होकर रहना श्रेष्ठ मानता हूँ किन्तु गंगा से दूर देश में करोड़ों गजराजों के अधीश्वर नृपति भी होना नहीं चाहता ॥८॥

इस प्रकार जो मनुष्य वाल्मीकि मुनि रचित इस शुभमूर्त्ति गंगाष्टक का प्रातःकाल पवित्र भावना से पाठ करता है, वह शीघ्र ही कलिकाल-जनित पाप-पंक के प्रक्षालनपूर्वक मुक्ति लाभ करता है और पुनः संसार-सागर में कभी पतित नहीं होता है ॥९॥

श्री वाल्मीकिरचित गंगाष्टकस्तोत्र नामक छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

परिशिष्ट

प्रथमोऽध्यायः

[नारद उवाच

श्रुतं पृथिव्युपाख्यानमतीवसुमनोहरम् । गङ्गोपाख्यानमधुना वद वेदविदां वर ॥१
भारतं भारतीशापादाजगाम सुरेश्वरी[1] । विष्णुस्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदी सती ॥२
कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा । तत्क्रमं श्रोतुमिच्छामि पापघ्नं पुण्यदं शुभम् ॥३

नारायण उवाच

राजराजेश्वरः श्रीमान्सगरः सूर्यवंशजः । तस्य भार्या च वैदर्भी शैब्या च द्वे मनोहरे ॥४
सत्यस्वरूपः सत्येष्टः सत्यवाक्सत्यभावनः । सत्यधर्मविचारज्ञ परं सत्ययुगोद्भवः ॥५
एकस्यामेकपुत्रश्च बभूव सुमनोहरः । असमञ्ज इति ख्यातः शैब्यायां कुलवर्धनः ॥६

नारद बोले—हे वेदविदों में श्रेष्ठ ! पृथिवी का अत्यन्त सुमनोहर उपाख्यान तो मैंने सुन लिया, अब गंगा[1] का उपाख्यान सुनाने की कृपा करें । सरस्वती के शापवश सुरेश्वरी (गंगा) जो स्वयं विष्णु का पद प्राप्त कर विष्णु-स्वरूपा और पद्मा है, पहले समय में किससे प्रेरित होकर किस युग में किसकी प्रार्थना से अवतरित हुई थीं । उस पापहारी, पुण्यप्रद और शुभ क्रम को मैं सुनना चाहता हूँ ॥१-३॥

नारायण बोले—सूर्य वंश में उत्पन्न, श्रीमान् महाराजाधिराज सगर के वैदर्भी और शैब्या नाम की अत्यन्त मनोहर दो स्त्रियाँ थीं, जो (राजा) सत्य का स्वरूप, सत्यप्रिय, सत्य बोलने वाला, सत्य भावना और सत्य धर्म-विचार का ज्ञाता, श्रेष्ठ तथा सत्य युग में उत्पन्न हुआ था । उस राजा की शैब्या नामक पत्नी में एक कन्या और 'असमंजस' नामक एक अत्यन्त मनोहर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो कुल को बढ़ाने वाला था । उनकी दूसरी पत्नी वैदर्भी

---

१. सरस्वती ने जो गंगा को शाप दिया था, वह प्रसंग संक्षेप में इस प्रकार है :—

एक बार भगवान् विष्णु के समीप उनकी तीनों पत्नियाँ—गंगा, सरस्वती और लक्ष्मी उपस्थित थीं । उनमें गंगा कामासक्त हो मदभरी दृष्टि से विष्णु को देखती हुई मन्द-मन्द मुसकाने लगीं । भगवान् विष्णु भी उनका मुख देखकर आनन्द से हँसने लगे । यह देखकर लक्ष्मी ने तो उस पर ध्यान नहीं दिया; किन्तु सरस्वती से नहीं रहा गया। उन्होंने क्रोध में आकर गंगा से कहा—'अरी निर्लज्जे ! तुझे अपने सौभाग्य का गर्व हो गया है । अभी मैं दूर किए देती हूँ ।' इतना कहकर सरस्वती ने गंगा का केशपाश पकड़ना ही चाहा कि सती लक्ष्मी ने बीच में पड़कर वैसा न होने दिया । अनन्तर सरस्वती ने लक्ष्मी को शाप दे दिया कि तुम वृक्ष और नदी का रूप धारण करोगी; क्योंकि तुमने गंगा का अपराध देखकर भी कुछ नहीं कहा, केवल वृक्ष और नदी की भाँति खड़ी रही । इस पर गंगा ने सरस्वती को लक्ष्य करके कहा कि जिसने रोष भरे शब्दों में लक्ष्मी को शाप दिया है, वह स्वयं भी नदी हो जाय। यह सुनकर सरस्वती ने गंगा को भी शाप दे दिया कि तू भी नदी होकर पृथ्वी पर जायगी और पापियों का पाप ग्रहण करेगी ।

अन्या चाऽऽराधयामास शंकरं पुत्रकामुकी । बभूव गर्भस्तस्याश्च शिवस्य तु वरेण च ॥७
गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिण्डं सुषाव सा । तद्दृष्ट्वा च शिवं ध्यात्वा रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ॥८
शंभुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह । चकार संविभज्यैतत्पिण्डं षष्टिसहस्रधा ॥९
सर्वे बभूव पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाजुष्टकलेवराः ॥१०
कपिलर्षेः कोपदृष्ट्या बभूवुर्भस्मसाच्च ते । राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम मरणं शुचा ॥११
तपश्चकारासमञ्जो गंगानयनकारणात् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१२
दिलीपस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणात् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ययौ लोकान्तरं नृपः ॥१३
अंशुमांस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणात् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं मृतश्च कालयोगतः ॥१४
भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः । वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः ॥१५
तपः कृत्वा लक्षवर्षं गङ्गानयनकारणात् । ददर्श कृष्णं हृष्टास्यं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१६
द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपवेषकम् । परमात्मानमीशं च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१७
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं विभुम् । ब्रह्माविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्युतम् ॥१८
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम् । ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥१९
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् । तुष्टाव दृष्ट्वा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥२०
लीलया च वरं प्राप्य वाञ्छितं वंशतारकम् । तत्राऽऽजगाम गङ्गा सा स्मरणात्परमात्मनः ॥२१
तं प्रणम्य प्रतस्थौ च तत्पुरः संपुटाञ्जलिः । उवाच भगवांस्तत्र तां दृष्ट्वा सुमनोहराम् ॥२२

ने पुत्र की कामना से भगवान् शंकर की आराधना की; जिससे उनके वरदान द्वारा उसे भी गर्भ धारण हुआ। अनन्तर सौ वर्ष व्यतीत होने पर उसने एक मांस-पिण्ड उत्पन्न किया, जिसे देखकर शिव का ध्यान करती हुई उसने बार-बार रुदन किया। ब्राह्मण वेष धारण कर भगवान् शंकर ने उसके समीप जाकर उस मांस-पिण्ड का भेदन किया, जिससे उसमें से साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी पुत्र महाबली, पराक्रमी और ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न मार्तण्ड के के समान तेजस्वी शरीर धारण किए थे। (कुछ दिन के पश्चात्) भगवान् कपिल मुनि की कोप-दृष्टि से वे सभी भस्म हो गये। उसे सुनकर राजा ने बड़ा रुदन किया और शोकाकुल होकर प्राण त्याग कर दिया। उपरान्त असमंजस ने गंगा लाने के लिए तप करना आरम्भ किया। एक लाख वर्ष तक तप करने पर कालयोग से उनकी मृत्यु हो गयी। पश्चात् उनके पुत्र दिलीप ने गंगा लाने के लिए एक लाख वर्ष तक तप किया किन्तु बीच में ही असफल रहकर उन्होंने भी परलोक की यात्रा की। उनके पुत्र अंशुमान ने भी गंगा लाने के लिए एक लाख वर्ष तक तप किया और अन्त में कालयोग से (असफल रहकर) शरीर का त्याग किया। अनन्तर उन महाभाग्यशाली के भगीरथ नामक अत्यन्त बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जो वैष्णव, विष्णु भक्त, गुणवान् और अजर-अमर था। एक लाख वर्ष तक तप करने के उपरान्त उसने भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त किया, जो प्रसन्न मुख, करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण, दो भुजाएँ, हाथ में मुरली, किशोरावस्था और गोप वेष से भूषित थे तथा परमात्मा, ईश्वर, भक्तों पर प्रसन्न होकर शरीर धारण करने वाले, स्वेच्छामय, परब्रह्म, परिपूर्णतम, व्यापक, ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि एवं मुनिगणों से संस्तुत, निर्लिप्त, साक्षी रूप, निर्गुण, प्रकृति से परे एवं मन्द मुसुकान करते हुए प्रसन्न मुख और भक्तों पर अनुग्रह करने वाले थे। अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र धारण किए और रत्नों के आभूषणों से भूषित उन भगवान् कृष्ण को देखकर राजा ने उनकी स्तुति कर बार-बार उन्हें प्रणाम किया। अनन्तर वंश को तारने वाला वरदान उनसे सहज ही में प्राप्त किया और परमात्मा के स्मरण करने पर गंगा भी उसी स्थान में आ गयीं और भगवान् को प्रणाम करके उन्हीं के सामने हाथ जोड़ कर खड़ी हो गयीं। भगवान् ने उन्हें दिव्य एवं अत्यन्त मनोहर स्तुति करते हुए देखकर उनसे कहा, जो पुलकायमान हो रही थीं ॥४-२२॥

कुर्वतीं स्तवनं दिव्यं पुलकाञ्चितविग्रहाम्

श्रीकृष्ण उवाच

भारतं भारतीशापाद्गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि ॥२३
सगरस्य सुतान्सर्वान्पूतान्कुरु ममाज्ञया। त्वत्स्पर्शवायुना पूता यास्यन्ति मम मन्दिरम् ॥२४
बिभ्रतो दिव्यमूर्ति ते दिव्यस्यन्दनगामिनः। मत्पार्षदा भविष्यन्ति सर्वकालं निरामयाः ॥२५
कर्मभोगं समुच्छिद्य कृतं जन्मनि जन्मनि। नानाविधं महत्स्वल्पं पापं स्याद्भारते नृभिः ॥२६
गङ्गायाः स्पर्शवातेन नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम्। स्पर्शनं दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः ॥२७
मौसलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम्। कोटिजन्मार्जितं पापं नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम् ॥२८
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। नानाजन्मार्जितान्येव कामतोऽपि कृतानि च ॥२९
तानि सर्वाणि नश्यन्ति मौसलस्नानतोनृणाम्। पुण्याहस्नानज पुण्यं वेदा नैव विदन्ति च ॥३०
केचिद्विदन्ति ते देवि फलमेव यथागमम्। ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव विदन्ति च ॥३१
सामान्यदिवसस्नानसंकल्पं शृणु सुन्दरि। पुण्यं दशगुणं चैव मौसलस्नानतः परम् ॥३२
ततस्त्रिंशद्गुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने। अमायां चापि तत्तुल्यं द्विगुण दक्षिणायने ॥३३
ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे। चतुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तं पुण्यमेव च ॥३४
अक्षयायां च तत्तुल्यं नैतद्वेदे निरूपितम्। असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम् ॥३५
सामान्यदिवसे स्नानं ध्यानाच्छतगुणं फलम्। मन्वन्तरेषु देवेशि युगादिषु तथैव च ॥३६

श्रीकृष्ण बोले--हे सुरेश्वरि ! भारती (सरस्वती) के शाप वश तुम भारत जाओ और मेरी आज्ञा से वहाँ सगर के पुत्रों को पवित्र करो। वे तुम्हारे स्पर्श वायु से पवित्र होकर मेरे लोक चले जायँगे और वहाँ दिव्य मूर्ति धारण कर दिव्य रथ पर गमन करने वाले तथा सब समय निरामय (रोगहीन) मेरे पार्षद होंगे। उनके प्रत्येक जन्मों का कर्मभोग नष्ट होकर सुकृत रूप में हो जायगा। क्योंकि भारत में मनुष्यों द्वारा बड़े-छोटे अनेक भाँति के पाप होते हैं, वे गंगा के स्पर्श वायु द्वारा नष्ट हो जाते हैं, ऐसा वेद में सुना गया है। देवी (गंगा) के दर्शन से स्पर्श करने में दस गुना पुण्य अधिक होता है। सामान्य दिनों में भी मनुष्यों के मौसल (मुसल की तरह चुभ से डूब जाना) स्नान से उनके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट होते हैं, ऐसा श्रुतियों में सुना गया है। ब्रह्महत्या आदि अनेकों पाप, जो अनेकों जन्मों में अर्जित होते हैं और चाहे वे उसकी कामना वश ही किये गए हों, मनुष्यों के मौसल स्नान से नष्ट हो जाते हैं। और पुण्य दिनों में स्नान करने से उत्पन्न पुण्य का वर्णन वेद भी नहीं कर सकते हैं। कुछ लोग कहते हैं–हे देवि ! तुम्हारा फल भी शास्त्र की भाँति (गम्भीर) है, जिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी लोग नहीं जानते हैं। हे सुन्दरि ! साधारण दिनों के स्नान संकल्प को, मौसल-स्नान से दस गुने अधिक पुण्य प्रदान करता है, बता रहा हूँ, सुनो ! रविवार के दिन संक्रान्ति होने से उससे तीन गुना पुण्य अधिक होता है, अमावस्या के दिन उसके समान ही पुण्य होता है। इसी भाँति दक्षिणायन सूर्य में दुगुना, उत्तरायण सूर्य में उससे दस गुना अधिक और चातुर्मास्य (चौमासे) की पूर्णिमा में अनन्त पुण्य होता है। अक्षय तिथि में उसी के समान पुण्य होता है, यह वेद में नहीं बताया गया है। अतः इन दिनों स्नान करने से असंख्य पुण्य की प्राप्ति होती है। हे देवेशि ! सामान्य दिनों में स्नान करने से ध्यान से सौ गुने अधिक फल प्राप्त होता है, उसी भाँति मन्वन्तरों और युगादिकों में भी कहा गया है। माघ की शुक्ल सप्तमी, भीष्म की अष्टमी, अशोकाष्टमी और रामनवमी के दिन जो पुण्य प्राप्त होता है, उससे दुगुना पुण्य नन्दा (तिथि) में प्राप्त होता है तथा दस पाप हरण करनेवाली दशमी में अत्यन्त महान् पुण्यफल प्राप्त होता है। नन्दा के समान ही वारुणी में पुण्य प्राप्त होता है, महावारुणी में उससे चौगुना और महामहावारुणी में उससे भी चौगुने अधिक पुण्य प्राप्त होता है, जो सामान्य दिनों से करोड़ गुना अधिक है। चन्द्र-सूर्य के ग्रहण में स्नान करने से उससे दस गुने अधिक पुण्य होता है, उसी प्रकार पुण्य दिन के अर्द्धोदय (सूर्य निकलते)

माघस्य सितसप्तम्यां भीष्माष्टम्यां तथैव च । तथाऽशोकाष्टमीतिथ्यां नवम्यां च तथा हरेः ॥३७
ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नन्दायां तव दुर्लभम् । दशपापहरायां तु दशम्यां सुमहत्फलम् ॥३८
नन्दासमं च वारुण्यां महत्पूर्वं चतुर्गुणम् । ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत्पूर्वके सति ॥३९
पुण्यं कोटिगुणं चैव सामान्यस्नानतो भवेत् । चन्द्रसूर्योपरागेषु स्मृतं दशगुणं ततः ॥४०
पुण्येऽप्यर्धोदये काले ततः शतगुणं फलम् । सर्वेषामेव संकल्पो वैष्णवानां विपर्ययः ॥४१
फलसंधानरहिता जीवन्मुक्ताश्च वैष्णवाः । मत्प्रीतिभक्तिकामास्ते सर्वदा सर्वकर्मसु ॥४२
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशेत्परः । जीवन्मुक्तं वैष्णवं तं वेदाः सर्वे वदन्ति च ॥४३
पुरुषाणां शतं पूर्वं पैतृकं च परं शतम् । मातामहस्य च शतं मातरं मातृमातरम् ॥४४
भगिनीं भ्रातरं चैव भागिनेयं च मातुलम् । श्वश्रूं च श्वशुरं चैव गुरुपत्नीं गुरोः सुतम् ॥४५
गुरुं च ज्ञानदातारं मित्रं च सहचारिणम् । भृत्यं शिष्यं तथा चेटीं प्रजाः स्वाश्रमसंनिधौ ॥४६
उद्धरेदात्मना सार्धं मन्त्रग्रहणमात्रतः । मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥४७
तस्य संस्पर्शनात्पूतं तीर्थं च भुवि भारते । तस्यैव पादरजसा सद्यः पूता वसुंधरा ॥४८
पादोदकस्थानमिदं तीर्थमेव भवेद्ध्रुवम् । अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् ॥४९
खादन्ति नो वैष्णवाश्च सदा नैवेद्यभोजिनः । विष्णोर्निवेदितान्नं च नित्यं ये भुञ्जते नराः ॥५०
पूतानि सर्वतीर्थानि तेषां च स्पर्शनादहो । विष्णोः पादोदकं पुण्यं नित्यं ये भुञ्जते नराः ॥५१
तत्पापानि पलायन्ते वैनतेयादिवोरगाः । तेषां दर्शनमात्रेण पूतं च भुवनत्रयम् ॥५२
विष्णोः सुदर्शनं चक्रं सततं तांश्च रक्षति । मद्गुणश्रवणाद्ये च पुलकाङ्कितविग्रहाः ॥५३
गद्गदा साश्रुनेत्राश्च नरास्ते वैष्णवोत्तमाः । पुत्रादपि परः स्नेहो मयि येषां निरन्तरम् ॥५४
गृहाद्याश्च मयि न्यस्तास्ते नरा वैष्णवोत्तमाः ॥५५

समय में स्नान करने से सौ गुने अधिक फल होता है । सभी के संकल्प से वैष्णवों के संकल्प में विपर्यय होता है । वैष्णव लोग सर्वदा सभी कर्मों की फलासक्ति से रहित और जीवन्मुक्त होते हैं । वे मुझमें सदैव प्रीति-भक्ति की कामना रखते हैं । क्योंकि गुरु के मुख से निकल कर भगवान् विष्णु का मन्त्र जिसके कर्ण विवर में प्रविष्ट होता है, उसे सभी वेद जीवन्मुक्त वैष्णव कहते हैं । पूर्व की सौ पीढ़ी, पर की सौ पीढ़ी, मातामह (ननिहाल) की सौ पीढ़ी, माता, नानी, भगिनी, भाई, भानजा, मामा, सास-ससुर, गुरु पत्नी, गुरु पुत्र, ज्ञान देने वाले गुरु, सहचारी मित्र, नौकर, शिष्य, नौकरानी, आश्रम के समीप रहने वाली प्रजा का मन्त्र ग्रहण मात्र से अपने साथ वह उद्धार कर देता है । मन्त्र ग्रहण मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त होता है । भारत-भूतल के तीर्थ उसके स्पर्श से पवित्र होते हैं और उसी के चरण रज से वसुन्धरा (पृथ्वी) पवित्र होती है । उसके पादोदक का स्थान निश्चित तीर्थ होता है । विष्णु को निवेदन न किया गया अन्न विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान है । उसे वैष्णव गण कभी नहीं खाते हैं, क्योंकि वे सदैव नैवेद्य (वैष्णव द्वारा अर्पित) का ही भोजन करते हैं। विष्णु को निवेदन किया गया अन्न जो मनुष्य नित्य भोजन करते हैं, उनके स्पर्श से सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। भगवान् विष्णु के पुण्य पादोदक का नित्य पान करने वाले मनुष्यों के पाप, गरुड़ को देखकर सर्पों की भाँति भाग जाते हैं और उनके दर्शन मात्र से तीनों लोक पवित्र होते हैं । विष्णु का सुदर्शन चक्र उन लोगों की निरन्तर रक्षा करता है । मेरे गुणों के श्रवण-मनन आदि करने में ही उनका शरीर सदैव पुलकायमान रहता है और वे स्वयं गद्गद तथा (विशेष अवसर पर) आँखों में आँसू भरे दिखायी देते हैं, वे मनुष्य उत्तम वैष्णव कहे जाते हैं । जिन लोगों का मुझमें पुत्र से भी बढ़कर निरन्तर स्नेह रहता है और ग्रह आदि सभी कुछ मेरे भरोसे छोड़ कर उससे अलग रहते हैं, वे उत्तम वैष्णव हैं । यहाँ से लेकर ब्रह्मलोक तक यह समस्त चराचर जगत् मेरे द्वारा ही

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं मत्तः सर्वं चराचरम् । सर्वेषामहमेवेश इतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः ॥५६
असंख्यकोटिब्रह्माण्डं ब्रह्मविष्णुशिवादयः । प्रलये मयि लीयन्ते चेतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः ॥५७
तेजःस्वरूपं परमं भक्तानुग्रहविग्रहम् । स्वेच्छामयं निर्गुणं च निरीहं प्रकृते परम् ॥५८
सर्वे प्राकृतिका मत्त आविर्भूतास्तिरोहिताः । इति जानन्ति ये देवि ते नरा वैष्णवोत्तमाः ॥५९
इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः । उवाच तं त्रिपथगा भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥६०

गङ्गोवाच

यामि चेद्भारतं नाथ भारतीशापतः पुरा । तवाऽऽज्ञया च राजेन्द्र तपसा चैव सांप्रतम् ॥६१
यानि कानि च पापानि मह्यं दास्यन्ति पापिनः । तानि मे केन नश्यन्ति तदुपायं वद प्रभो ॥६२
कति कालं परिमितं स्थितिर्मे तत्र भारते । कदा यास्यामि सर्वेश तद्विष्णोः परमं पदम् ॥६३
ममान्यद्वाञ्छितं यद्यत्सर्वं जानासि सर्ववित् । सर्वान्तरात्मन्सर्वज्ञ तदुपायं वद प्रभो ॥६४

श्रीकृष्ण उवाच

जानामि वाञ्छितं गङ्गे तव सर्वं सुरेश्वरि । पतिस्ते रुद्ररूपोऽयं लवणोदो भविष्यति ॥६५
ममैवांशः समुद्रश्च त्वं च लक्ष्मीस्वरूपिणी । विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भुवि ॥६६
यावत्यः सन्ति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते । सौभाग्यं तव तास्वेव लवणोदस्य सौरते ॥६७
अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पञ्चसहस्रकम् । वर्षं स्थितिस्ते भारत्या भुवि शापेन भारते ॥६८
नित्यं वारिधिना सार्धं करिष्यसि रहो रतिम् । त्वमेव रसिका देवा रसिकेन्द्रेण संयुता ॥६९
त्वां तोषयन्ति स्तोत्रेण भगीरथकृतेन च । भारतस्था जनाः सर्वे पूजयिष्यन्ति भक्तितः ॥७०

उत्पन्न होता है और मैं ही सबका अधीश्वर हूँ, ऐसा ज्ञान रखने वाले उत्तम वैष्णव कहे जाते हैं। असंख्य करोड़ ब्रह्माण्ड और ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी प्रलय के समय मुझमें ही लीन होते हैं, ऐसा जानने वाले उत्तम वैष्णव होते हैं। तेजः स्वरूप, श्रेष्ठ, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए शरीर धारण करने वाले, स्वेच्छामय, निर्गुण, निरीह और प्रकृति से परे मैं हूँ। समस्त प्राकृतिक सृष्टि मेरे द्वारा ही आविर्भूत (उत्पन्न) और तिरोहित (नष्ट) होती रहती है। हे देवि ! ऐसा जानने वाले मनुष्य उत्तम वैष्णव कहे जाते हैं। उन दोनों के सामने ऐसा कहकर देवेश (भगवान् श्रीकृष्ण) चुप हो गये। अनन्तर भक्तिपूर्वक शिर झुकाये गंगा ने कहा ॥२३-६०॥

गंगा ने कहा—हे नाथ ! पूर्व काल के सरस्वती-शाप वश मैं आपकी आज्ञा और राजेन्द्र (भगीरथ) के तप के कारण अभी भारत जा रही हूँ किन्तु हे प्रभो ! वहाँ पापी लोग पाप की राशि मुझे देंगे, उसका नाश कैसे होगा, बताने की कृपा करें। हे सर्वेश ! भारत में कितने दिनों तक मेरी स्थिति रहेगी और कब आपके परमोत्तम विष्णुलोक जाऊँगी हे प्रभो ! सर्वज्ञ होने के नाते आप मेरा अन्य सभी अभीष्ट जानते हैं, अतः उसका उपाय बताने की कृपा करें, क्योंकि आप सभी के अन्तरात्मा और सर्वज्ञाता है ॥६१-६४॥

श्रीकृष्ण बोले—हे गंगे, हे सुरेश्वरि ! मैं तुम्हारा सभी मनोरथ जानता हूँ, भीषण रूप धारण करने वाला लवण (खारा) सागर तुम्हारा पति होगा। समुद्र मेरा ही अंश है और लक्ष्मी स्वरूपिणी तुम हो। विद्वान् के साथ विदुषी का समागम भूतल में अति उत्तम माना गया है। भारत में सरस्वती आदि नदियों को तुम्हारे द्वारा सौभाग्य प्राप्त होगा तथा लवणसागर की तुम सबसे अधिक प्रेमभाजन बनोगी। हे देवेशि ! भारत में भारती के शापवश आज से कलियुग के पाँच सहस्र वर्ष तक तुम्हारी स्थिति रहेगी। तुम वहाँ एकान्त स्थान में रसिकेंद्र समुद्र के साथ नित्य क्रीडा करोगी क्योंकि तुम अत्यन्त रसविलासिनी हो। भारत निवासी सभी लोग भक्तिपूर्वक भगीरथ निर्मित स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति और पूजा करेंगे। कौथुमी शाखा की पद्धति के अनुसार जो तुम्हारा नित्य ध्यान, पूजा, स्तुति और

ध्यानेन कौथुमोक्तेन ध्यात्वा त्वां पूजयिष्यति । यः स्तौति प्रणमेन्नित्यं सोऽश्वमेध फलं लभेत् ॥७१
गङ्गा गङ्गेति योब्रूयाद्योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥७२
सहस्रपापिनां स्नानाद्यत्पापं ते भविष्यति । मद्भक्तदर्शने तावत्तदैव हि विनश्यति ॥७३
पापिनां तु सहस्राणां शवस्पर्शेन यत्तव । मन्मन्त्रोपासकस्नानात्तदघं च विनश्यति ॥७४
यत्र यत्र भवेद्गङ्गे मन्नामगुणकीर्तनम् । तत्रैव त्वमधिष्ठानं करिष्यस्यघमोचनात् ॥७५
सार्धं सरिद्भिः श्रेष्ठाभिः सरस्वत्यादिभिः शुभे । तत्त तीर्थं भवेत्सद्यो यत्र मद्गुणकीर्तनम् ॥७६
यद्रेणुस्पर्शमात्रेण पूतो भवति पातकी । रेणुप्रमाणं वर्षं च स वैकुण्ठे वसेद्ध्रुवम् ॥७७
स्नास्यन्ति त्वयि ये भक्त्या मन्नामस्मृतिपूर्वकम् । समुत्सृजन्ति प्राणांश्च ते गच्छन्ति हरेः पदम् ॥७८
पार्षदप्रवरास्ते च भविष्यन्ति हरेश्चिरम् । असंख्यकं प्राकृतिकं लयं द्रक्ष्यन्ति ते नराः ॥७९
मृतस्य बहुपुण्येन तच्छवं त्वयि विन्यसेत् । प्रयाति स च वैकुण्ठं यावदस्थ्नां स्थितिस्त्वयि ॥८०
कायव्यूहं ततः कृत्वा भोजयित्वा स्वकर्मजम् । तस्मै ददानि सारूप्यं तं करोमि च पार्षदम् ॥८१
अज्ञानी त्वज्जलस्पर्शाद्यदि प्राणान्समुत्सृजेत् । तस्मै ददामि सारूप्यं तं करोमि च पार्षदम् ॥८२
अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् । तस्मै ददामि सारूप्यमसंख्यं प्राकृतं लयम् ॥८३
अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणान्मन्नामस्मृतिपूर्वकम् । तस्मै ददामि सालोक्यं यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥८४
तीर्थेऽप्यतीर्थे मरणे विशेषो नास्ति कश्चन । मन्मन्त्रोपासकानां च नित्यं नैवेद्यभोजिनाम् ॥८५
पूतं कर्तुं स शक्तो हि लीलया भुवनत्रयम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणयानेन सह पार्षदैः ॥८६
सद्यः स याति गोलोकं मम तुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥८७
मद्भक्तबान्धवा ये ये ते ते पुण्यधियः शुभे । ते यान्ति रत्नयानेन गोलोकं च सुदुर्लभम् ॥८८
यत्र तत्र मृता ये च ज्ञानाज्ञानेन वा सति । जीवनमुक्ताश्च ते पूता भक्तसंनिधिमात्रतः ॥८९

प्रणाम करेंगे, वे अश्वमेध-फल प्राप्त करेंगे क्योंकि सैकड़ों योजन से जो 'गंगे-गंगे' कहता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक प्राप्त करता है ॥६५-७२॥

सहस्रों पापियों के स्नान करने से जो पाप तुम्हें होगा, वह मेरे भक्तों के दर्शन करने से ही उसी समय नष्ट हो जायगा। उसी प्रकार सहस्रों पापियों के शव (मुर्दा) स्पर्श से जो पाप तुम्हें प्राप्त होगा, वह मेरे मन्त्रों के उपासक भक्तों के स्नान करने से नष्ट हो जायगा । हे गंगे ! जहाँ-जहाँ मेरे नाम व गुणों के कीर्तन होंगे, वहाँ पाप नाश करने के लिए तुम्हारा अधिष्ठान होगा। हे शुभे ! सरस्वती आदि श्रेष्ठ नदियों के साथ (रहकर तुम्हारे तट पर) जहाँ कहीं मेरे गुणों का कीर्तन होगा वह उसी समय तीर्थ स्वरूप हो जायगा । उसके रेणु स्पर्श मात्र करने से पातकी पवित्र होकर वैकुण्ठ में उतने रेणु प्रमाण वर्ष निश्चित निवास करेंगे । भक्ति ज्ञान पूर्वक और मेरे नाम का स्मरण करते हुए जो तुम्हारे जल में अपना प्राण परित्याग करेंगे, वे विष्णु पद प्राप्त करेंगे तथा वे मनुष्य विष्णु के चिरस्थायी पार्षद होंगे और वहाँ रहकर असंख्य प्राकृतिक प्रलय का दर्शन करते रहेंगे। मृतक प्राणी के बहु पुण्य होने पर ही उसका शव तुम्हारे जल में डाला जायगा और जब तक उसकी अस्थि तुम्हारे भीतर रहेगी उतने समय वह वैकुण्ठ में रहेगा । इस प्रकार अपने कर्मों के भोग कराने और कायव्यूह (कायाकल्प) करने के अनन्तर उसे सारूप्य मोक्ष देकर मैं अपना पार्षद बनाता हूँ। अज्ञानी प्राणी यदि तुम्हारे जल का स्पर्श कर के अपने प्राणों का परित्याग करता है, तो मैं उसे सारूप्य मोक्ष देकर अपना पार्षद बनाता हूँ। तुम्हारे नाम का स्मरण करते हुए यदि कहीं अन्यत्र प्राणोत्सर्जन करता है तो मैं उसे सालोक्य मोक्ष देता हूँ, जिसमें रहकर असंख्य प्रलय का दर्शन करता है । मेरे नामों के स्मरण पूर्वक अन्यत्र प्राण परित्याग करने पर उसे ब्रह्मा की आयु तक सालोक्य (मोक्ष) प्रदान

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां च तमुवाच भगीरथम् । स्तुहि गङ्गामिमां भक्त्या पूजां कुरु च सांप्रतम् ॥९०
भगीरथस्तां तुष्टाव पूजयामास भक्तितः । ध्यानेन कौथुमोक्तेन स्तोत्रेण च पुनः पुनः ॥९१
श्रीकृष्णं प्रणनामाथ परमात्मानमीश्वरम् । भगीरथश्च गङ्गां च सोऽन्तर्धानं गतो हरिः ॥९२

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारदनारायणसंवादे गङ्गोपाख्यानं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१

करता हूँ। मेरे मन्त्रों के उपासक गणों के, जो नित्य मेरे नैवेद्य (मेरे लिए अर्पित) का भोजन करते हैं, तीर्थ या तीर्थ से भिन्न स्थानों में प्राण त्याग करने की कोई विशेषता नहीं रहती है। क्योंकि वह लीलामात्र से तीनों लोकों को पवित्र करने में समर्थ रहता है। इसीलिए उत्तम रत्नों के सार भाग से रचित विमान द्वारा वह गोलोक जाता है। हे शुभे ! मेरे भक्तों के जितने पुण्यात्मा बान्धव गण रहते हैं, वे भी रत्न खचित विमानों द्वारा अत्यन्त दुर्लभ गोलोक प्राप्त करते हैं। ज्ञानी, अज्ञानी किसी भी अवस्था में रहकर वे जहाँ-कहीं प्राण परित्याग करते हैं, केवल भक्तों की सन्निधिमात्र से वे पवित्र एवं जीवन्मुक्त होते हैं। गंगा जी से इतना कह कर भगवान् श्री हरि ने भगीरथ से भी कहा कि भक्तिपूर्वक इस गंगा की स्तुति और पूजा करो। पश्चात् भगीरथ ने भक्तिपूर्वक कौथुमी शाखानुसार ध्यान, पूजन और स्तोत्र द्वारा गंगा की बार-बार स्तुति की तथा परमात्मा एवं ईश्वर श्रीकृष्ण और गंगा को प्रणाम किया। उपरान्त भगवान् अन्तर्हित होकर चले गये। ॥७३-९२॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के प्रकृतिखण्ड में नारद और नारायण के संवाद में गंगोपाख्यान नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

नारदउवाच

कलेः पञ्चसहस्राब्दे समतीते सुरेश्वरी। क्व गता सा महाभागा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१

नारायण उवाच

भारतं भारतीशापात्समागत्येश्वरेच्छया। जगाम तं च वैकुण्ठं शापान्ते पुनरेव सा ॥२

भारतं भारती त्यक्त्वा चागमत्तद्धरेः पदम्। पद्मावती च शापान्ते गङ्गायाश्चैव नारद ॥३

गङ्गा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतास्तिस्रः प्रिया हरेः। तुलसीसहिता ब्रह्मंश्चतस्रः कीर्तितः श्रुतौ ॥४

नारद उवाच

हेतुना केन देवी वै विष्णुपादाब्जसंभवाः। धातुः समण्डलुस्था च शंकरस्य शिरोगता ॥५

बभूव सा मुनिश्रेष्ठ गङ्गा नारायणप्रिया। अहो केन प्रकारेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥६

श्रीनारायण उवाच

पुरा बभूव गोलोके सा गङ्गा द्रवरूपिणी। राधाकृष्णाङ्गसंभूता तदंशा तत्स्वरूपिणी ॥७

द्रवाधिष्ठातृरूपा या रूपेणाप्रतिमा भुवि। नवयौवनसंपन्ना रत्नाभरणभूषिता ॥८

शरन्मध्याह्नपद्मास्या सस्मिता सुमनोहरा। तप्तकाञ्चनवर्णाभा शरच्चन्द्रसमप्रभा ॥९

नारद बोले--कलियुग के पांच सहस्र वर्ष व्यतीत होने के अनन्तर महाभागा सुरेश्वरी (गंगा) कहाँ चली गयीं, मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

नारायण बोले—सरस्वती के शापवश गंगा जी भारत आयीं और शाप के अन्त होने पर ईश्वर की इच्छा से उन्होंने पुनः वैकुण्ठ की यात्रा की। हे नारद ! गंगा शाप के अन्त होने पर सरस्वती और पद्मावती (लक्ष्मी) ने भी भारत त्यागकर विष्णु लोक (वैकुण्ठ) की यात्रा की। हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार भगवान् विष्णु की गंगा, सरस्वती और लक्ष्मी ये तीन स्त्रियाँ हैं तथा वेद में तुलसी समेत चार बतायी गयी हैं ॥२-४॥

नारद बोले—गंगा देवी भगवान् विष्णु के चरण कमल से क्यों निकलीं, ब्रह्मा के कमण्डलु में क्यों स्थित हुई और शंकर जी के मस्तक पर कैसे पहुँचीं। हे मुनिश्रेष्ठ ! वही गंगा भगवान् विष्णु की प्रिया किस प्रयार हुई, यह सब मुझे बताने की कृपा करें ॥५-६॥

श्री नारायण बोले—पहले समय में गंगा राधाकृष्ण के अंग से उत्पन्न होकर उसी गोलोक में जल रूप हुई थीं, जो उन्हीं के अंश और उन्हीं के स्वरूप को धारण किये थीं एक वार जल की अधिष्ठात्री देवी गंगा, जो इस भूतल में अनुपम रूप, नवीन यौवन और रत्नों के आभूषणों से विभूषित थीं। शरत्काल के मध्याह्न (विकसित) कमल की भाँति मुख था। अतः मन्द मुसुकान समेत अत्यन्त मनोहर लग रही थीं। तपाये हुए सुवर्ण की भाँति कीर्त्ति पूर्ण रूपरंग तथा शारदीय चन्द्रमा के समान उनकी प्रभा थी, स्निग्ध प्रभा के कारण उनके शरीर में अत्यन्त लुनाई (चिकनाहट) थी, एवं उनका शुद्ध स्वरूप था। अत्यन्त पीन (मोटी) और कठिन श्रोणी (नाभि के नीचे और दोनों जाँघों के आमने-सामने वाला भाग), अत्यन्त सुन्दर एवं श्रेष्ठ नितम्ब, पीन, उन्नत, अत्यन्तकठिन और अत्यन्त गोलाकार दोनों स्तन, सुचारु, सुन्दर कटाक्ष पूर्ण तिरछी आँखें, मालती की माला से युक्त टेढे शिर के बाल समूह (शिर का जूड़ा), चन्दन

स्निग्धप्रभाऽतिसुस्निग्धा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी । सुपीनकठिनश्रोणी सुनितम्बयुगं वरम् ॥१०
पीनोन्नतं सुकठिनं स्तनयुग्मं सुवर्तुलम् । सुचारुनेत्रयुगलं सुकटाक्षं सुवक्रिमम् ॥११
वक्रिमं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् । सिन्दूरबिन्दुललितं सार्धं चन्दनबिन्दुभिः ॥१२
कस्तूरीपत्रिकायुक्तं गण्डयुग्मं मनोहरम् । बन्धूककुसुमाकारमधरोष्ठं च सुन्दरम् ॥१३
पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिसमुज्ज्वलाम् । वाससी वह्निशुद्धे च नीवीयुक्ते च बिभ्रती ॥१४
सा सकामा कृष्णपार्श्वे समुत्तस्थे सुलज्जिता । वाससा मुखमाच्छाद्य लोचनाभ्यां विभोर्मुखम् ॥१५
निमेषरहिताभ्यां च पिबन्ती सततं मुदा । प्रफुल्लवदना हर्षान्नवसंगमलालसा ॥१६
मूर्छिता प्रभुरूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा । एतस्मिन्नन्तरे तत्र विद्यमाना च राधिका ॥१७
गोपी त्रिंशत्कोटियुक्ता कोटिचन्द्रसमप्रभा । कोपेन रक्तपद्मास्या रक्तपङ्कजलोचना ॥१८
श्वेतचम्पकवर्णाभा मत्तवारणगामिनी । अमूल्यरत्नरचितनानाभरणभूषिता ॥१९
माणिक्यखचितं हारममूल्यं वह्निशौचकम् । पीताभवस्त्रयुगलं नीवीयुक्तं च बिभ्रती ॥२०
स्थलपद्मप्रभाजुष्टं कोमलं च सुरञ्जितम् । कृष्णदत्तार्घ्यसंयुक्तं विन्यस्यन्ती पदाम्बुजम् ॥२१
रत्नेन्द्रराजखचितविमानादवमुह्य च । सेव्यमाना च सखिभिः श्वेतचामरवायुना ॥२२
कस्तूरी बिन्दुतिलकं चन्दनेन्दुसमन्वितम् । दीप्तदीपप्रभाकारं सिन्दूरारुणसुन्दरम् ॥२३
दधती भालमध्ये च सीमन्ताधस्तदुज्वलम् । पारिजातप्रसूनादिमालायुक्तं सुवक्रिमम् ॥२४
सुचारुकबरीभारं कम्पयन्ती च कम्पिता । सुचारुनासा संयुक्तमोष्ठं कम्पयती रुषा ॥२५
गत्वा तस्थौ कृष्णपार्श्वे रत्नसिंहासने वरे । सखीनां च समूहैश्च परिपूर्णा विभोः सभा ॥२६

बिन्दु मिश्रित सिन्दूर की ललित बिन्दु, कस्तूरी-पत्रिका (काभकला) से सुशोभित और मनोहर दोनों कपोल, बन्धूक (दुपहरिया) पुष्प के समान सुन्दर अधरोष्ठ, पके अनार के दाने के समान अत्यन्त उज्वल दाँतों की पंक्तियाँ और अग्नि की भाँति विशुद्ध दो वस्त्रों को धारण किये सुन्दर नीवीं से सुशोभित हो रही थीं । इस प्रकार अत्यन्त सज-धज कर कामुकी भाव से लजाती हुई वह भगवान् श्रीकृष्ण के समीप बैठी थीं और नवसंगम की लालसा से हर्ष पूर्ण एवं प्रफुल्लित मुख किये अपने उन नेत्रों से, जो कमल के पत्ते की भाँति बड़े थे, भगवान् के मुख का निरन्तर एकटक लगाये दर्शन-पान कर रही थीं । भगवान् के रूप में इतना विभोर थीं कि वह मूर्छित-सी मालूम हो रही थीं और उनके शरीर में पुलकावली से रोमांच हो रहा था । उस समय वहाँ राधिका जी भी विद्यमान थीं जो तीस करोड़ गोपियों से युक्त, करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रभा पूर्ण थीं । क्रुद्ध होने के नाते उसका मुख रक्त कमल की भाँति (लाल) हो गया था और रक्त कमल की भाँति नेत्र भी थे । श्वेत चम्पा के समान उनके शरीर का रंग, मतवाले हाथी की भाँति गमन (चाल), अमूल्य रत्नों के बने अनेक भाँति के आभूषणों से भूषित, मणियों से खचित अमूल्य हार से सुशोभित, वह्नि के समान विशुद्ध दो वस्त्र धारण किये थीं, जिसकी नीवी भी अत्यन्त सुन्दर थी । स्थल कमल की भाँति कान्ति पूर्ण, कोमल एवं अत्यन्त रंजित, उनका चरण कमल था, जिसे भगवान् श्रीकृष्ण अर्घ्य प्रदान करते थे । इस प्रकार के चरणों का विन्यास करती (उठा-उठाकर रखती) हुई परमोत्तम रत्नों से खचित विमान से नीचे उतरीं, जो सखियों द्वारा लाये गये चामरों की वायु से सुसेवित हो रही थीं । उनके भाल के मध्य में चन्दन के चन्द्रमा युक्त कस्तूरी की बिन्दी की तिलक थीं, जो प्रदीप्त दीप-प्रभा के समान कान्ति वाली सिन्दूर की अरुणिमा से अत्यन्त सुन्दर थीं । उनके केशपाश के नीचे पारिजात के पुष्पों की माला से विभूषित, अत्यन्त टेढ़े-मेढ़े बँधी हुई चारु चोटी थी, जो उस समय उनके (कोपावेग से) कम्पित होने पर कम्पित हो रही थी और अत्यन्त सुन्दर नासिका युक्त ओष्ठ फड़क रहा था । विभुकी उस सभा में सखी समूहों के साथ जाकर उस रत्नसिंहासन पर भगवान् श्रीकृष्ण के पार्श्व (बगल) में बैठ गयीं । उन्हें देखकर अच्युत श्रीकृष्ण ने उठकर उनका सादर स्वागत किया और मन्द मुसुकान एवं मधुर वाणी द्वारा

तां च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ कृष्णः सादरमच्युतः । संभाष्य मधुरालापैः सस्मितश्च ससंभ्रमः ।।२७
प्रणेमुरतिभक्ताश्च गोपा नम्रात्मकंधराः । तुष्टुवुस्ते च भक्त्या तं तुष्टाव परमेश्वरः ।।२८
उत्थाय गंगा सहसा संभाषां च चकार सा । कुशलं परिपप्रच्छ भाताऽतिविनयेन च ।।२९
नम्रभावस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । ध्यानेन शरणापन्ना श्रीकृष्णचरणाम्बुजे ।।३०
तद्धृत्पद्मे स्थितः कृष्णो भातायै चाभयं ददौ । बभूव स्थिरचित्ता सा सर्वेस्वरवरेण च ।।३१
ऊर्ध्वं सिंहासनस्थां च राधां गंगा ददर्श सा । सुस्निग्धां सुखदृश्यां च ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा ।।३२
असंख्यब्रह्मणामाद्यां चाऽदिसृष्टिं सनातनीम् । यथा द्वादशवर्षीयां कन्यां च नवयौवनाम् ।।३३
विश्ववृन्दे निरूपमां रूपेण च गुणेन च । शान्तां कान्तामनन्तां तामाद्यन्तरहितां सतीम् ।।३४
शुभां सुभद्रां सुभगां स्वामिसौभाग्य संयुताम् । सौन्दर्यसुन्दरीं श्रेष्ठां सुन्दरीष्वखिलासु च ।।३५
कृष्णाधांगीं कृष्णसमां तेजसा वयसा त्विषा । पूजितां च महालक्ष्म्या महालक्ष्मीश्वरेण च ।।३६
प्रच्छाद्यमानां प्रभया सभामीशस्य सुप्रभाम् । सखीदत्तं च ताम्बूलं गृह्णतामन्यदुर्लभम् ।।३७
अजन्यां सर्वजननीं धन्यां मान्यां च मानिनीम् । कृष्णप्राणाधिदेवीं च प्राणप्रियतमां रमाम् ।।३८
दृष्ट्वा रासेश्वरीं तृप्ति न जगाम सुरेश्वरी । निमेषरहिताभ्यां च लोचनाभ्यां पपौ च ताम् ।।३९
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगदीशमुवाच सा । वाचा मधुरया शान्ता विनीता सस्मिता मुने ।।४०

राधिकोवाच

केयं प्राणेश कल्याणी सस्मिता त्वन्मुखाम्बुजम् । पश्यन्ती सततं पार्श्वे सकामा रक्तलोचना ।।४१
मूर्छां प्राप्नोति रूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा । वस्त्रेण मुखकाच्छाद्य निरीक्षन्ती पुनः पुनः ।।४२

उनसे सम्भाषण करते हुए उन्हें बैठाया । अनन्तर गोपगणों ने भयभीत होकर उन्हें प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक परमेश्वर श्रीकृष्ण की स्तुति आरम्भ कर दी । गंगा ने भी सहसा उठकर उनसे कुछ बातचीत की और भयभीत होकर अत्यन्त विस्मय से उनसे कुशल पूछी । उस समय गंगा त्रस्त होकर, भय के नाते जिनके कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये थे, नम्र भाव से भगवान् श्रीकृष्ण के चरणशरण में ध्यान मग्न हो रही थीं । अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके हृदय-कमल में स्थित होकर उन्हें अभय दान दिया और सर्वेश्वर भगवान् के वरदान द्वारा वह शांतचित्त हुईं। पश्चाद् गंगा ने ऊपर सिंहासनासीन श्री राधिका जी को देखा, जो अत्यन्त स्निग्ध, देखने में अत्यन्त सुखकर और ब्रह्मतेज से प्रदीप्त हो रही थीं । असंख्य ब्रह्म की आदि जननी, आदि सृष्टि तथा सनातनी राधाजी की मूर्ति, नव यौवन-भूषित बारह वर्ष वाली कन्या के समान प्रतीत हो रही थी । जो समस्त विश्व समूहों में गुण और रूप में निरुपम (अद्वितीय), शान्त प्रकृति की स्त्री, अनन्त, आदि अन्त (जन्म- मरण) से रहित, सती, शुभ, अत्यन्त भद्र रूप, सुन्दरी, स्वामी-सौभाग्य से युक्त, सौन्दर्य की रानी, समस्त सुन्दरियों में श्रेष्ठ थीं । भगवान् श्रीकृष्ण की अर्द्धांगिनी, उनके समान तेज, अवस्था और कान्ति से युक्त, महालक्ष्मीश्वर द्वारा पूजित होने वाली महालक्ष्मी, भगवान् की उस सभा को अपनी कान्ति से आच्छादित करने वाली उस अत्यन्त प्रभा से पूर्ण थीं । सखियों के दिए हुए ताम्बूल (पान) का ही ग्रहण करती थीं जो अन्य के लिए दुर्लभ है । स्वयं जन्म रहित, समस्त की जननी, धन्य, मान्य, मानिनी, भगवान् श्रीकृष्ण के प्राणों की अधीश्वरी, उनके प्राणों की प्रियतमा एवं रमा रूप हैं । रासेश्वरी राधिका जी को इस भाँति देखकर गंगा को तृप्ति नहीं होती थी, वे अपने अनिमेष लोचनों से उनकी माधुरी छवि का एकटक दर्शन-पान कर रही थीं । हे मुने ! इसी बीच शान्त विनीत राधिका ने मन्द-मन्द हँसती हुई मधुर वाणी द्वारा जगदीश भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ।।८-४०।।

राधिका बोलीं—हे प्राणेश ! यह कल्याण मूर्ति कौन है जो तुम्हारे पार्श्व में बैठकर सस्मित भाव से तुम्हारे मुखकमल को निरन्तर देख रही है । काम उत्पन्न होने से उसके नेत्र लाल हो गये हैं। तुम्हारे रूप पर (मोहित होकर)

त्वं चापि मां संनिरीक्ष्य सकामः सस्मितः सदा। मयि जीवति गोलोके भूता दुर्वृत्तिरीदृशी ॥४३
त्वमेव चैवं दुर्वृत्तं वारं वारं करोषि च। क्षमां करोति ते प्रेम्णा स्त्रीजातिः स्निग्धमानसा ॥४४
संगृह्येमां प्रियामिष्टां गोलोकाद्गच्छ लम्पट। अन्यथा नहि ते भद्रं भविष्यति सुरेश्वर ॥४५
दृष्टस्त्वं विरजायुक्तो मया चन्दनकानने। क्षमा कृता मया पूर्वं सखीनां वाचनादहो ॥४६
त्वया मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं पुरा। देहं संत्यज्य विरजा नदीरूपा बभूव सा ॥४७
कोटियोजनविस्तीर्णा ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा। अद्यापि विद्यमाना सा तव सत्कीर्तिरूपिणी ॥४८
गृहं मयि गतायां च पुनर्गत्वा तदन्तिकम्। उच्चैररौषीर्विरजे विरजे चेति संस्मरन् ॥४९
तदा तोयात्समुत्थाय सा योगात्सिद्धयोगिनी। सालंकारा मूर्तिमती ददौ तुभ्यं च दर्शनम् ॥५०
ततस्तां च समाश्लिष्य वीर्याऽधानं कृतं त्वया। ततो बभूवुस्तस्यां च समुद्राः सप्तचैव हि ॥५१
दृष्टस्त्वं शोभया गोप्या युक्तश्चम्पककानने। सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥५२
शोभा देहं परित्यज्य प्राविशच्चन्द्रमण्डलम्। ततस्तस्याः शरीरं च स्निग्धं तेजो बभूव ह ॥५३
संविभज्य त्वया दत्तं हृदयेन विदूयता। रत्नाय किंचित्स्वर्णाय किंचिन्मतिवराय च ॥५४
किंचित्स्त्रीणां मुखाब्जेभ्यः किंचिद्राज्ञे च किंचन। किंचित्प्रकृष्टवस्त्रेभ्यो रौप्येभ्यश्च किंचन ॥५५
किंचिच्चन्दनपङ्केभ्यस्तोयेभ्यश्चापि किंचन। किंचित्कलसरौप्येभ्यः पुष्पेभ्यश्चापि किंचन ॥५६
किंचित्फलेभ्यः सस्येभ्यः सुपक्वेभ्यश्च किंचन। नृपदेवगृहेभ्यश्च संस्कृतेभ्यश्च किंचन ॥५७
किंचिन्नूतनवस्त्रेभ्यो गोरसेभ्यश्च किंचन ॥५८

मूर्च्छित-सी हो रही है (सुधि-बुधि खो रही है), इसके शरीर में रोमांच हो गया है और वस्त्र से अपना मुख ढांके हुए बार-बार तुम्हें देख रही है। तुम मुझे ही देखकर सदैव सस्मित भाव से कामुक होते थे; किन्तु मेरे रहते हुए गोलोक में इस प्रकार का दुराचार हो! तुम इस प्रकार का दुर्व्यवहार बार-बार करते आये हो, किन्तु तुम्हारे प्रेम के नाते मैं क्षमा कर देती हूँ क्योंकि स्त्री जाति भोली-भाली स्वभाव की होती हैं। हे लम्पट! (यदि ऐसा ही करना है) तो इसे लेकर यहाँ गोलोक से चले जाओ। हे सुरेश्वर! अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। क्योंकि पहले एक बार मैंने चन्दन वन में तुम्हें विरजा के साथ (विलासमग्न) देखा था, किन्तु सखियों के कहने से मैंने क्षमा कर दिया था। मेरा शब्द सुनते ही तुमने उसे पहले ही तिरोहित कर (छिपा) दिया था। पर, वह विरजा अपनी देह का त्याग कर नदी रूप हो गयी थी। जो एक करोड़ योजन की विस्तृत और उससे चौगुने योजनों की लम्बी होकर तुम्हारी सत्कीर्ति रूप में आज भी विद्यमान है। जब मैं घर चली गयी तो पुनः उसके समीप जाकर—हा विरजे, हा विरजे! कहकर उच्च स्वर से (गला फाड़कर) रुदन कर रहे थे; उस समय उस सिद्ध योगिनी ने योग द्वारा जल से निकलकर अलंकारों से सज-धज कर तुम्हें अपना दर्शन दिया था। अनन्तर तुमने उसका गाढालिंगन कर उसमें वीर्याधान किया, जिससे उसमें सात समुद्रों की उत्पत्ति हुई। दूसरी बार चम्पक वन में शोभा गोपी के साथ (रति) करते तुम पकड़े गये थे। मेरा शब्द सुनते ही तुमने उसे छिपा दिया था। अनन्तर शोभा ने देह त्याग कर चन्द्र मण्डल में प्रवेश किया और उसका शरीर स्निग्ध तेज में परिवर्तित हो गयी थी। तब तुमने हार्दिक समवेदना प्रकट करते हुए उस तेज का विभाग कर रत्न, सुवर्ण, श्रेष्ठ बुद्धि वाले, स्त्रियों के मुख कमल, राजा, उत्तम वस्त्र, चाँदी, चन्दन-पंक जल, किसलय (नूतन पल्लव), पुष्प, फल, पके अन्न, सुसंस्कृत राजगृह और देव मन्दिर को थोड़ा-थोड़ा कर बाँट दिया था। फिर वृन्दावन में प्रभा गोपी के साथ समागम करते देखे गए। मेरा शब्द सुनते ही तुमने उसे अन्तर्हित कर दिया था। किन्तु प्रभा अपनी शरीर छोड़कर सूर्य मण्डल में प्रविष्ट हो गयी थी और उसकी देह तीक्ष्ण तेज में परिणत हो गयी थी। रुदन करते हुए तुमने सप्रेम उस तेज का विभाजन किया था और लज्जा तथा उसके भय के नाते नेत्र, अग्नि, राजा, जन समुदाय, देवताओं, चोर गण, नाग गण, ब्राह्मण, मुनि, तपस्वी, सौभाग्यवती स्त्रियाँ और यशस्वी व्यक्तियों को बाँट दिया था।

दृष्टस्त्वं प्रभया गोप्या युक्तो वृन्दावने वने। सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥५९
प्रभा देहं परित्यज्य प्राविशत्सूर्यमण्डलम्। ततस्तस्याः शरीरं च तीक्ष्णं तेजो च बभूह ॥६०
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा। विभज्य चक्षुषोर्दत्तं लज्जया मद्भयेन च ॥६१
हुताशनाय किंचिच्च नृपेभ्यश्चापि किंचन। किंचित्पुरुषसंघेभ्यो देवेभ्यश्चापि किंचन ॥६२
किंचिद्दस्युगणेभ्यश्च नागेभ्यश्चापि किंचन। ब्राह्मणेभ्यो मुनिभ्यश्च तपस्विभ्यश्च किंचन ॥६३
स्त्रीभ्यः सौभाग्ययुक्ताभ्यो यशस्विभ्यश्च किंचन। तच्च दत्त्वा च सर्वेभ्यः पूर्वं रोदितुमुद्यतः ॥६४
शान्त्या गोप्या युतस्त्वं च दृष्टो वै रासमण्डले। वसन्ते पुष्पशय्यायां माल्यवांश्चन्दनोक्षितः ॥६५
रत्नप्रदीपैर्युक्तश्च रत्ननिर्मितमन्दिरे। रत्नभूषणभूषाढ्यो रत्नभूषितया सह ॥६६
त्वया दत्तं च ताम्बूलं भुक्तवत्यै सुवासितम्। तया दत्तं च ताम्बूलं भुक्तवांस्त्वं पुरा विभो ॥६७
सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया। शान्तिर्देहं परित्यज्य भिया लीना त्वयि प्रभो ॥६८
ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह। संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा ॥६९
विश्वे विषयिणे किंचित्सत्त्वरूपाय विष्णवे। शुद्धसत्त्वस्वरूपायै किंचिल्लक्ष्म्यै पुरा विभो ॥७०
त्वन्मन्त्रोपासकेभ्यश्च वैष्णवेभ्यश्च किंचन। तपस्विभ्यश्च धर्माय धर्मिष्ठेभ्यश्च किंचन ॥७१
मया पूर्वं हि दृष्टस्त्वं गोप्या च क्षमया सह। सुवेषवान्माल्यवांश्च गन्धचन्दनसंयुतः ॥७२
रत्नभूषितया चारुचन्दनौक्षितया तया। सुखेन मूर्छितस्तल्पे पुष्पचन्दनसंयुते ॥७३
श्लिष्टाऽभून्निद्रया सद्यः सुखेन नवसंगमात्। मया प्रबोधितौ सा च भवांश्च स्मरणं कुरु ॥७४
गृहीतं पीतवस्त्रं ते मुरली च मनोहरा। वनमाला कौस्तुभश्च ह्यमूल्यं रत्नकुण्डलम् ॥७५
पश्चात्प्रदत्तं प्रेम्णा च सखीनां वचनादहो। लज्जया कृष्णवर्णोऽभूदद्यापि च भवान्प्रभो ॥७६
क्षमा देहं परित्यज्य लज्जया पृथिवीं गता। ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह ॥७७
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा। किंचिद्दत्तं विष्णवे च वैष्णवेभ्यश्च किंचन ॥७८

इस प्रकार वह तेज सभी लोगों को देकर पहले की भाँति पुनः रुदन करने लग गये थे। पुनः रास मण्डल के अवसर पर वसन्त के समय चन्दन चर्चित सर्वांग और पुष्प माला धारण किये पुष्प की शय्या पर तुम शान्ति गोपी के साथ (विहार करते) देखे गये थे। हे विभो ! उस रत्न खचित महल में रत्न प्रदीप के प्रकाश में तुम दोनों रत्नों के भूषणों से भूषित होकर तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुवासित ताम्बूल वह खा रही थी और उसका दिया हुआ पान तुम खा रहे थे। हे प्रभो ! उस समय मेरा शब्द सुनते ही तुमने उसे अन्तर्हित कर (दिया) दिया था। किन्तु भयभीत होकर वह शान्ति अपनी देह त्यागकर तुममें लीन हो गयी थी और उसका शरीर श्रेष्ठ गुण में परिवर्तित हो गया था। सप्रेम रुदन करते हुए तुमने उसका विभाजन करके विश्व में विषयी सत्त्वरूप विष्णु और शुद्ध सत्त्व स्वरूप महालक्ष्मी, तुम्हारे मन्त्र के उपासक वैष्णव गण, तपस्वीगण, धर्म और धर्मनिष्ठ व्यक्तियों को सौंप दिया था। फिर मैंने क्षमा गोपी के साथ तुम्हें देखा था। उत्तम वेष बनाये—पुष्प माला पहने, गन्ध चन्दन से चर्चित—थे। पुष्प और चन्दन से सुवासित उस शय्या पर रत्न भूषण भूषित और चारु चन्दन चर्चित उस रमणी के साथ सुख विहार कर रहे थे; अनन्तर नव समागम के कारण तुम दोनों शीघ्र ही निद्रामग्न हो गये थे तो मैंने ही तुम दोनों को जगाया था, यह स्मरण करो। उस समय मैंने तुम्हारा पीताम्बर, मनोहर मुरली, वनमाला, कौस्तुभ मणि और अमूल्य रत्न कुण्डल ले लिया था किन्तु प्रेमवश और सखियों के कहने से मैंने पुनः तुम्हें लौटा दिया था। हे प्रभो ! उसी लज्जा के कारण आप कृष्ण वर्ण के (काले) हो गये थे, जो आज भी दिखायी दे रहा है। और क्षमा ने लज्जित होकर देह त्याग दिया, पृथिवी में प्रविष्ट हो गयी तथा उसका शरीर श्रेष्ठ गुण में परिवर्तित हो गया था। प्रेम का आँसू बहाते हुए तुमने उसका विभाग कर विष्णु, वैष्णव, धर्मनिष्ठ, धर्म, दुर्बल, तपस्वी, देवताओं और पण्डितों को थोड़ा-थोड़ा करके बाँट दिया था। हे

धर्मिष्ठेभ्यश्च धर्माय दुर्बलेभ्यश्च किंचन। तपस्विभ्योऽपि देवेभ्यः पण्डितेभ्यश्च किंचन ॥७९
एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि। त्वद्गुणं बहुविस्तारं जानामि च परं प्रभो ॥८०
इत्येवमुक्त्वा सा राधा रक्तपङ्कजलोचना। गङ्गां वक्तुं समारेभे नम्रास्यां लज्जितां सतीम् ॥८१
गङ्गा रहस्यं योगेन ज्ञात्वा वै सिद्धयोगिनी। तिरोभूय सभामध्यात्स्वजलं प्रविवेश सा ॥८२
गङ्गा रहस्यं योगेन ज्ञात्वा वै सिद्धयोगिनी। श्रीकृष्णचरणाम्भोजं परमं शरणं ययौ ॥८३
गोलोकं चैव वैकुण्ठं ब्रह्मलोकादिकं तथा। ददर्श राधा सर्वत्र नैव गङ्गां ददर्श सा ॥८४
सर्वतो जलशून्यं च शुष्कं गोलोकपङ्कजम्। जलजन्तुसमूहैश्च मृतदेहैः समन्वितम् ॥८५
ब्रह्मविष्णुशिवानन्तधर्मेन्द्रेन्दुदिवाकराः । मनवो मानवाः सर्वे देवाः सिद्धास्तपस्विनः ॥८६
गोलोकं च समाजग्मुः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः। सर्वे प्रणेमुर्गोविन्दं सर्वेशं प्रकृतेः परम् ॥८७
वरं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं वरकारणम्। वरेशं च वरार्हं च सर्वेषां प्रवरं प्रभुम् ॥८८
निरीहं च निराकारं निर्लिप्तं च निराश्रयम्। निर्गुणं च निरुत्साहं निर्व्यूहं च निरञ्जनम् ॥८९
स्वेच्छामयं च साकारं भक्तानुग्रहविग्रहम्। सत्यस्वरूपं सत्येशं साक्षिरूपं सनातनम् ॥९०
परं परेशं परमं परमात्मानमीश्वरम्। प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥९१
सगद्गदाः साश्रुनेत्राः पुलकाङ्कितविग्रहाः। सर्वे संस्तूय सर्वेशं भगवन्तं परं हरिम् ॥९२

प्रभो ! यह सब मैंने तुम्हें सुना दिया अब और क्या सुनना चाहते हो, क्योंकि मैं जानती हूँ कि तुम्हारा गुण बहुत विस्तृत है ॥४१-७९॥

इतना कहकर राधा ने रक्त कमल की भाँति (लाल) नेत्र किये गंगा से कहना आरम्भ किया, जो लज्जित होने के कारण नीचे मुख किये खड़ी थीं। उस समय सिद्धयोगिनी गंगा योग द्वारा समस्त रहस्य जानकर सभा मध्य से तिरोहित हो कर अपने जल में प्रविष्ट हो गयीं। अनन्तर सिद्धयोगिनी राधिका जी ने भी योग द्वारा गंगा को सब स्थानों में जल रूप से अवस्थित देखकर अपने चुल्लू से उन्हें पान करना आरम्भ कर दिया। इस रहस्य को सिद्ध योगिनी गंगा ने योगबल से जानकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल का परमोत्तम शरण प्राप्त किया। राधिका जी ने गोलोक, वैकुण्ठ और ब्रह्मलोक आदि समस्त लोकों में सभी स्थान ढूँढ़ा किन्तु गंगा नहीं दिखायी पड़ीं। चारों ओर जलशून्य दिखायी देता था—गोलक (कुण्ड) के कमल सूख गये थे। जल जन्तुओं का समूह अपना शरीर छोड़ चुका था। अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, मनु, मानव, समस्त देव, सिद्ध और तपस्वीगण ने कण्ठ, ओठ एवं तालू के सूख जाने पर (विह्वल होकर) गोलोक को प्रस्थान किया और वहाँ प्रकृति से परे रहने वाले सर्वेश गोविन्द को प्रणाम किया, जो उत्तम, वर के योग्य, वर प्रद, श्रेष्ठ, वरकारण, वरेश, वरार्ह, सर्वश्रेष्ठ, प्रभु, निरीह, निराकार, निर्लिप्त, निराश्रय, निर्गुण, निरुत्साह, अशरीरी, निरंजन; स्वेच्छामय, साकार, भक्तों के अनुग्रहार्थ प्रकट होने वाले, सत्यस्वरूप, सत्येश, साक्षी रूप, सनातन, श्रेष्ठ, श्रेष्ठाधीश्वर, एवं परम परमात्मा ईश्वर हैं। सभी लोगों ने भक्तिपूर्वक विनय विनम्र होकर उस परमात्मा को प्रणाम किया और गद्गद, आँखों में आँसू भरे एवं रोमांच शरीर होकर भगवान् श्रीकृष्ण सर्वेश की स्तुति करना आरम्भ किया। उस समय ज्योति रूप परब्रह्म, जो समस्त कारणों का कारण है, अमूल्य रत्नों द्वारा खचित चित्र-विचित्र सिंहासन पर सुशोभित हो रहा था। गोपाल गण श्वेत चामर से उसकी सेवा कर रहे थे और वह प्रसन्न मुख से मन्द मुसुकान करते हुए गोपियों का नृत्य-गान देख रहा था। सौ करोड़ गोपगण अपना सुन्दर वेष बनाये उसे चारों ओर से घेर सेवा कर रहे थे, जो चन्दन चर्चित, रत्नों के भूषणों से भूषित, नूतन घन की भाँति श्याम वर्ण, किशोरावस्था, पीताम्बर भूषित बारह वर्ष वाले गोपाल बाल की भाँति रूप बनाये स्थित था। करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा से पूर्ण, पुष्ट और श्रीसम्पन्न शरीर धारण किये, अपने तेज से वहाँ चारों ओर आच्छन्न किए था और अति समान, मनोहर एवं करोड़ों काम की सौन्दर्य लीला के लावण्यमय उसके शरीर को मन्द

ज्योतिर्मयं परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् । अमूल्यरत्नखचितचित्रसिंहासनस्थितम् ॥९३
सेव्यमानं च गोपालैः श्वेतचामरवायुना । गोपालिका नृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥९४
वल्गुवेषैः परिवृतं गोपैश्च शतकोटिभिः । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥९५
नवीननीरदश्यामं किशोरं पीतवाससम् । यथा द्वादशवर्षीयं बालं गोपालरूपिणम् ॥९६
कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् । स्वतेजसा परिवृतं मुखदृश्यं मनोहरम् ॥९७
कोटिकन्दर्पसौन्दर्यलीलालावण्यविग्रहम् । दृश्यमानं च गोपीभिः सस्मिताभिश्च संततम् ॥९८
भूषणैर्भूषिताभिश्च महारत्नविनिर्मितैः । पिबन्तीभिर्लोचनाभ्यां मुखचन्द्रं प्रभोर्मुदा ॥९९
प्राणाधिकप्रियतमाराधावक्ष:स्थलस्थितम् । तया प्रदत्तं ताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम् ॥१००
परिपूर्णतमं रासे ददृशुः सर्वतः सुराः । मुनयो मानवाः सिद्धास्तपसा च तपस्विनः ॥१०१
प्रहृष्टमानसाः सर्वे जग्मुः परमविस्मयम् । परस्परं समालोच्य ते तमूचुश्चतुर्मुखम् ॥१०२
निवेदितुं जगन्नाथं स्वाभिप्रायमभीप्सितम् । ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा स्थितं विष्णोस्तु दक्षिणे ॥१०३
वामतो वामदेवस्य चागमत्कृष्णमुत्तमम् । परमानन्दयुक्तं च परमानन्दरूपकम् ॥१०४
सर्वं कृष्णमयं धाता चापश्यद्रासमण्डले । सर्वं समानवेषं च समानासनसंस्थितम् ॥१०५
द्विभुजं मुरलीहस्तं वनमालाविभूषितम् । मयूरपुच्छचूडं च कौस्तुभेन विराजितम् ॥१०६
अतीव कमनीयं च सुन्दरं शान्तविग्रहम् । गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विषा ॥१०७
वाससा यशसा कीर्त्या मूर्त्या सुन्दरया समम् । परिपूर्णतमं सर्वं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥१०८
कः सेव्यः सेवको वेति दृष्ट्वा निर्वक्तुमक्षमः । क्षणं तेजः स्वरूपं च रूपराशियुतं क्षणम् ॥१०९
निराकारं च साकारं ददर्श द्वैधलक्षणम् ।११०
एकमेव क्षणं कृष्णं राधया सहितं परम् । प्रत्येकासनसंस्थं च तया च सहितं क्षणम् ॥१११
राधारूपधरं कृष्णं कृष्णरूपकलत्रकम् । किं स्त्रीरूपं च पुरूपं विधाता ध्यातुमक्षमः ॥११२
हृत्पद्मस्थं च श्रीकृष्णं धाता ध्यानेन चेतसा । चकार स्तवनं भक्त्या प्रणम्याथ त्वनेकधा ॥११३
ततः स चक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया । अपश्यत्कृष्णमेकं च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥११४

मुसुकान करती हुई गोपियां निरन्तर देख रही थीं । महा-रत्नों से भूषित वे गोपियाँ प्रसन्न मुख मुद्रा में भगवान् श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र का अपने नेत्रों से (निमेष) पान कर रही थीं, जिसे रास के समय देवों ने (भगवान् के) प्राणों की प्रियतमा श्री राधाजी के वक्ष:स्थल पर स्थित और उन्हीं द्वारा दिये गये सुवासित ताम्बूल (पान) खाते एवं उस परिपूर्णतम को चारों ओर देखा था । मुनिगण, मानवगण, सिद्ध और तापस जनों को उसे देखकर अत्यन्त हर्ष और महान् आश्चर्य हुआ था । अनन्तर आपस में विचार-विमर्श करके देवों ने अपना अभिप्राय भगवान् जगदीश्वर से निवेदन करने के हेतु ब्रह्मा से कहा । ब्रह्मा देवों की बातें सुनकर विष्णु के दक्षिण भाग और वामदेव के बाँयें भाग में स्थित भगवान् श्रीकृष्ण के समीप गये । वहाँ उन्होंने उस रासमण्डल में परमानन्द युक्त और परमानन्द स्वरूप भगवान् कृष्णमय समस्त को देखा । वहाँ सभी लोग समान वेष, समान सिंहासन पर स्थित, दो भुजा, हाथ में मुरली, वनमाला से भूषित,(मुकुट में) मोरपंख लगाये, कौस्तुभ मणि से सुशोभित, अत्यन्त सुन्दर एवं शान्त स्वरूप थे । तथा गुण, भूषण, रूप, तेज, अवस्था, उनके वस्त्र यश, आकृति, मूर्ति और सुन्दरता सब में समानता थी । सभी लोग समस्त ऐश्वर्य सम्पन्न परिपूर्णतम (ब्रह्म) रूप थे । 'कौन स्वामी है और कौन सेवक' इसका निर्णय करने में ब्रह्मा वहाँ देखते हुए भी असमर्थ थे । क्योंकि क्षण मात्र में तेज रूप, क्षण में रूप राशि युक्त, क्षण में कहीं अकेले कृष्ण और कहीं राधा समेत तथा कहीं क्षण में राधा समेत कृष्ण प्रत्येक सिंहासन पर स्थित थे । राधा रूप कृष्ण और कृष्ण रूप राधा को देख कर 'कौन स्त्री रूप है और कौन पुरुष रूप' इसका निर्णय बिना किए ब्रह्मा ध्यान करने में असमर्थ हो गए थे। इसलिए अपने हृदय-कमल में स्थित भगवान

स्वपार्षदैः परिवृतं गोपीमण्डलमण्डितम् । पुनः प्रणेमुस्तं दृष्ट्वा तुष्टुवुश्च पुनश्च ते ॥११५
विज्ञाय तदभिप्रायं तानुवाच सुरेश्वरः । सर्वात्मा सर्वयज्ञेशः सर्वेशःसर्वभावनः ॥११६

श्रीभगवानुवाच

आगच्छ कुशलं ब्रह्मन्नागच्छ कमलापते । इहाऽऽगच्छ महादेव शश्वत्कुशलमस्तु वः ॥११७
आगताः स्थ महाभागा गङ्गानयनकारणात् । गङ्गा मच्चरणाम्भोजे भयेन शरणं गता ॥११८
राधे मां पातुमिच्छन्ती दृष्ट्वा मत्संनिधानतः । दास्यामीमां बहिः कृत्वा यूयं कुरुत निर्भयाम् ॥११९
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा सस्मितः कमलोद्भवः । तुष्टाव सर्वाराध्यां तां राधा श्रीकृष्णपूजिताम् ॥१२०
वक्त्रैश्चतुर्भिः संस्तूय भक्तिनम्रात्मकंधरः । धाता चतुर्णां वेदानामुवाच चतुराननः ॥१२१

ब्रह्मोवाच

गङ्गा त्वदङ्गसंभूता प्रभोर्वै रासमण्डले । युवयोर्द्रवरूपा या मुग्धयोः शंकरः स्वराट् ॥१२२
कृष्णांशा च त्वदंशा च त्वत्कन्यासदृशी प्रिया । त्वन्मन्त्रग्रहणं कृत्वा करोतु तव पूजनम् ॥१२३
भविष्यति पतिस्तस्या वैकुण्ठे च चतुर्भुजः । भूगतायाः कलायाश्च लवणोदश्च वारिधिः ॥१२४
गोलोकस्था च या राधा सर्वत्रस्था तथात्मिका । तदात्मिका त्वं देवेशि सर्वदा च तवाऽऽत्मजा ॥१२५
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा स्वीचकार च सस्मिता । बहिर्बभूव सा कृष्णपादाङ्गुष्ठनखाग्रतः ॥१२६
तत्रैव संवृता शान्ता तस्थौ तेषां च मध्यतः । उवास तोयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता ॥१२७
तत्तोयं ब्रह्मणा किंचित्स्थापितं च कमण्डलौ । किंचिद्दधार शिरसि चन्द्रार्धे चन्द्रशेखरः ॥१२८
गङ्गायै राधिकामन्त्रं प्रददौ कमलोद्भवः । तत्स्तोत्रं कवचं पूजाविधानं ध्यानमेव च ॥१२९
सर्वं तत्सामवेदोक्तं पुरश्चर्याक्रमं तथा । गङ्गा तामेव संपूज्य वैकुण्ठं प्रययौ सती ॥१३०
लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी विश्वपावनी । एता नारायणस्यैव चतस्रो योषितो मुने ॥१३१
अथ तं सस्मितः कृष्णो ब्रह्माणं समुवाच ह । सर्वं कालस्य वृत्तान्तं दुर्बोध्यमविपश्चिताम् ॥१३२

श्रीकृष्ण का ध्यान ब्रह्मा चेतन होकर करने लगे और भक्तिपूर्वक अनेक बार प्रणाम करके स्तुति करने लगे। अनन्तर भगवान् की आज्ञा से ब्रह्मा ने नेत्र खोला तो राधाजी के वक्षःस्थल पर स्थित एक भगवान् श्रीकृष्ण ही उन्हें दिखाई पड़े। जो अपने पार्षदों से घिरे हुए गोपी मण्डल से मण्डित थे। देवी ने उन्हें देखकर बार-बार प्रणाम और बार-बार स्तुति करना आरम्भ किया। उनके अभिप्राय को जानकर देवाधीश्वर भगवान् ने उन लोगों से कहा, जो सब के आत्मा, समस्त यज्ञों के ईश समस्त (चराचर) के ईश और सबको प्रिय हैं ॥८०-११६॥

श्री भगवान् बोले—हे ब्रह्मन्, हे कमलापते ! आवो। और महादेव ! यहाँ आवो। तुम लोगों का निरन्तर कुशल हो। गंगा को ले जाने के लिए तुम लोग यहाँ आये हो, अतः महाभाग हो। गंगा भयभीत होकर हमारे चरण कमल की शरण में प्राप्त है। राधिका जी मेरे समीप उसे देखकर उसका पान करना चाहती है। अतः मैं उसे तुम लोगों को दे रहा हूँ, तुम लोग इसे यहाँ से बाहर ले जाकर निर्भय बनाओ। भगवान् श्रीकृष्ण की बातें सुनकर हँसते हुए ब्रह्मा ने भगवान् की पूज्या और समस्त की आराध्या श्री राधिकाजी की स्तुति करना आरम्भ किया। चतुरानन ब्रह्मा ने भक्तिपूर्वक शिर झुकाये अपने चारों मुख द्वारा उनकी वेद स्तुति करके पुनः कहा कि भगवान् के रासमण्डल में यह गंगा तुम्हारे ही अंग से उत्पन्न हुई है और शंकर जी द्वारा स्वरतान समेत (भगवान् के) गुण-गान करते समय यह द्रव (जल) रूप हो गयी है। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण का अंश और तुम्हारा अंश होने के नाते यह तुम्हारी प्रिय कन्या के सदृश है। इसे उचित है कि तुम्हारे मन्त्र को ग्रहणकर तुम्हारा पूजन करे। इसके पति वैकुण्ठ निवासी चतुर्भुज विष्णु होंगे और अपनी कलामात्र से पृथ्वी पर जाने पर लवण (खारा) सागर इसका पति होगा। हे देवेशि ! तुम गोलोक में स्थित रहने वाली राधा हो, जो सर्वत्र स्थित रहती हैं और यह सर्वदा तुम्हारी कन्या है।

श्रीकृष्ण उवाच

गृहाण गङ्गां हे ब्रह्मन् हे विष्णो हे महेश्वर । शृणु कालस्य वृत्तान्तं यदतीतं निशामय ॥१३३
यूयं च ये ऽन्यदेवाश्च मुनयो मनवस्तथा । सिद्धास्तपस्विनश्चैव ये येऽत्रैव समागताः ॥१३४
ते ते जीवन्ति गोलोके कालचक्रविवर्जिते । जलप्लुतं सर्वविश्वमागतं प्राकृते लये ॥१३५
ब्रह्माद्या येऽन्यविश्वस्थास्ते लीना अधुना मयि । वैकुण्ठं च विना सर्वं सजलं पश्य पद्मज ॥१३६
गत्वा सृष्टिं कुरु पुनर्ब्रह्मलोकादिकं परम् । सब्रह्माण्डं विरचय पश्चाद्गङ्गा च यास्यति ॥१३७
एवमन्येषु विश्वेषु सृष्ट्वा ब्रह्मादिकं पुनः । करोम्यहं पुनः सृष्टिं गच्छ शीघ्रं सुरैः सह ॥१३८
मच्चक्षुषोर्निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत् । गताः कतिविधास्ते च भविष्यन्ति च वेधसः ॥१३९
इत्युक्त्वा राधिकानाथो जगामान्तःपुरं मुने । देवा गत्वा पुनः सृष्टिं चक्रुरेव प्रयत्नतः ॥१४०
गोलोके च स्थिता गङ्गा वैकुण्ठे शिवलोकके । ब्रह्मलोके तथाऽन्यत्र यत्र यत्र पुरा स्थिता ॥१४१
तत्रैव सा गता गंगा चाऽऽज्ञया परमात्मनः । निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदी स्मृता ॥१४२
इत्येवं कथितं सर्वं गंगोपाख्यानमुत्तमम् । सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१४३
इति श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराणे प्रकृतिखण्डे नारदनारायणसंवादे गङ्गोपाख्यानं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२

ब्रह्मा की बात सुनकर राधा ने मन्दहास करती हुई अपनी स्वीकृति प्रदान की, अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण के अँगूठे के नखाग्र भाग से बाहर गंगा निकलीं और उन्हीं लोगों के बीच संवृत (आवरणाच्छन्न) एवं शान्त भाव से स्थित रहीं। जल से जल की अधिष्ठात्री देवी के निकलने पर उस जल के स्वल्प भाग को ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु में रखा और चन्द्रशेखर शिव ने अपने शिर के चन्द्रार्द्ध भाग में उस जल का कुछ अंश धारण कर लिया। अनन्तर ब्रह्मा ने गंगा को श्रीराधा जी का मन्त्र दिया और साथ-साथ उनका स्तोत्र, कवच, पूजा विधान, ध्यान तथा सामवेदानुसार पुरश्चरण का समस्त क्रम बताया, जिसके द्वारा सती गंगा ने राधा की पूजा करके वैकुण्ठ की यात्रा की। हे मुने ! इस प्रकार नारायण विष्णु भगवान् के लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और विश्व को पावन करने वाली तुलसी ये चार स्त्रियाँ हैं। अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने मन्दस्मित भाव से ब्रह्मा को काल का समस्त वृत्तान्त बताया, जो अज्ञानी जनों के लिए दुःखगम्य है। श्रीकृष्ण बोले—हे ब्रह्मन् ! हे विष्णो ! और हे महेश्वर ! तुम लोग गंगा का ग्रहण करो और काल का अतीत वृत्तान्त सुना रहा हूँ, सुनो। तुम लोग तथा अन्य देवगण एवं मुनिगण, मनुवृन्द और सिद्ध तपस्वी आदि जितने यहाँ उपस्थित हैं, वे सब कालचक्र रहित गोलोक में जीवित रहेंगे, क्योंकि प्राकृत लय होने पर समस्त विश्व जलमग्न हो गया है। हे पद्मज (ब्रह्मन्) ! अन्य विश्व में स्थित जितने ब्रह्मा आदि देवता हैं, सम्प्रति मुझमें लीन हो जायँगे, क्योंकि वैकुण्ठ के अतिरिक्त सभी जलमग्न हो गया है, देखो। अतः अब जाकर ब्रह्मलोक आदि समस्त ब्रह्माण्ड की फिर से सृष्टि करो और पश्चात् गंगा भी जायँगी। इसी प्रकार अन्य विश्वों में मैं ब्रह्मा आदि की सृष्टि करके पुनः सबका सर्जन कर रहा हूँ, तुम देवों समेत शीघ्र जाओ। मेरे पलक भाँजने मात्र से ब्रह्मा की आयु समाप्त होती है, इस प्रकार कितने ब्रह्मा बीत चुके और कितने होंगे कहा नहीं जा सकता। हे मुने ! इस प्रकार राधिकानाथ श्रीकृष्ण जी कहकर अन्तःपुर में चले गये और देवों ने जाकर सप्रयत्न सृष्टि करना आरम्भ किया। इस प्रकार श्री गंगा जी गोलोक, वैकुण्ठ, शिवलोक और ब्रह्मलोक में स्थित होकर अन्यत्र भी यत्र-तत्र स्थित हैं जहाँ पहले थीं। उन्हीं स्थानों में परमात्मा श्रीकृष्ण की आज्ञा से जाकर पुनः स्थित हुई हैं। भगवान् विष्णु के चरणकमल से निकलने के कारण गंगा जी को 'विष्णुपदी' कहा जाता है। इस प्रकार मैंने गंगा का समस्त उपाख्यान तुम्हें सुना दिया, जो सुखदायक, मोक्षप्रद और तत्त्व का रूप है, अब फिर क्या सुनना चाहते हो ॥११७-१४३॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के प्रकृतिखण्ड में नारद और नारायण के सम्वाद में गंगोपाख्यान नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

नारद उवाच

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी लोकपावनी । एता नारायणस्यैव चतस्रश्च प्रिया इति ।।१
गङ्गा जगाम वैकुण्ठमिदमेव श्रुतं मया । कथं सा तस्य पत्नी च बभूव ब्रूहि केशव ।।२

नारायण उवाच

गङ्गा जगाम वैकुण्ठं तत्पश्चाच्च गतो विधिः । गत्वोवाच तया सार्धं प्रणम्य जगदीश्वरम् ।।३

ब्रह्मोवाच

राधाकृष्णाङ्गसंभूता या देवी द्रवरूपिणी । तदधिष्ठातृदेवीयं रूपेणाप्रतिमा भुवि ।।४
नवयौवनसंपन्ना सुशीला सुन्दरी वरा । शुद्धसत्त्वस्वरूपा च क्रोधाहंकारवर्जिता ।।५
यदङ्गसंभवा नान्यं वृणोतीयं च तं विना । तत्रापि मानिनी राधा महातेजस्विनी वरा ।।६
समुद्यता पातुमिमां भीतेयं बुद्धिपूर्वकम् । विवेश चरणाम्भोजे कृष्णस्य परमात्मनः ।।७
सर्वं विशुष्कं गोलोकं दृष्ट्वाऽहमगमं तदा । गोलोकं यत्र कृष्णश्च सर्ववृत्तान्तलब्धये ।।८
सर्वान्तरात्मा सर्वं नो ज्ञात्वाऽभिप्रायमेव च । बहिश्चकार गङ्गां च पादाङ्गुष्ठनखाग्रतः ।।९
दत्त्वाऽस्यै राधिकामन्त्रं पूरयित्वा च गोलकम् । संप्रणम्य च राधेशं गृहीत्वाऽऽगमं विभो ।।१०
गान्धर्वेण विवाहेन गृहाणेमां सुरेश्वरीम् । सुरेश्वरस्त्वं रसिको रसिका रसभावनः ।।११
त्वं रत्नं पुंसु देवेश स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियं सती । विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् ।।१२

नारद बोले—लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और लोक-पावनी तुलसी, ये चारों स्त्रियाँ भगवान् विष्णु की ही पत्नी हैं और यह भी मैंने सुना है कि गंगा वैकुण्ठ लोक चली गयी हैं । अतः हे केशव ! वह उनकी पत्नी कैसे हुई, यह बताने की कृपा करें ।।१-२।।

नारायण बोले--गंगा के वैकुण्ठ लोक चली जाने पर उनके पीछे ब्रह्मा भी वहाँ पहुँचे और गंगा के साथ ही भगवान् जगदीश्वर को प्रणाम कर उनसे कहने लगे ।।३।।

ब्रह्मा बोले—श्री राधा और भगवान् श्रीकृष्ण के अंग से यह जलमयी गंगा उत्पन्न होकर जल की अधिष्ठात्री देवी और भूतल में अनुपम रूपवती हैं; जो नवीन युवावस्था से भूषित, सुशील, परमसुन्दरी शुद्ध सत्त्व-स्वरूप और क्रोध-अहंकार से रहित हैं । जिनके अंग से उत्पन्न हुई हैं उसके अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं चाहती हैं किन्तु वहाँ की महातेजस्विनी राधा अत्यन्त मानिनी हैं । वे इसका पानकर लेने के लिए एकदम तैयार हो गयी थीं पर भयभीत होते हुए भी इसने बुद्धि से काम लिया । परमात्मा श्रीकृष्ण के चरण कमल में प्रवेश कर लिया । समस्त विश्व को सूखा हुआ देखकर मैं भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा समस्त वृत्तान्त जानने के लिए गोलोक में गया । समस्त के अन्तरात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने मेरा सम्पूर्ण अभिप्राय जानकर अपने चरण के अँगूठे के नखाग्र भाग से गंगा को बाहर निकाला ।।४-९।।

हे विभो ! अनन्तर गंगा को राधिकामंत्र प्रदान किया और भगवान् द्वारा विश्व के समस्त गोलोक (कुण्ड आदि जलाशयों) को जलपूर्ण कराया; उपरान्त श्री राधावर को प्रणाम करके गंगा साथ ले यहाँ आ रहा हूँ । अतः गान्धर्व विवाह द्वारा इस सुरेश्वरी को अपनाओ, क्योंकि तुम सुरेश्वर और रसिक हो । इसलिए रसिया को रसिक ही

उपस्थितां च यः कन्यां न गृह्णाति मदेन च । तं विहाय महालक्ष्मीं रुष्टा याति न शंसयः ॥१३
यो भवेत्पण्डितः सोऽपि प्रकृतिं नावमन्यते । सर्वे प्रकृतिकाः पुंसः कामिन्यः प्रकृतेः कलाः ॥१४
त्वमेवभगवानाद्यो निर्गुणः प्रकृतेः परः । अर्धाङ्गो द्विभुजः कृष्णोऽप्यर्धाङ्गेन चतुर्भुजः ॥१५
कृष्णवामाङ्गसंभूतां परमा राधिका पुरा । दक्षिणाङ्गात्स्वयं सा च वामाङ्गात्कमला यथा ॥१६
तेन त्वां सा वृणोत्येव यतस्त्वद्देहसंभवा । स्त्रींपुंसौ वै तथैकाङ्गौ यथा प्रकृतिपूरुषौ ॥१७
इत्येवमुक्त्वा धाता च तां समर्प्य जगाम सः । गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राह हरिः स्वयम् ॥१८
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनर्चाचिताम् । रेमे रमापतिस्तत्र गङ्गया सहितो मुदा ॥१९
गां पृथ्वीं च गता यस्मात्स्वस्थानं पुनरागता । निर्गता विष्णुपादाच्च गङ्गा विष्णुपदी स्मृता ॥२०
मूर्छां संप्राप सा देवी नवसंगममात्रतः । रसिका सुखसंभोगाद्रसिकेश्वरसंयुता ॥२१
तद्दृष्ट्वा दुःखिता वाणी सापत्न्येर्ष्याविवर्जिता । नित्यमीर्ष्यति तां वाणी न च गङ्गा सरस्वतीम् ॥२२
गङ्गया सहितस्यैव तिस्रो भार्या रमापतेः । सार्धं तुलस्या पश्चाच्च चतस्रो ह्यभवन्मुने ॥२३
इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे प्रकृतिखण्डे नारदनारायणसम्वादे गङ्गोपाख्यानं नाम तृतीयोऽध्याय ॥३

कामिनी चाहिए । तुम देव-पुरुषों में पुरुष रत्न हो और यह स्त्रियों में स्त्रीरत्न है । अतः विदग्ध (चतुर-पुरुष) का विदग्धा (कलापूर्ण नायिका) के साथ समागम होना चाहिए; क्योंकि ऐसा होना सुखकर बताया गया है । जो मद (नशे) में आकर किसी उपस्थित कन्या का त्याग करता है उसे रुष्ट होकर महालक्ष्मी छोड़ देती हैं और अन्यत्र चली जाती हैं; इसमें संशय नहीं । और जो पण्डित होता है वह भी प्रकृति (रूपधारी स्त्री) का अपमान नहीं करता है । क्योंकि पुरुषगण प्राकृतिक (प्रकृति द्वारा उत्पन्न) और स्त्रियाँ प्रकृति की कला हैं । तुम आदि भगवान्, निर्गुण और प्रकृति से परे रहनेवाले हो---दो भुजाओं को धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्द्धांग हैं और अर्द्धांग से चतुर्भुज (विष्णु) हुए हैं । पूर्वकाल में परमोत्तम राधिकाजी भगवान् श्रीकृष्ण के बायें अंग से उत्पन्न हुई हैं और बायें अंग से उत्पन्न कमला (लक्ष्मी) की भाँति यह भी उनके दाहिने अंग से उत्पन्न हुई हैं । इसीलिए यह तुम्हारी देह से उत्पन्न होने के कारण तुम्हारा वरण करना चाहती है; प्रकृति और पुरुष की भाँति स्त्री-पुरुष भी (मिलकर) एक ही अंग कहे जाते हैं ।।१०-१७।।

इस प्रकार कहकर ब्रह्मा ने उसे उन्हें सौंप दिया और स्वयं चले गये । पश्चात् स्वयं विष्णु ने गान्धर्व विवाह द्वारा गंगा को अपनाया । रति करने के निमित्त पुष्प की चन्दन-चर्चित उत्तम शय्या बनाकर रमापति (विष्णु) ने उस पर गंगा के साथ अत्यन्त प्रसन्नता से रमण किया । गा (पृथ्वी) में आकर पुनः अपने स्थान लौट आने से 'गंगा' और भगवान् विष्णु के पाद (चरण) से निकलने के नाते 'विष्णुपदी' उन्हें कहा जाता है । रसियों में प्रधान भगवान् विष्णु का समागम होने पर उस नव संगम मात्र से रसीली देवी गंगा मूर्च्छित हो गयीं । उस अवस्था को देखकर सरस्वती को बड़ा दुःख हुआ क्योंकि उन्हें उस समय सापत्न्य (सौत की) ईर्ष्या जाती रही । यद्यपि सरस्वती गंगा से नित्य ईर्ष्या करती थीं किन्तु गंगा ने कभी भी सरस्वती से ईर्ष्या नहीं की । हे मुने ! इस प्रकार रमापति (विष्णु) के गंगा समेत तीन ही स्त्रियाँ हैं और चौथी स्त्री तुलसी का साथ उसके पश्चात् हुआ है ॥१८-२३॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में गङ्गोपाख्यान नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥